१९७१

मुद्रक एवं प्रकाशक
बेलवीडियर प्रिंटिंग वर्क्स
इलाहाबाद-२

[...ार १०००]　　[मूल्य ३॥)]

॥ १ ॐ सतगुर प्रसादि ॥

श्री

प्राण संगली

सटिप्पण

(प्रथम भाग)
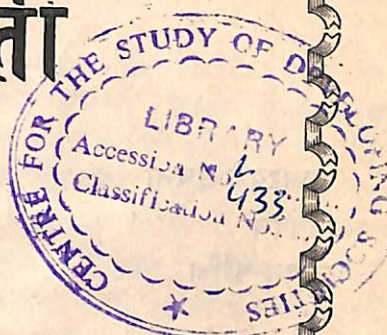
श्री गुरु नानक साहब विरचित प्राणों का अपूर्व कवच
जो सुरत शब्द-योग साधनमयी अमोघ तारों
से रचा हुआ काल कर्म माया
कृत विघ्नों से गुरुमुखों का सुरक्षक
तथा हितकर है।

जिसको
गुरुमुखी अक्षरों से भाषा अक्षरों में टिप्पण सहित तैयार करके
गुरु साहब के संक्षिप्त जीवन-चरित्र समेत संत
सम्पूर्ण सिंह ने प्रेम प्रसाद रूप से
अर्पण किया
जिसे मालिक बेलविडियर प्रेस इलाहाबाद ने अपने खर्चे से
अपने यंत्रालय में प्रकाशित किया।

—:o:—

मुद्रक एवं प्रकाशक
बेलवीडियर प्रिंटिंग वर्क्स
इलाहाबाद—२

द्वितीय बार
१००० प्रतियाँ

१९७१

मूल्य तीन रुपये पचास पैसे
मूल्य ३।।)

विषय सूची

(अध्यायवार)

आवश्यक सूचना

गुरु नानक साहेब ने यह अपूर्व ग्रन्थ प्राण-संगली किस अवसर पर सिंगलादीप में वहाँ के परम भक्त राजा शिवनाभ जी को उपदेश करके बख्श दिया और फिर उनकी पाँचवीं गद्दी के अधिष्ठाता गुरु अर्जुनदेवजी ने उसे कैसे सिंगलादीप से मँगाया तथा किस कारण से उसे "गुरुग्रन्थ साहेब" के संग्रह से अलग रक्खा इसका वर्णन गुरु नानक साहेब के जीवन चरित्र में दूसरी यात्रा के आख़िर हिस्से में, और टिप्पनकार के "निवेदन" में लिखा है। गुरु नानक साहेब ने इस अनमोल ग्रंथ का नाम "प्राण-संगली" क्यों रक्खा यह तो पक्के तौर पर वही कह सकता है जिसकी गति उनकी सी हो, तौ भी कुछ लखाव उसका उनके उस बचन से होता है जो निज मुख से उन्होंने राजा शिवनाभ से कहा—"इह ग्रंथ मेरी देह है, मेरा स्थूल रूप है, प्राणों मेरिओं का संग्रह कह्ये कवच है, जगत समुंद्र का इह पुल है। इह प्राण-संगली मैं तैनूँ बषशी है, इह अजर वस्तु है, सो तैं ही जरी है। इह प्राण-संगली अंम्रित प्रवाह है; तेरे ही मुख विषे प्रवेश होई है, होर तिन्न लोकाँ विच इस वस्तू नूँ सम्हालता कोई नहीं ताँते प्राणों विषे प्राण-संगली रखनी" इस बचन से स्पष्ट होता है कि यह ग्रन्थ प्राणों का संग्रह रूप है जिसमें प्राणपिंड का निर्णय और प्राणों से मन के निरोध का पूरा भेद लिखा है। संभव है कि इसको "गुरु ग्रंथ साहेब" की जिल्द में शामिल न करने की वजह यही हो कि गुरु अर्जुनदेवजी ने समयानुसार इसे हरएक छोटे बड़े की दृष्टि में लाना उचित न समझा।

इस दुर्लभ ग्रन्थ के छापने का हमारा कदापि साहस न होता यदि संत संपूरण-सिंह सरीखे तरनतारन के नानक-पंथी महात्मा जिनकी गहरी जानकारी और अनुभव बिचार का उनकी टिप्पनी प्रत्यक्ष प्रमाण है इस काम को अपने ज़िम्मे न लेते। यह प्रथम भाग केवल एक छोटा हिस्सा पूरे ग्रन्थ का है जिसे अपने पाठकों के तगादे और बेकली के कारण हम झटपट तैयार करके भेंट करते हैं, और साथ ही उसके यह भी है कि कई भागों में छापने से गरीब अमीर सभी इसका लाभ उठा सकेंगे।

जीवन-चरित्र गुरू नानक साहेब का भी संत सम्पूरणसिंहजी का ही लिखा हुआ है, यद्यपि उनकी आज्ञानुसार हमने उसे जहाँ तहाँ इस देश की बोल चाल में बदल दिया है परन्तु असल ग्रंथ के अक्षर और मात्रा ज्यों की त्यों वही रक्खी गई हैं जो बाबाजी ने गुरू साहेब के ग्रन्थ की कई लिपियों और पंजाब पबलिक लैब्रेरी लाहौर की प्रमाणिक प्रति का मिलान करके सिद्ध की है, और कहीं कहीं छंद शास्त्र या इल्म उरूज़ के क़ायदों और नियमों को छोड़ कर पंजाबी संगीत विद्या के अनुसार लिखी है, ऐसे ही स्वर और व्यंजन की रचना और मेल भी पंजाब की रीति अनुसार रक्खा गया है जो संतबानी पुस्तकमाला के क्रम के किंचित विरुद्ध है।

किसी किसी शब्द की अक्षर-रचना भिन्न-भिन्न अध्यायों में भिन्न-भिन्न रीति से रक्खी गई है, जैसे "अमृत" शब्द जो तीन प्रकार से लिखा है—इसका कारण यह कहा गया है कि जिस प्रकार की अंतर वृत्ति या खिंचाव की दशा में गुरू साहेब के मुख से उस शब्द का उच्चारण हुआ वह उसी रीति से लिखा गया और उस करुणा का प्रकाशक है।

यद्यपि टिप्पनी में कहीं कहीं ऐसे पंजाबी शब्द और महावरे आ गये हैं जिन्हें सर्व साधारन को समझने में कठिनता होगी परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि संत सम्पूरण सिंह जी की टिप्पनी ने बहुत सी गूढ़ बातों और गुप्त भेदों को खोल कर दरसा दिया है जिससे जीवों को विशेष परमार्थी लाभ मिलने की आशा है और हम उनको इस भारी परोपकार के लिए अंतर से धन्यवाद देते हैं।

एडिटर, संतबानी पुस्तकमाला।

निवेदन

—:०:—

श्रीगुरू नानक साहब के पंचम स्थान पर श्रीगुरू अर्जन देव जी हुए हैं; जिन्होंने गुरबाणी की बीड़ बांधते समय भाई पैड़ा नामी एक शिष्य को संगलादीप भेज कर राजा शिवनाभ के पौत्र के पास से यह ग्रन्थ मँगाया था जिसे किसी कारण विशेष से श्री गुरू ग्रन्थ साहब की बीड़ में रखना उचित न समझ कर सर्वथाही जल प्रवाहित कर दिया था। जो कि एक परम प्रेमी साधू की अत्यंत प्रार्थना से द्रवीभूत हुए गुरू साहब के बचन अनुसार जल से निकलवाया और जैसे का तैसा उसे ही बषशिश कर दिया गया था जिसका प्रसंग गुर प्रताप सूर्ज प्रकाश नामक प्रमाणिक इतिहास की त्रितिया राशिगत ३२वें अंशु में लिखा है॥

उसी प्राण-संगली नामक ग्रन्थ में से कुछ थोड़े से आगे पीछे के अध्याय गुरमुखी अक्षरों में वर्तमान में ही तीन बार छप कर प्रेमियों को सलाभ कर चुके हैं। जिनकी प्रवृत्ति तथा उनमें लोगों का प्रेम देख कर और इस बाणी को सुरति शब्द योग का पूर्ण भंडार तथा गुरमत संतमत की वास्तविक कुञ्जी समझ कर हमने इसे संतबाणी पुस्तकमाला का सुमेरु होना निश्चय किया। संतबाणी प्रचारक लाला बालेश्वर प्रसाद जी इलाहाबाद वाले की (इस प्राणों के कवच रूप ग्रन्थ की) परम प्रेम भरी स्वीकारता तथा प्रेर्णा से हमने गुरमुखी अक्षरों से इसका उल्था हिन्दी भाषा में गुरमुख प्रेमी जन अभ्यासियों और संतों और सत्संगियों के विनोद अर्थ सटिप्पण तैयार करके उक्त लाला साहब को केवल प्रेम प्रसाद रूप से समर्पण कर दिया है जिसके वास्ते पूर्ण आशा है कि गुरमत संतमत के प्रेमी पाठक इस परम गुप्त ग्रन्थ से पूर्ण लाभ को प्राप्त होंगे। प्रथम थोड़े से अध्याय ही हमारी दृष्टिगोचर हुए परन्तु ज्यों ही कि उनका उल्था किया तो भीतर उमंग उपजी कि शुद्धि के वास्ते कहीं से हस्तलिखित प्रति प्राप्त हो जाय तो ठीक है सो गुरू महाराज की कृपा से दो प्रतियाँ एक संबत १८५१ बिक्रमी की और दूसरी संबत १८८० बिक्रमी की (बड़ी प्राचीन) प्राप्त हुईं। रोम रोम से अंतर्यामी श्रीगुरू महाराज का धन्यवाद करते हुए बड़े हर्ष के साथ उल्था का उनसे मुकाबला किया गया। परन्तु वह भी आगे पीछे के केवल ६० अध्याय थे और सर्वथा शुद्ध नहीं थे इस कारण पूर्ण ग्रन्थ की खोज का उत्साह बढ़ा "खोजी उपजै बादी बिनशै हउँ बलि बलि गुर करतारा"—खोजी कभी निराश ना रहेगा। पूर्ण ग्रन्थ भी प्राप्त हो गया (पूर्ण तो शायद संसार पर ही नहीं रहा जो प्राप्त हुआ है उसे पूर्ण ही समझो) सो सभ को आपस में मिलान करके शुद्ध किया गया जहाँ अशुद्धि रही वहाँ मजबूरी समझनी चाहिए॥

संगलादीप को जाते जाते मार्ग में या राजा शिवनाभ से लोप होने काल में (प्राण संगली से संबंधित) जो जो उपदेश, ज्ञान चरचा तथा गोष्टि गुरू साहब

को संतों महात्माओं आदि से हुई असल प्रति (पूर्ण) में विद्यमान हैं, जि
पाठकों के (ग्रन्थ खरीदने में) अधिक व्यय और अपने अनअवसरतादि कारण
से उल्था नहीं कर सके। वर्त्तमान में श्री गुरू साहबों की परम कृपा
वषशे हुए अनुभव से यथा बुद्धि टिप्पण चढ़ाया गया है—लिखते-लिख
मानुषी स्वभाव वशात् यदि कोई अशुद्धि रह गई हो तो "भुलन अंद
सभ को अभुलि गुरू करतार" इस गुरू वचन अनुसार पाठक बृन्द क्षम
रक्खें। जिन कृपालुओं ने प्राचीन प्रतियों के प्रदान में हमारी सहायता की
उन महोदयों का भी रोम २ से धन्यवाद करते हैं। अंतर्यामी ऐसे उपकारी का
में सदैव उनके हृदय को द्रवनशाली बनाय रक्खें॥

जहाँ परयंत हो सका उल्था असल के अनुसार ही रक्खा गया है। गुरुवाक
के शब्दों को अपनी समझ अनुसार उलटने पलटने की हम सरीखे अधमों
सामर्थ्य नहीं है इस कारण हिन्दी भाषा के संकेत लिखाई से कहां विरुद्ध पाठ
मन में गिलानी लाना उचित ना होगा। और प्रायः ि ु इन मात्राओं का प्रयो
हर एक शब्द में दृष्टि आवेगा सो उन्हें सी संस्कृत भाषा के संकेत पर ई—
करके नहीं पाठ करना चाहिए। स्वर के बग़ैर कोई व्यंजन नहीं बोल सकत
सो स्वर अ—इ—उ तीन हैं। इनका प्रयोग केवल इसी बात के सूचन अ
रक्खा है। और किसी २ जगह इन मात्रिक निशानों से शब्दों की कारक अवस्थ
सूचन कराई है जो कि अर्थ की मूल कारण होती है॥

शास्त्रीय भाषा में उल्था नहीं लिखा गया क्योंकि शास्त्रीय शब्द हर एक
समझ गोचर नहीं है—संमिलित हिन्दी भाषा को हर कोई समझ सकता है
शास्त्रीय भाषा के ना लिखने में उपरोक्त लाला साहब की बारंबार की मजबूर
तथा कुछ २ हमारी असमर्थता भी हेतु समझ कर विद्वान क्षमा रक्खें॥

गुरमुख जनों का सेवाभिलाषी—
सटिप्पण उल्थाकार,
सम्पूरण सिंह,
तरनतारन।
(पंजाब)

नोट एडिटर संतबानी पुस्तकमाला—वास्तव में यह पुस्तक असल ग्रन्थ की
ज्यों की त्यों नक़ल देवनागरी अक्षरों में है उसका उल्था या तर्जमा नहीं है।
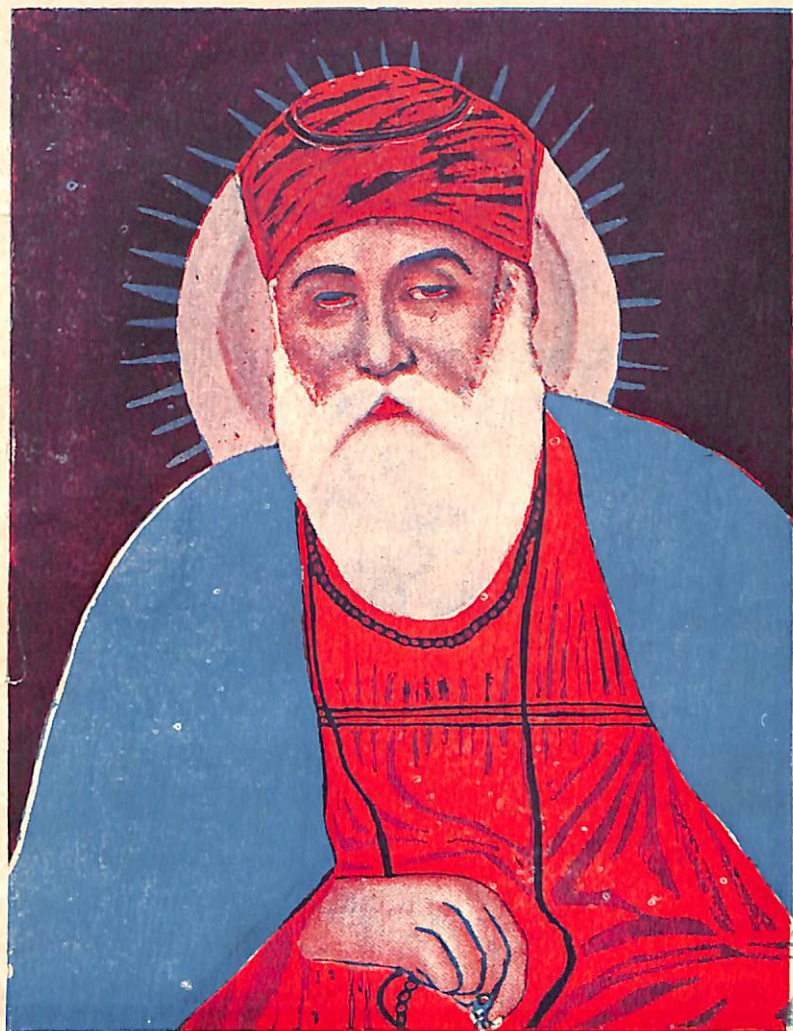
गुरु नानकदेव

जीवन-चरित्र

(श्री गुरू नानक साहेब का)

घोर अत्याचार और अन्याय का एक ऐसा बिकट समय था कि जिसके स्मरण से रोंगटे खड़े होते हैं। धर्म का मोल उस समय में कौड़ी के बराबर भी न था खास कर ऐसे धर्म का जो बादशाह के मज़हब से व्यतिरिक्त हो। इसके निमित्त लाखों सिरों का गर्द में मिला दिया जाना लड़कों का खेल था। निष्ठुरता अन्याय तथा उपद्रव ने साधुओं और सज्जनों के हृदय को ऐसा दुखी और चकनाचूर कर दिया था कि उससे निरंतर हाहाकार और आरत नाद उठता था जिसने कि अंत को सातवें आसमान पर अपनी गूँज पहुँचाई और परम पुरुष परमेश्वर के दिव्य सिंहासन को डोलाय कर उसकी ऐसी अनूठी दया उमगाई कि उसे अपने अपूर्व निजअंश को निढाल और आतुर जीवों की सम्हाल के लिये संसार में भेजना पड़ा, जिसका अवतार सुल्तान बहलोल लोदी के समय में सम्बत १५२६ बिक्रमी तथा सन १४६९ ईसवी में कार्तिकी पूर्नो को चार घड़ी रात रहे कल्यानचंद* नामी बेदी खत्री की सुपत्नी तृप्तां के गर्भ से प्रगट हुआ। कल्यानचंद जी पंजाब के ज़िला लाहौर, तहसील शरकपुर, तलवंडी नगर के सूबा राय बोलार पठान के कारकुन थे, जिनके इस दैवी बालक से बड़ी एक कन्या भी थी जिसका नाम बीबी नानकी था।

जितने धर्म के प्रचारक आचार्य्य या औतार या ऋषी मुनी अथवा पीर पैगम्बर औलिया इन महापुरुष से पहले हुए थे उन सब से यह किसी अंश में कम न थे बरन उन सब की अपेक्षा इन में कई एक अंश की अधिकता थी। इन्होंने न तो कभी इस बात का दावा किया कि हम मालिक के भेजे हुए आये हैं या उसके पुत्र या निज अंश होने का लोगों को बिश्वास दिलाया, और न लम्बी चौड़ी बातें बनाईं, बरन बाल अवस्था ही से सीधे सादे तौर पर बिना दिखलावे के ऐसा परोपकारी सचाई से भरा हुआ सत मारग का उपदेश करते थे जो सुनने वालों के कलेजे में बिध जाता था जैसा कि आज परयंत उनकी बाणी में निरंतर झलकता है। लाखों हिन्दू, मुसलमान और दूसरे मत के आदमी जिनका आपस में भारी बिरोध था बिबश होकर इनके चरणों पर गिरे और आपस की शत्रुता छोड़ कर और इन महापुरुष को अपना परम पिता और रक्षक मान कर वह एक दूसरे के सच्चे भाई बन गये और इनके बचन और बानी को बेद पुरान कुरान इंजील और सर्व शास्त्रों से बढ़ कर मानने लगे।

---

*कई इतिहासकारों ने गुरु साहेब के पिता का नाम कालू चंद भी लिखा है और किसी ने केवल कालू जी।

यह गुरू रूप अवतार धारी बालक जन्म समकाल ही से परम संत सरूप थे। बैठना आरंभ करते ही सदैव पद्मासन मार कर बैठते, और कुछ न कुछ स्मरण भजन के ढंग पर मुख से अवश्य उच्चारण किया करते थे। पाँच वर्ष की आयु में अपने सहचारी बालकों को धार्मिक तथा परम पुरुष की प्रशंसा मिलित कथायें और उपदेश सुनाते और समय समय पर जो कुछ आपको घर से मिल जाता फकीरों तथा अभ्यागतों को बाँट दिया करते थे॥

इन महापुरुष की जन्म कुंडली, जिसके ग्रह आदि अवतारी पुरुषों के समान देख कर सब ज्योतिषी चकित होते थे, नीचे दी जाती है। सब के मुँह से यही निकलता था कि किसी साधारण जीव के ऐसे ग्रह नहीं हो सकते बरन किसी भारी अवतार के जिसका प्रताप कि भूमंडल और आकाश को सूर्य्य के समान छा लेगा।
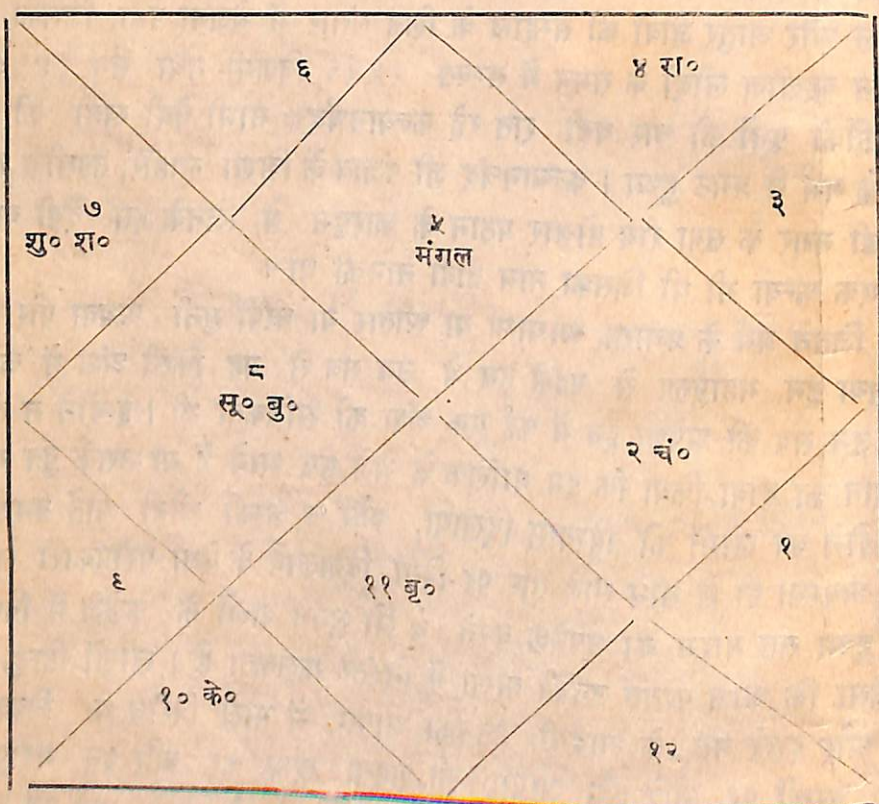
जिस भूमि (तलवंडी) में इनका अवतार हुआ इनके आने के कारण वह तब से नानकाना साहेब प्रख्यात है।

बाल लीला के कौतुक करते-करते क्रम-क्रम से बढ़ते-बढ़ते जब गुरू साहेब की उमर पढ़ने के योग्य हो गई तो छः बरस की अवस्था में इनके पिताजी ने इन्हें देशी

भाषा पढ़ने के लिये पाठशाला में बिठाया जहाँ के गोपाल पंडित पाधा थे परंतु जब उसने प्रथम ही अक्षर (अंक) लिख कर दिये तो गुरू जी ने कहा कि जिस-जिस पुरुष ने इस संसार का हिसाब किताब पढ़ा है अंत काल में उसे अत्यंत क्लेश ही उठाना पड़ा, इस कारण मुझे इससे कुछ प्रयोजन या लाभ नहीं है। मैं तो परमेश्वर का नाम पढ़ाने आया हूँ इस वास्ते आप के लिये भी मुझे यही उचित जान पड़ता है कि आप इस संसारिक झूठे पठन पाठन को छोड़ कर सच्चा पठन पाठन करें ऐसा कहते समय पाधाजी के प्रथाय[1] पर "जाल मोह घसि मसि करि मति कागद करि सार" इस प्रथम कड़ी वाला श्री राग के सुर में एक शब्द उच्चारण किया तथा "तिथी पट्टी" निरूपण करी जोकि श्री गुरुग्रंथ साहेब में मौजूद है, जिनको सुनकर पाधा द्रवीभूत होकर गुरू साहेब के चरणों पर गिर पड़ा और कभी कभी एकांत के सत्संग से लाभ उठाता रहा।

नौ बरस की अवस्था में संस्कृत सीखने के लिये बृजनाथ पंडित के सुपुर्द किया परंतु पहिले ही दिन इन महापुरुष ने उनको ऐसे अनुभवी वचन चेतावनी और उपदेश के सुनाये कि शिक्षक की ऊँची गद्दी से उतर कर पंडित जी उलटे शिष्य बन गये और इनकी शरण ली।

जब इनकी सात बरस की उमर थी इनकी मासी एक दिन इनकी माता से मिलने आई और यह देख कर कि गुरू साहेब जो कुछ घर में मिलता है उठा कर साधू और भूखों को बांट देते हैं कहने लगी कि बहिन तेरा लड़का तो पागल सा है। गुरू जी यह बात सुन कर बोले कि मासी मेरे जैसा पागल तेरे घर भी पैदा होगा सो उसके घर में रामरत्न नामक एक महात्मा उत्पन्न हुए जो बैरागी साधुओं में एक भारी आत्मज्ञानी गिने जाते हैं और जिनका स्थान "कसूर" नगर में अब तक प्रसिद्ध है। ऐसे ही जो बातें गुरू साहेब खेलते फिरते में सहज सुभाव किसी के सामने कह दिया करते थे वह थोड़े ही काल में साक्षात देखने में आया करती थीं और जहाँ कहीं छोटे बड़े से भेटने का अवसर उनको मिलता था तो छिन-छिन और बात-बात में उन्हें भगवंत महिमा के चेताने और गुणानुवाद गाने में नहीं चूकते थे। इस निराली चाल को देख कर लोग भाँति-भाँति की भली बुरी चरचा गुरू साहेब के विषय में किया करते और अपनी-अपनी समझ अनुसार अर्थ लगाते जिनको सुनते-सुनते उनके पिता को भी अपने पुत्र की बाबत अनेक प्रकार के बिचार उत्पन्न होने लगे।

पढ़ने की ओर से उनका चित्त बिल्कुल उपराम पाकर पिता ने उनको किसी

(१) प्रसंग, निमित्त।

घर के कार्य में लगाना चाहा और गाय भैंस चराने का काम उनके सपुर्द किया पर यहाँ भी या तो वह मालिक के ध्यान में मग्न या ग्वाल बाल के साथ हरि चर्चा में लवलीन रहते जिसका फल यह होता कि गाय भैंस बिचर कर आज इसका कल उसका खेत खा जातीं—अतएव इस काम के योग्य भी गुरूजी न समझे गये।

जब गुरूजी की उमर ग्यारह बरस की हुई तो पिताने एक बार पढ़ने में उनको फिर लगाना चाहा और इसलिए संबत १५३७ में फ़ारसी सीखने को मौलाना रुकनुद्दीन के पास भेजा परन्तु इनको भी गुरू साहेब ने पाधा और पंडित की नाईं सच्चा अलिफ़-बे उपदेश करके अपना मुरीद बना लिया। अलिफ़नामा जिससे गुरू साहेब ने मौलाना को चिताया यह है—

अलफ़ अलह नों याद करि गफ़लत मनहु बिसार।
सास पलटै नाम बिनु धृगु जीवणु संसारि॥ १॥
बे बिदायत[1] दूर करि कदम शरीयति राखु।
सभ किसि सिऊँ निव चलीऐ मंदा किसै न आखु॥ २॥
ते तोबह करि सिदक दिल मत तूँ पछोताय।
तनु बिनसै मुख: गडीऐ तब तूँ कहा कराय॥ ३॥
से सनाई[2] बहुत करि पाली सास न कढि।
हटो हट्ट विकाउँदे बहुरि न लहसी अढु[3]॥ ४॥
जीम जमायत जमै करि चलणे दा करि बंधु।
बाझहुँ साँई आपने फिरसहिं अन्धो अंधु॥ ५॥
हे हलेमी[4] पकड़ि तूँ दिलदी हवस निवारि।
खावत बरजहु रुकनदीं हरदम षालक सार॥ ६॥
पे षायन[5] तेऊ भए जिन बिसरिआ करतारु।
मन माया कै संगि रचि मूंडि उठावहिं भारु॥ ७॥
दाल दयानत[6] करि मना अठे पहर न सोइ।
एक पहर करि जागना साँई नाम बगोय॥ ८॥
ज़ाल ज़िकर[7] करि आजज़ी कतरा मनु न डुलाय।
तितु[8] न लागै रावली लोभ मनहु चुक जाय॥ ९॥
रे राहत[9] ईमान की सोई देखहि जाय।
पंजे बरजहु[10] रुकनदीं साँई स्यों चितु लाय॥१०॥

---

(१) बिदअत = जुल्म। (२) गुणानुबाद। (३) कौड़ी। (४) शील। (५) दग़ाबाज़। (६) ईमानदारी। (७) जाप। (८) जिसको। (९) सुख। (१०) रोको।

ज़े ज़ारी[1] करि आजज़ो साँई बेपरवाहु।
जो किछु लोरे सो करै तिस दा क्या वेसाहु ॥११॥
सीन सोधि मनु आपणा सभ किछु इसही माहिं।
तनु भाँडा कारीगरी हिकमत बंधि समाहि ॥१२॥
शीन शहादत[2] पाईऐ पिर रहीऐ लिवलाय।
रुकनदीन तन जायगो कीजै तलब ख़ुदाय ॥१३॥
साद सल्वात[3] महंमदी आखहु मुखहुँ नित्त।
खासा बंदा सिरजिया सिर मित्राँ दे मित्त ॥१४॥
ज़ुआद ज़लाल[4] गुमरही[5] इन दूतन स्यों मेलु।
वै उठी तूँ नदरि करि चीनहि नाहीं खेलु ॥१५॥
तोय तलब कर रास्ती दायमु जिना वसालु।
जिन डिठे दुख जायगो माया छूटै जालु ॥१६॥
ज़ोय ज़ालम तेऊ भए चेतहिं नाहीं नामु।
साँई तेरे नाम बिनु क्यों आवै बिस्राम ॥१७॥
ऐन अमल[6] कमाईऐ जेका पारिवसाइ[7]।
बिनु अमलाँ क्यों पाईऐ मत मरीऐ पछुताय ॥१८॥
ग़ैन ग़नी[8] तेऊ भए जिनाँ पछाता आपु।
इसु पिंजर महिं खेल है ना तिस माई बाप ॥१९॥
फ़े फ़ारग़[9] तेऊ भए चलहिं गुर कै भाय।
आपु किया तहक़ीक़ तिन रंगहु रंग मिलाय ॥२०॥
क़ाफ़ क़रार[10] न होवई जिन मनि उपजै चाय।
ते कंचन पारस भए जिन भेटे हरिराय ॥२१॥
काफ कलमा याद करि नका अवरु कित बात।
नफ़स हवाई रुकनदीं तिस ते होवत मात ॥२२॥
लाम लानत बरसै तिनाँ तरक नमाज़ करेनि।
थोड़ा बहुता खटिया[11] अपणा आपु वंजेनि[12] ॥२३॥
मीम महंमद मन्न तूँ मन्न किताबां चार।
मन्न खुदाय रसूल नो हरदम खालक सार ॥२४॥

---

(१) प्रेम में रोना। (२) परिचय। (३) नमाज़, वज़ीफ़ा। (४) भूल भटक। (५) गुमराही। (६) सुकर्म। (७) जितना पुरुषार्थ। (८) धनी, बेपरवाह। (९) फ़ुरसतबंद, आज़ाद। (१०) चैन। (११) कमाया हुआ। (१२) गँवा दें।

नून नहीं को गुमरही सभ कीते अमल कबूल।
माया बंधन गल पड़े मतवाली वंजहि भूल ॥२५॥
वाउ जि वावहिं रुकनदीं सिर धुनि फटकित नालि।
उमर गवाई बावरे तूं परिओ कित खियाल ॥२६॥
हे हैबत[1] तिन दिनैं दी जिस दिन अद्ल करे।
बाब हमारे रुकनदीं केहा अमर करे ॥२७॥
लाम लायक़ तेऊ भए रहमति नदरि करे।
सहजि भाए प्रभु, आपणा निस दिन समाले ॥२८॥
अलफ़ अलह तुध नालि है चेतहि क्यों न अजान।
गुर सेवा ते पायै छूटै अंति निदान ॥२९।
ये यारी करि रब्ब स्यों जिसु अबचल है राज।
एक अकेला नानका नाहीं किसे मुहताज ॥३०॥

फिर उसी साल में पिता ने शुभ महूरत देखा कर पुरोहित को बुलवाया और पुत्र का यज्ञोपवीत संस्कार कराना चाहा परन्तु जब जनेऊ पहिनाने का समय आया तो गुरू साहेब ने कहा कि इस जनेऊ से कुछ अर्थ न निकलेगा और सच्चे यज्ञोपवीत की महिमा सुनाई जिसका पुरोहित पर ऐसा असर हुआ कि वह आप उनका शिष्य बन गया।

॥ श्लोक महला १ ॥

दया कपाह संतोष सूत जत गंढी सत वट्ट।
एहु ज्नेऊ जीअ का हई त पाँडे घत्त॥
नां इहु तुटै न मलु लगै ना इहु जलै न जाय।
धन्य सु माणस[2] नानका जो गलि चल्ले पाय॥ १ ॥
चउकड़ मुल्ल अणाया बहि चउके पाया।
शिषा कन्न चढ़ाईआ गुर ब्राह्मण थीआ।
ओह मुआ ओह झड़ पया वेतगा गया॥ २ ॥
लख चोरीआँ लख जारीआँ लख कूड़ीआँ लख गाल।
लख ठगीआं पहिनामीआं रात दिनस जीअ नाल॥

---

(१) डर, ख़ौफ़। (२) मनुष्य।

तग कपाहहुँ कत्तीऐ ब्राह्मण वट्टे आय।
कुहि बकरा रिन्न खाया सभ को आखै पाय[1] ॥
होय पुराणा सुट्टीऐ भी फिर पायै होर।
नानक तग न तूटई जे तग होवै जोर ॥ ३ ॥
नाँइ मनिऐ पति ऊपजै सालाही सचु सूत।
दरगहि अंदरि पायै तग न तूटसि पूत[2] ॥ ४ ॥

एक दिन का वृत्तांत है कि श्री गुरू जी अकस्मात् घर से बाहर एकांत जंगल में निकल गये और कुछ काल तक करतार के गुणानुबाद गाते गाते समाधि में अचल स्थित हो गये तो घाम से बचाने के वास्ते एक बड़े साँप ने अपने फन से उनके मुख पर छाया कर लिया उसी समय में राय बोलार भी शिकार खेलता-खेलता उस जंगल में आन पहुँचा और बालक की ऐसी दशा देखकर समझा कि यह कोई साधारण पुरुष नहीं बल्कि अवश्य ही कोई वली-अल्लाह है। ऐसी-ऐसी अनेक बातों से बाल अवस्था ही में गुरू साहेब की प्रसिद्धी हो रही थी परंतु उनको एकांत ही प्रिय था, इसी कारण नित्य जंगल को चले जाते और कदाचित घर रहते तो एक ओर किनारे होकर ध्यान समाधि में मगन रहते थे। उठने पर यदि कोई बार्त्तालाप करना चाहता तो मालिक के गुणानुबाद के सिवाय मौन ही रहते थे। इनकी ऐसी खिचाव तथा उपराम दशा पर दीर्घ रोग हो जाने के संदेह से वैद्य बुलाया गया, जब उसने नाड़ी पकड़ी तो गुरू साहेब ने यह श्लोक उच्चारण किये।

बैद बुलाया बैदगी, पकड़ ढँढोले बाँह।
भोला वैद न जानई, करक करेजे माँह ॥
जाहु बैद घर आपने, मेरी थाह न लेह।
हम रत्ते शहु आपने, तू हमें दारू देह ॥ आदिक ॥

राय बोलार नगराधीश का बिश्वास गुरू साहेब पर देख कर और भी बहुत से लोगों के चित्त में उनकी महिमा समा गई। संवत १५४१ में भाई मरदाना की प्रार्थना पर गुरू जी पाकपट्टन शहर में बाबा फ़रीद के मेले में गये, जहाँ अनेक मतों के साधू फ़क़ीर जमा हुआ करते थे। वहाँ बाबा फ़रीद की गद्दी पर उन दिनों शेख इब्राहीम ज़ाद: जिसका उपनाम बहराम था उसके साथ गुरू साहेब की खूब गोष्टी हुई, जोकि श्री गुरू ग्रंथ साहेब में "मारू डखने" के नाम से प्रस्तुत है। तीन दिन पीछे गुरू साहेब घर को लौट कर आये तो उनके पिता ने इस भय से कि कहीं साधुओं की बिशेष संगत करने से यह आप भी भेष न ले लें, उन्हें किसी संसारी

(१) बकरे को कुह (मार) कर और पकाय कर (जब) खाया अर्थात् जब ज़ियाफ़त खायली तब सब कोई कहता है कि (अमुक ने) जनेऊ पाया है। (२) पवित्र।

कारोबार में लगा देना उचित समझा, और इस मतलब से उनके साथ में एक भरोसे का आदमी बाला नामक और कुछ रुपया देकर भली प्रकार समझा दिया कि बेटा खूब सोच विचार कर सच्चा सौदा लाभ-दायक करना इस प्रकार समझा बुझाकर लाहौर की ओर भेजा ॥

जब चलते-चलते चूहड़काना गाँव में पहुँचे तो एक मण्डली साधुओं की क्षुधातुर मिली जिसे देख कर गुरू साहेब बोले कि इससे बढ़कर "सच्चा सौदा" क्या हो सकता है ! और उन रुपयों का उन्हें भंडारा खिला दिया और आप खाली हाथ तलवंडी को लौट आये परंतु पिता के स्वभाव को विचार कर घर नहीं गये बरन एक पीलू के वृक्ष तले आसन मार कर ध्यान में बैठ गये। यह वृक्ष आज तक तम्बू साहेब के नाम से प्रसिद्ध है। जब पिता को (बाला से) बेटे की कार्रवाई का हाल मालूम हुआ तो वह क्रोध में भर कर उनको राय बोलार के पास पकड़ ले गया और सब समाचार कह सुनाया जिस पर राय बोला कि मेहता तुम कब तक ऐसे कामिल आमिल फ़क़ीर से अनजान बने रहोगे ? जो कुछ इनके खर्च के लिए ज़रूरत हो हमसे ले जाया करो और इनको किसी तरह तकलीफ़ न दो। लेकिन पिता फिर भी अपने पुत्र की उदारता और अनूठी कार्रवाइयों से दुखी ही रहा करता था और आखिर को लाचार होकर गुरू साहेब को उनकी बड़ी बहिन बीबी नानकी और बहनोई लाला जैराम के पास सुलतानपुर भेज दिया जो नवाब दौलतखाँ लोदी के दीवान थे और इन्हें बड़े प्रेम से अपने घर रक्खा। गुरू साहेब ने अपनी बहिन और बहनोई की खातिर से संवत १५४२ में नवाब के मोदीखाने में मोदी का काम अपने ज़िम्मे ले लिया। प्रति दिन जितना सीधा सामान नवाब साहेब के घर के लिये तौलते उससे चौगुना साधू फ़क़ीरों को बाँट दिया करते थे और जब रसद तौल कर लोगों को देते तो "तेरा है तेरा है" मुख से उच्चारण करते जाते और हिसाब किताब नाम मात्र को भी न रखते। इस फ़जूल खर्ची की शिकायत लोगों ने नवाब साहेब को पहुँचाई परंतु जब-जब जाँच की गई तो गुरू साहेब ही का अधिक पावना नवाब की ओर निकलता रहा ॥

२४ ज्येष्ठ संवत १५४५ को बहिन बहनोई के आग्रह से गुरुजी का ब्याह पक्खो ज़िला गुरदासपुर के निवासी मूलचंद्र चोना खत्री की सुलक्षणी नामक पुत्री से हुआ और ५ श्रावण संवत १५५१ को गुरुजी के घर एक ऐसा रत्न पुत्र उत्पन्न हुआ कि जिसकी कीर्त्ति अब तक भारतवर्ष में छा रही है। उनका नाम गुरुजी ने श्रीचन्द्र रक्खा जो आगे चलकर उदासी साधू सम्प्रदाय के मूल पुरुष हुए। इनका जन्म माता के गर्भ से जटा, विभूति, कर्णमुद्रादि बेष सहित हुआ था। १६ फाल्

संबत १५५३ को दूसरे पुत्र लक्ष्मीचन्द्र प्रगट हुए जिनकी वंश परंपरा अब तक विद्यमान है।

इसी काल में एक देवी-भक्त भागीरथ नामी अपने बहुत से चेलों और साथियों सहित गुरु साहेब का शिष्य हुआ॥

एक बार मरदाना मीरासी अपनी पुत्री के ब्याह के खर्च के लिये गुरू साहेब से सहायता माँगने आया। उन्होंने ब्याह की सब सामग्री की एक फ़िहरिस्त बनाकर भागीरथ को लाहौर शहर भाई मनसुख की दुकान से लाने को भेजा। मनसुख ने और सब सामान तो बाँध दिया परन्तु अच्छे चूड़ा (चिउड़ा) के लिये कहा कि दो दिन पीछे मिलेगा लेकिन जो कि भागीरथ को गुरु साहेब की एकही रात लाहौर में ठहरने की आज्ञा थी इसलिये उसने अपनी मजबूरी ज़ाहिर की। मनसुख बोला कि बादशाही नौकर भी इस तरह अपने मालिक की आज्ञा नहीं पालते तुम किसके नौकर हो जिससे इतना डरते हो। भागीरथ ने अपने सतगुरु का नाम लेकर उनकी किंचित महिमा जनाई जिस पर रात भर दोनों में बाद बिबाद और बार्तालाप होने के पीछे मनसुख के चित्त में गुरू नानक साहेब के दर्शन की उमंग जागी और प्रातःकाल ही वह अपने गृहस्ती खर्च का उत्तम चूड़ा लेकर भागीरथ के साथ स्वयं सुलतानपुर आया। सामने आते ही गुरू साहेब ने उस पर दया दृष्टि डाल कर यह बचन फ़रमाया—

"पूर्ब थो मनसुख यह काचा। कियो नाम चाहत अब साचा॥
याँते आन्यो अपने संगा। धन्य संत मत कीट भृङ्गा॥"

इसके सुनते ही मनसुख गुरू साहेब के चरणों पर गिर पड़ा और शिष्य होकर बड़े प्रेम से सुमिरन ध्यान और भजन में लग गया॥

संबत १५५४ में गुरुजी एक दिन नियमानुसार पहर रात रहे सेवक के साथ वेईं नदी पर स्नान को गये तो वहाँ एक साधू[१] से भेंट हुई जिसने चेताया कि बाबा नानकजी तुम किस काम के लिये इस संसार में भेजे गये हो, तुम्हारे लिये सच्चे दरबार से क्या आज्ञा है और कर क्या रहे हो! इस पर गुरुजी

(१) किसी इतिहासकार ने इस साधू को नारद लिखा है किसी ने बरुण। नारद उस दैवी शक्ति का नाम है जो मालिक की ओर से भूमि तथा आकाश पर महात्माओं के पास उसकी आज्ञा को पहुँचाती है, और जल में आज्ञा पहुँचाने वाली शक्ति वरुणदेव कही जाती है।

उस साधू के साथ वेईं नदी में घुस कर तीन दिन तक गुप्त रहे। लोग अपनी-अपनी समझ के अनुसार कोई कहते थे कि डूब गये, कोई और कुछ अनुमान करते थे परन्तु वास्तव में गुरुजी अपने शरीर को योगबल से समाधि की दशा में नदी में स्थापित करके सत्य पुरुष के चरणों में सत्य नाम का खुल्लम खुल्ला उपदेश करने की आज्ञा के लिये सच्च खंड में गये। तीन दिन पीछे जब वह नदी से निकले तो मोदीखाने में जाकर सब सामग्री सीधा साधुओं और भूखों को लुटा दिया और आप अतीत रूप धारण करके स्मसान भूमि में जा पधारे। इनके बहनोई दीवान जयराम ने इनको घर लाने का बहुत जतन किया परन्तु इन्होंने एक न मानी॥

द्रोहियों को यह अच्छा अवसर मिला और उन्होंने यह शोर मचा दिया कि मोदीखाने में घाटा आने से नानक पहिले तो छिप बैठा था और अब यह स्वाँग रचा है। जब यह खबर नवाब के कान तक पहुँची उसने दीवान जयराम से मोदीखाने की परताल कराई तो ७३०) गुरुजी का नवाब के जिम्मे निकला जिसे आधा तो गुरुजी ने भूखों और अनाथों को बँटवा दिया और आधा ससुर के आग्रह से बाल बच्चों को दिलवाया॥

अब तो गुरु साहेब ने सत मार्ग और सत नाम का भंडारा खोल दिया और सब को उसका उपदेश करने लगे जिसका नतीजा थोड़े ही समय में यह हुआ कि बहुत से हिन्दू और मुसलमान आदि अपने-अपने मत या दीन का बंधन तोड़ कर उनके चरणों में आ लगे। यह बात क़ाज़ी और मुल्ला लोगों से सही न गई और सब ने मिलकर नवाब साहेब से शिकायत की कि बाबा नानक अपने को सच्चे खुदा का बन्दा और हिन्दू मुसलमान को एकसा मानना ज़ाहिर करता है सो यह बात बनावट की है हम उसे तब सच्चा मानें जब वह खुदा की बंदगी में हम लोगों के साथ मस्जिद में चलकर नमाज़ पढ़े। इस पर नवाब ने गुरु साहेब को बुलवा कर कहा कि हमारे साथ नमाज़ पढ़ने मस्जिद को चलो। गुरु साहेब साधारण स्वभाव से नवाब और क़ाज़ी के साथ हो लिये जब मस्जिद में पहुँच कर लोग नमाज को खड़े हुए तो गुरु नानक साहब उनसे अलग होकर एक कोने में जा बैठे। जब नमाज हो चुकी तब लोगों ने नवाब से कहा कि देखिये! इनका कपट खुल गया, क्योंकि हम लोगों के साथ नमाज में शरीक नहीं हुए। नवाब ने गुरु साहेब से इसका कारण पूछा तो उन्होंने जवाब दिया कि जो कोई एक चित्त होकर खुदा के सामने सिजदा करे हम उसी के शरीक हैं चाहे वह हिन्दू हो चाहे मुसलमान, परन्तु जिसका चित्त

ठिकाने नहीं रहता हमारा उसका साथ नहीं हो सकता। यहाँ पर साधारण लोगों का क्या कहना, न तो नवाब साहेब ही का चित्त नमाज में था और न क़ाज़ी का; क्योंकि नवाब साहेब का चित्त तो काबुल कन्धार में घोड़े खरीद कर रहा था और क़ाज़ी का मन अपने घोड़े के नये जनमे हुए बछड़े की रक्षा के लिये दौड़ रहा था कि कहीं अस्तबल (घुड़साल) के कुए में न गिर पड़े— भला यह मालिक की बन्दगी हुई या किसकी? इसी कारण हम आप लोगों के नमाज में शरीक नहीं हुए। यह सच्चा बचन और अंतर-यामता का कौतुक देखकर दोनों चकित हो गये और गुरू साहेब के चरनों पर गिर कर बोले कि आप सच्चे वली-अल्लाह हैं अब बतलाइये कि हमारे लिये क्या कर्तव्य है कि जिससे दीन दुनियाँ दोनों की भलाई हो। गुरू जी ने जवाब दिया कि यदि तुम दीन दुनियाँ दोनों का सुधार चाहते हो तो हमारे कहने मुताबिक पाँच नमाज़ें सदा पढ़ा करो। क़ाज़ी ने पूछा कि वह कौन सी नमाज़ें हैं। गुरू जी ने "पंच नमाज़ाँ वक्त पंज आदि[1]" का शब्द उच्चारण किया और देर तक परमार्थी और संसारी सच्ची लाभदायक चरचा करते रहे; इस प्रकार उनकी अभिलाषा को पूर्ण करके फिर पहिले की तरह स्मसान भूमि में जा बैठे। वहाँ कई-कई दिन तक बिना अन्न जल के ध्यान भजन में निरंतर जुटे[2] रहते थे और जो जिज्ञासू उनकी सेवा में आते उनको सत मार्ग का उपदेश करते थे, परंतु जब वहाँ भी बहुत भीड़ भाड़ होने लगी तब एकान्त के रसिया गुरू साहेब ने उस जगह (सुलतानपुर) को भी छोड़ने की ठानी। लेकिन इसी अवसर में तलवंडी से पिता का भेजा हुआ घर का मीरासी मरदाना गुरु जी का कुशल समाचार लेने को पहुँचा और उनके साथ बाहर जाने की अभिलाषा प्रगट की जिसको गुरु जी ने मंजूर किया और जब तक मरदाना एक बार अपने घर होकर लौट न आवे तब तक वहाँ पर ही ठहरे रहना स्वीकार किया।

अब तो गुरु जी का अतीत भेष धारन करने का समाचार सुन कर उनके पिता और दूसरे सम्बन्धी और ससुराल वाले सब घिर आए और जहाँ तक उनका बश चला उनको घर लेजाने का जतन किया पर गुरु जी किसी तरह न माने और बाला तथा मरदाना को अपने साथ लेकर सम्बत १५५६ में सुलताँपुर

(१) पूरा शब्द श्री गुरू ग्रन्थ साहेब में मौजूद है। (२) ऐसे गाढ़ आवेश की दशा को भूतग्रस्त समझ कर एक झाड़ने फूकने वाले मौलाना को बुलाया गया था जिसके जन्त्र की बटी जला कर नासिका में देते समय गुरू साहेब ने इस श्लोक द्वारा उसे उपदेश किया :— "खेती जिनकी उजड़ी खलवाड़े नाहींथाऊँ। ध्रिग तिनाँ दा जीविआ जे लिख २ वेचन नाऊँ"॥

से चल पड़े। रास्ते में अच्छे अच्छे साधुओं फ़क़ीरों आदि से गोष्टी करते हुए लाहौर में पहुँच कर अपने भक्त जवाहिरमल के स्थान पर ठहरे जहाँ अब तक उनके नाम का गुरुद्वारा मौजूद है। यहाँ अनेक हिन्दू व मुसलमान साधुओं से जिनकी सिद्धी शक्ती और करामात का शोर था और बादशाह सिकन्दर लोदी के गुरु वली सैयद अहमद से सतमत सम्बन्धी चरचा करते रहे और अपने अपने मत के बन्धन की उनकी टेक तुड़वाई और सात दिन में बहुत से साधुओं और गृहस्तों को सतमार्ग का उपदेश देकर ऐमनाबाद को चले आये—यहाँ लालो नामक तक्षक से पहले भेट हुई और उसी का अन्न ग्रहण करते रहे—दीवान मलिक भागो के ब्रह्मभोज के निमंत्रण को किसी प्रकार भी अंगीकार न करके भरी सभा में उसके अन्याय उपार्जित धान्य का प्रजा के रक्त समान होना प्रत्यक्ष दिखला कर धर्म के कमाये हुए अन्न की बड़ाई जताई। इस प्रकार जहाँ तहाँ सतमार्ग का उपदेश करते हुए सम्बत १५६० में स्यालकोट पहुँचे और वहाँ के नामी फ़क़ीर हम्ज़ागौस को उपदेश दिया और फिर वहाँ से पूरब की यात्रा का विचार करके उसी साल हरिद्वार, कनखल में पधारे, जहाँ इनका स्थान "नानक बाड़ा" के नाम से अब तक मौजूद है। यहाँ भी कितने ही पंडों और यात्रियों को सत मार्ग में लाकर सम्बत १५६१ में दिल्ली आये।

दिल्ली के तख़्त पर उस समय सिकन्दर लोदी बादशाह था जिसका क़ायदा था कि जिन साधुओं में सिद्धी और करामात न हो उनको बन्दीख़ाने में डाल दिया करता था जो गुरु नानक साहेब को भी बाला और मरदाना सहित क़ैद कर दिया, परन्तु गुरु साहेब ने ऐसा चमतकार दिखलाया कि बादशाह ने लज्जित होकर उनसे छिमा माँगी और उसको (सत् उपदेश की जिज्ञासा पर)—

॥ तिलंग महला १ ॥

यक अरज़ गुफ़तम पेशि तो दर गोश कुन करतार।
हक्क़ा कबीर करीम तू बेऐब परवरदिगार ॥ १ ॥
दुनिया मुक़ाम फ़ानी तहक़ीक़ दिल दानी।
मम सर मूइ अज़राईल ग्रिफ़तः दिल हेच न दानी ॥ १ रहाउ ॥
ज़न पिसर पिदर बिरादर कस नेस्त दस्तगीर।
आख़िर ब्यफ़तम कस न दारद चूँ शवद तकबीर ॥ २ ॥
शबो रोज़ गशतम दर हवा करदेम बदी ख़याल।
गाहे न नेकी कार करदम मन ईं चुनीं अहवाल ॥ ३ ॥

बद्बख्त् हमचु बख़ील ग़ाफ़िल बेनज़र बेबाक।
नानक बुगोयद जन तुरा चाकराँ पाषाक ॥ ४ ॥

इस शब्द द्वारे उपदेश दिया। उसने केवल उन्हीं को नहीं बल्कि और बहुत से साधुओं को भी जिनको पहिले से क़ैद में डाल रक्खा था गुरु साहेब की आज्ञा से छोड़ दिया।

इस प्रकार दिल्ली में गुरु जी ने कौतुक दिखला कर और मियाँ मारूफ़ सरीखे नामी फ़क़ीरों को भी अपना प्रेमी बना कर और बहुतों को सतनाम का उपदेश देकर अलीगढ़ को प्रस्थान किया और वहाँ होकर मथुरा वृन्दावन वासियों को चेताते हुए आगरा में पहुँचे। आगरा में जहाँ आपने निवास किया था वह स्थान अब तक "गुरु की धर्मशाला" के नाम से उपस्थित है। वहाँ से चल कर कानपुर, लखनऊ, अयोध्या की यात्रा करते हुए संवत १५६३ में काशी जी में पधारे और नगर के पच्छिम दिशा में एक बगीचे में जिसे अब तक "गुरु का बाग" बोलते हैं बिश्राम किया। काशी में गुरु जी के आने की धूम मच गई और सब मत के लोग हिन्दू मुसलमान प्रति दिन उनका दर्शन करने और उपदेश सुनने को आया करते थे परन्तु गुरु जी ऐसे मध्यभावी शब्दों से उपदेश किया करते थे कि बड़े बिचारवान भी उनके मत के सिद्धांत को नहीं जान सकते थे। मुसलमान समझते थे कि वह उनके दीन की हिदायत करते हैं, वैष्णव और शैव और शाक्त इत्यादि उन्हें अपने-अपने मत का प्रचारक समझते थे किन्तु गुरु जी एक सत्य वस्तु को ही दृढ़ाते तथा वर्णाश्रम भेद का खंडन और एक सत्य नाम का मंडन करते रहे जैसा कि उस समय के इस बचन

"दूजा काहे सिमरीए जम्मे ते मर जाय।
एको सिमरो नानका जो जल थल रहिआ समाय ॥"

से प्रतीत होता है।

उस काल में काशीबासी कई प्रमाणिक भक्तों के साथ भी गुरु जी का मेल तथा चर्चा वार्ता का प्रसंग होता रहता था। पंडितों के साथ जो वार्तालाप हुआ श्री गुरु ग्रंथ साहेब में सहसकृती श्लोकों के रूप में यथावत् अंकित है। जिस समय में बाबा नानक साहेब काशी में ठहरे थे कबीर साहेब नगर से बाहर रघुनाथपुर गाँव में गये हुए थे। गुरु साहेब का आगमन सुन कर मिलने की अभिलाषा से कबीर साहेब तो काशी को लौट रहे थे और बाबा नानक साहेब रघुनाथपुर को जा रहे थे कि रास्ते ही में दोनों महापुरुषों का मिलाप हुआ और कई दिन तक वहाँ ही चर्चा बार्ता होती रही जिसका सार-गर्भित भाव इसी

प्राण-संगली के ग्रंथ में "कबीरजी की गोष्टी" के नाम से प्रगट है। कितने लोग कहते हैं कि गुरू नानकजी कबीर साहेब के चोला छोड़ने के पीछे उत्पन्न हुए और इस लिये कबीर गोष्टी का होना नहीं मानते हैं परन्तु जैसा कि कबीर साहेब की शब्दावली भाग १ में उनके जीवन-चरित्र में अनेक प्रमाणों से दिखलाया गया है कि कबीर साहेब सम्वत १४५५ से १५७५ तक [धनी धर्मदास जी के कथन अनुसार १५७१ तक] वर्त्तमान थे तो फिर सम्बत १५२६ से १५७१ या १५७५ तक दोनों महात्माओं का सहकाली होना सिद्ध होता है। "कबीर कसौटी" के प्रमाणिक ग्रन्थ में लिखा है—

पंद्रह सौ पचहत्तरा, कियो मगहर को गौन।
माघ सुदी एदादशी, रली पौन में पौन॥

काशी में कुछ दिन रहकर गंगा तट के रास्ते गुरू साहेब बकसर, छपरा, पटना में सदुपदेश करते हुए सम्वत १५६३ में राजगिरी तथा बिहार प्रांत की यात्रा करते हुए गया पहुँचे जो हिन्दुओं के पिंडदान और दीपदान का मुख्य स्थान है। यहाँ पंडों ने उनसे पिंडदान आदि करने को बहुत आग्रह किया पर गुरू जी ने एक न सुनी और

"दीवा मेरा एक नाम दुख विच पाया तेल।
उन चानन उन सोखीआ चूका जम सिऊँ मेल॥"

इत्यादि शब्दों से उनको उपदेश दिया॥

गया से चलकर बुद्धगया अर्थात् बुद्धदेव की अवतार भूमि में पहुँचे वहाँ के गोसाईं देवगिरि महन्त जो प्रतापशील महाराज सरकार कहलाते थे गुरू साहेब के बचनों से ऐसे मोहित हुए कि उन्होंने 'सत्य नाम वाह गुरू" की रटन पपीहा की भाँति लगा दी, जिसके प्रभाव से कुछ काल पीछे उनका प्रतिष्ठित गद्दी-नशीन चेला भक्तगिरि अपनी सारी सम्पत्ति को त्याग के अपने बहुत से शिष्यों समेत पंजाब में आकर गुरु साहेब की सातवीं गद्दी के मालिक श्री गुरू हरिराय साहेब का सेवक बन कर "भगवान" के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इसी के नाम पर उदासीन साधू "भेष भगवान" कहलाते हैं। बुद्धगया की मूर्त्ति की केवल पीठ का दरशन होता है इसका कारन मरदाना ने गुरुजी से पूछा जिसके जवाब में गुरुजी बोले कि यह महात्मा अब से दो हज़ार बरस पहिले केवल राजनीति का उपदेश किया करते थे और परमार्थी ठगों से जो परलोक का उपदेश देने के ओझले में सीधे सादे लोगों से लाखों रुपया ठग कर दुराचार में खर्च करते थे ऐसे दुष्टों से उन्हें बचाने के लिये इन्होंने लोगों के चित्त में

परलोक तथा उनके ईश्वर का अभाव बिठलाया था और इस प्रकार से उस समय के धूर्तों की ठगई से उनको बचाया, और फिर यह बिचार कर कि जिस मुख से मैंने ईश्वर के बिपरीत उपदेश किया है उसे अब संसार को क्या दिखलाऊँ "यह आज्ञा की" कि लोग मेरी कमर ही का दरशन करें ॥

वहाँ से चलकर गुरूजी वैद्यनाथ होते हुए और रास्ते के नगरों में सत्य नाम का उपदेश करते सम्वत १५६४ में मालदेव पहुँचे और वहाँ से ढाका को आये और वहाँ की जादू टोना में कुशल स्त्रियों को मिथ्या दुराचारों से हटा कर सत्यनाम का उपदेश किया और फिर कामरूप तथा दूसरे दुराचारी स्थानों में बिराजे और वहाँ के बाममार्गी मत वालों को जो कमचा देवी को अपना इष्ट मानते थे अपने सदोपदेश से एक अकाल पुरुष की पूजा दृढ़ाई। इसी सम्वत की १३ फालगुन को गुरूजी समुद्र के किनारे गोरीपुर धोबिया बन्दर में पहुँचे जहाँ पर इनके ठहरने का स्थान "दमदमा साहेब" के नाम से अब तक वर्तमान है ॥

वहाँ से सम्बत १५६५ में ब्रह्मपुत्र नदी से पार होकर आसाम के अजमेरी-गंज, करीमगंज, सिलहट आदि नगरों के निवासियों को चेताते हुए सरिता नदी के पार कछार देश में पहुँचे और मनीपुर, रोसमफल आदि होते हुए लोशाई में पधारे और वहाँ के राजा देवलूत को जो महा दुष्ट, परदेसी जनों का घातक था दया दृष्टि से सुधार कर शरण में लिया। फिर मधुराकाड़ी, अगरतला, लचीपुर और पदुमा नदी के पार फ़रीदपुर, केशवपुर आदि २४ नगरों के निवासियों को अपने सदुपदेश का लाभ देते हुए कलकत्ता में आन बिराजे जो उस काल में बहुत छोटा सा शहर कलीकिट के नाम से बोला जाता था। वहाँ के जीवों को चेता कर हुगली नदी के पार बालेश्वर, मेदनीपुर आदि शहरों की यात्रा करते हुए कामठी, वैतरनी, ब्राह्मणी, महादेवी आदि नदियों के पार कटक नगर में जा बिराजे और इन सब स्थानों में सच्चे परमार्थ का सदावरत चलाया। इन सब जगहों में गुरूजी के नाम से गुरस्थान या धर्मशाला अब तक मौजूद हैं। इस प्रकार भ्रमन करते करते २७ चैत सम्बत १५६६ को जगन्नाथपुरी में पहुँचे और लोगों के भ्रम और पाखंड का खंडन करके—

"गगन मय थाल रवि चन्द दीपक बने, तार का मंडला जनक मोती।
धूप मल्यान लो पवन चवरो करे, सगल बनराय फूलत जोती ॥
कैसी आरती होय भवखंडना दयाल तेरी—
आरती, अनहता शब्द वाजन्त भेरी ॥"

इत्यादिक परमार्थी आरती निरूपक शब्दों के द्वारा उपदेश दिया। वहाँ से क्रमागत (इतिहास प्रोक्त) अनंत शहरों के अधिकारियों को चेताते हुए तथा साधू फ़क़ीरों से गोष्टी करते हुए कुरुक्षेत्र को लौटे और रास्ते में करनाल शहर में शेख़ शर्फ़के मुरीद शेख़ शमल को जो बहुत से फ़क़ीरों तथा अमीरों को साथ लेकर गुरूजी से भेंट करने आया था गुरू साहेब ने अपनी अनूठी दया दृष्टि और सदुपदेश से ऐसा मोहित किया कि सब उनके मुरीद हो गये। फिर सूर्य्य ग्रहण में थानेसर पहुँच कर वहाँ के पंडितों को परास्त किया तथा नानक चन्द्र पंडित जिसने कि भविष्यत पुरान के लेख अनुसार गुरू नानक का अवतार होना जान कर अपना नाम नानक चन्द्र प्रसिद्ध कर रक्खा था उसका सम्पूर्ण विद्या मद चूर्ण करके उसको चतुर्दास आदि पंडितों समेत सत्य नाम का उपदेश दिया। इसके पीछे सुलतानपुर शहर में लौट आये और प्रथम यात्रा समाप्त हुई॥

॥ इति प्रथम यात्रा ॥

पूरब दिशा की यात्रा के पीछे गुरु साहेब सुलतानपुर को लौट आ और कुछ काल वहाँ ठहर कर अपने पुराने प्रेमियों और सेवकों को निज दर्श और बचन से कृत्यकृत्य किया। फिर १५६७ बैशाष मास में दक्षिण दिश को (वहाँ) सत्य नाम की वर्षा करने के हेतु चल पड़े। रास्ते में मारवा गौड़ देश आदि के सब मत के ग़रीबों अमीरों और भेषों को चेताते हुए अवं में पहुँचे और नामदेव भक्त के साथ ज्ञान गोष्टी की। वहाँ से चल कर मार्ग नगरों में संत मत का बीजा डालते हुए हैदराबाद, अमराबाद होते हुए बिद शहर में आन पधारे जहाँ उनके ठहरने का स्थान "नानक किहरा साहेब" नाम से प्रस्तुत है। सैयद याक़ूबुदीन और जलालुदीन से इसी जगह गोष्टी हुई यहाँ से गिनपुर पांगल प्रांत में एक पहाड़ की चोटी पर आन बिराजे ज बहुत कनफटे नाथ रहते थे जिन्होंने गुरु नानकदेव जी की परीक्षा के लिये ए तिल का दाना आन भेंट रक्खा। गुरू साहेब ने उसे जल में पिसवा कर अप नियम अनुसार सब को बँटवा कर उनको परचा दिया इसी कारण यहाँ गुरुस्थान "तिल गंज" के नाम से विख्यात है॥

वहाँ से चल कर रास्ते के नगरों और पहाड़ों को पवित्र करते मदरा प्रांत होते हुए तंजोर आये और फिर पालमकोट शहर में पधारे जहाँ

प्रसिद्ध गुरुस्थान अब तक है। आगे चल कर सेतबंध रामेश्वर में पहुँचे जहाँ सिद्धों के साथ चार पाँच बार गोष्टी हुई जो इस प्राण-संगली में मौजूद है॥

सेतबंध रामेश्वर से समुद्र पार कर गुरू साहेब सिंगलादीप में आन बिराजे जहाँ का बिरहातुर राजा शिवनाभ उनके दर्शन के लिये पपीहा की नाईं रटन लगाये तड़प रहा था। इस जगह संक्षेप में हाल राजा के ऐसी दशा को प्राप्त होने का लिखा जाता है :—

भाई मनसुख भक्त, जिसके शिष्य होने का हाल पृष्ठ ९ जीवन-चरित्र में छपा है, कुछ काल पहिले सिंगलादीप में बनिज के निमित्त आया था जहाँ का राजा शिवनाभ उस समय तक बड़ा पक्का वैष्णव था और उसकी सारी प्रजा भी उसी मत में दृढ़ थी। भाई मनसुख की रहनी अर्थात सवा पहर रात रहे ही स्नान करके गुरू साहेब के शब्दों के पाठ और उनके ध्यान सुमिरन में बिना दिखावे के लग जाना व और किसी प्रकार के लौकिक कर्म धर्म की पर्वाह नहीं करना वहाँ के लोगों को खटकी और राजा तक शिकायत पहुँची कि यह आदमी धर्म के विरुद्ध चाल चलता है। राजा ने बुलाकर भाई मनसुख से कारन पूछा और बहुत से प्रश्न किये जिनके मनसुख ने जो उत्तर दिये वह थोड़े से लिखे जाते हैं—

"हे राजन जगत एक तरवर समान है जिसके शिखर पर मुक्ति का फल लगा हुआ है। सर्व संतों तथा शास्त्रों ने उस की प्राप्ति के दो मार्ग कहे हैं— एक बिहंगम मार्ग और दूसरा कीटि चाल। जिनको सतगुर दयाल मिल जाते हैं वह तो पची के समान बिना परियास उस फल को पा लेता है परन्तु जिन जीवों की सतगुर से भेंट नहीं हुई उनको इस फल की प्राप्ति अति कठिन है। तुम एकादशी व्रत का संजम पन्द्रह दिन पीछे एक दिन करते हो और काम क्रोध आदि बिकारों के त्याग तथा अल्प अहार और जागरन के लिये तुम लोगों ने केवल एक दिन नियत किया है पर संत जनों का तो यह प्रति दिन का संजम है--अल्प अहार स्वल्प निद्रा उनका सहज ही धर्म है और काम क्रोध आदि का बल उन पर चल ही नहीं सकता। यह तो सतमत के धर्म तथा संजम की बात हुई अब स्नान की सुनो। रात्रि के स्नान का फल अधिक होता है। पहर रात रहे स्नान का फल स्वर्ण तुला दान के समान होता है, चार घड़ी रात रहे नहाने का फल चाँदी के तुला दान के तुल्य है, एक घड़ी रात रहे नहाने वाला सवा मन दूध के दान का और प्रातःकाल नहाने वाला मन भर जल दान का पुण्य पाता है, परन्तु जो दिन चढ़े नहाता है वह

देही का मल धो डालने के सिवाय किसी फल का भागी नहीं होता—ऐसा निगमागम का बचन है। अब पाषान पूजा के विषय में सुनो—हे राजन पाषान मूर्ति न तो कुछ खाती पीती और न कुछ उपदेश ही करती है उसकी पूजा से मुझे किंचित फल प्राप्त होने की आशा नहीं, मैं तो केवल अपने परम दयालु पूरे सतगुरों की ही आराधना करता हूँ जिनके बचन सूर्य समान अज्ञान अंधकार की निवृत्ति करते हैं, जिन्होंने कि विहंगम समान उड़ने की युक्ति का मुझे दान देकर मुक्ति फल का रस चखाया है उसे त्याग कर मैं कर्म धर्म व्रत पूजा आदि कीटि मार्ग रूप तुच्छ आचार को कैसे ग्रहण करूँ, इनके प्रभाव से तो केवल अंतःकरण की किंचित शुद्धि होती है किन्तु मुक्ति तो सतगुरों की दया दृष्टि और उपदेश से ही हाथ लगेगी। तिलक लगाने के विषय में भी सुन, जिसे राज दिया जाता है उसके माथे पर तिलक चढ़ाया जाता है, हमको सिक्खी के राज का ताज गुरु शब्द का तिलक सतगुरों ने हमारे सिर पर हाथ धर कर एक बार बख्श दिया है सो हमें बार-बार अब तिलक की आवश्यकता नहीं रही, हम केवल गुरू साहेब का हाथ ही सदैव अपने मस्तक पर चाहते हैं।।"

ऐसी-ऐसी बहुत सी उपदेश तथा प्रेम की चरचा से राजा शिवनाभ के सम्पूर्ण मर्म भेद हो गये और श्रद्धा और प्रीत हृदय में उमँगने से राजा चकित सा रह गया। फिर बिरहातुर राजा ने मनसुख से प्रश्न किया कि आप के सतगुर कौन हैं, उनके कुछ बचन भी सुनाओ। उत्तर—

"श्री नानक सब पातक हारी। अस कहि प्रेम बढ़्यो उर भारी॥
गद्गद बाणी पुलकित अंगा। लोचन छावा नीर उमंगा॥"

फिर मनसुख ने राजा को धीरज देकर गुरु बाणी पढ़ कर सुनाई जिसे सुनते ही वह प्रेम बान से घायल हो गया और बिरह से बेकल हो कर दर्शन की लालसा में बोला—

"मुझ को दर्शन देहु कराई। कर उपकार दीन की न्याईं॥
जिस प्रकार श्री नानक पूरण। मिलहिं उपाय करहु सो तूरण॥
गवनों मैं अब तुमरे संगा। तज करि देश राज सर्बङ्गा॥
करिकै दर्शन भर्म मिटावौं। ले उपदेश परम पद पावौं॥
जिनके बचन सुने मन मेरे। शांति न आवत बिन अब हेरे॥"

यह प्रेमातुर दशा राजा की देख कर और राज पाट त्याग कर अपने साथ ले चलने का उसका हट जानकर मनसुख बोला कि हे राजन् यदि तुम मेरे साथ चलोगे तो एक मुद्दत में दर्शन होंगे इस लिये अपने देश और राज

को मत त्यागो वरन यहीं रह कर सतगुर का स्मरन करते रहो वह अंतरजामी और भक्त-वत्सल हैं थोड़े ही दिनों में दर्शन देकर आशा पूरन करेंगे। राजा ने मनसुख के इन आज्ञामई वचनों को स्वीकार किया और घर ही रह कर दिन रात "गुरू नानक" "गुरू नानक" का रटन करने लगा, नींद भूख घटने लगी, संसारी काज की ओर से मन उपराम हो गया और केवल गुरु नाम और गुरु दर्शन की आशा उसके जीवन के आधार हो गये।

ऐसी दशा राजा की थी जब कि गुरू साहेब सिंगलदीप में आन पधारे। यद्यपि राजा के बिरह और प्रेम का हाल सुन कर कई एक साधू फ़क़ीर गुरू नानक साहेब का भेष धर कर राजा को ठगने आ चुके थे परन्तु जब सच्चे सूर्य्य का उदय हुआ तो उसने क्षण मात्र में घट घट को प्रकाशित कर दिया। यद्यपि राजा परिचित होकर गद्‌गद तो हो गया फिर भी इस कहन के अनुसार कि दूध का जला छाछ फूक फूक कर पीता है, गुरू साहेब की कुशलता के साथ मनसुख की बताई हुई बातों से पूरे तौर पर परीक्षा कर ली। तब हाथ जोड़ कर बड़ी दीनता से उनके सन्मुख खड़ा हो कर पूरे प्रेम से उनके रूप को निहारने लगा, परन्तु गुरू जी उसकी ओर पीठ करके मौनी स्वरूप हो बैठे और राजा उसी प्रकार ढाई पहर तक हाथ बाँधे खड़ा रहा। जब गुरू जी ने उसकी प्रीत और प्रतीत को अडिग्ग देखा तो बोले "राजन कुशल आनन्द तो है कहो तुम्हारे मन की क्या अभिलाषा है।"

राजा—"प्रेम विषै भी गद्‌गद बानी। भनत विनै उस्तति पद सानी॥
जन्म धन्य बड़ भाग हमारा। जाँ ते दर्शन भयो तुमारा॥
मन मेरे की जानहु स्वामी। बनै न कहिबो अंतर्यामी॥
अस न मनीषा तुमहिं पछानों। रसना शक्ति न नुतहि[१] बषानों॥"

ऐसी प्रार्थना के पीछे राजा तीन प्रदक्षिणा देकर चरणों पर गिर पड़ा और बोला कि मुझे तन मन धन से अपना दास जानिये और मेरे घर पधारिये। गुरू साहेब ने आज्ञा की कि धर्मशाला बनवाओ तो वहाँ हम चलें। राजा ने हज़ारों कारीगरों से रात दिन काम करा कर धर्मशाला जल्द तैयार करादी और चंदन गुलाब आदि से सुगंधित करके गुरू साहेब के लाने को गया तो महाराज उसके देखते-देखते योग बल से अंतर्ध्यान हो गये और—

"बिना बिलोके बिहवल राऊ। धरनि गिरयो तन सुधि नहिं काऊ॥
लगी प्रितिका अंगन माहीं। लीन उचाय सेवकन ताहीं॥
पोंछ अंग कर पौन झुलाई। चेतनता भूपति तन आई॥

(१) स्तुति।

बोल्यो बानी होय सशोका। कित गे श्री नानक सुख ओका ॥
जिन के दर्शन तीनहु तापा। तनक बिलोकत होवत खापा ॥
कितक दिवस की लगी उडीका। अब प्रापत भा सुख मम जी का ॥
मंद भाग भा मोर महाना। भये शपद ही अंतर्ध्याना ॥
अस कहि कानन[१] की दिश दौरा। प्रेम प्रबल ने कीनो बौरा ॥
आरत होय पुकारत भारी। प्राननाथ मिलिये इक बारी ॥
दौर दौर सुध हेतु मुकंदा। बूझत बिटप[२] बिहंगन वृन्दा[३] ॥
गिरिवर सरवर ह्वै कर तीरा। तुम देख्यो कत गुनी गहीरा ॥
बिकल बचन बोलत बन माहीं। किंह अस्थान बिलोके नाहीं ॥
स्वेद[४] अंग पुन लोचन नीरा। सर्व भीग गे चीर[५] शरीरा ॥
गिरयो धरनि पर ह्वै मुरछाई। तब प्रगटे श्री गुर जग साँई ॥"

इस तरह गुरू साहेब ने स्वयं प्रगट होकर अपने हाथ से विरह बान से घायल राजा का मुख पोंछा और मंद-मंद पवन डोला कर मुख में जल चुवाया। जब राजा को शरीर की सुधि आई तो अपने निकट प्रीतम को खड़ा देख कर निढाल हो चरणों पर गिरा और प्रेम रस में सनी गद्गद बानी से बोला—

"धर्मशाल[६] मैं त्रिजी[७] स्वामी। तुम कित गमने अंतर्यामी ॥
अब चल करिये नगर पवित्रा। बैस राजिये भवन बचित्रा ॥"

गुरू जी महाराज राजा की प्रेम भरी और दीनतामय विनय से प्रसन्न होकर धर्मशाला में जा पधारे जहाँ राजा ने बड़े उत्साह के साथ रानी सहित उनकी षोड़श प्रकार की पूजा करके स्वर्ण थाल में बिधिवत आरती की और सच्चा शिष्य बन कर गुरू साहेब से अष्टयोग तथा भक्तियोग (सुरत शब्द) का सांगोपांग उपदेश पाकर मुक्ति का परवाना हासिल किया। गुरू साहेब ने राजा के प्रेम के बश कुछ काल वहाँ रह कर और ११३ अध्याय रूप "प्राण संगली" की रचना द्वारा सब प्रकार के योग में उसे दृढ़ करके उस योग कला-निधि रूप अनमोल ग्रंथ को इस आज्ञा के साथ राजा के अर्पण कर दिया कि उसे अपने पास सँभाल कर रक्खे और जब कोई शिष्य गुरू साहेब के देश का लेने को आवे तो उसे दे देवे।

इस प्रकार संगलादीप के राजा और रानी और मंत्रियों सहित सब प्रजा

(१) बन। (२) पेड़। (३) झुण्ड। (४) पसीना। (५) कपड़ा। (६) धर्मशाला। (७) बनाई।

को सत्य नाम दृढ़ाने के पीछे गुरू साहेब मालाबार को आये और वहाँ के गद्दीनशीन को अपना शिष्य बनाया और शंकराचार्य्य जी के श्रिंगेरी मठ के महंत से गोष्टी की। फिर वहाँ से रास्ते के शहरों को चेताते हुए नीलगिरी रत्नागिरी आदि स्थानों में पहुँचे और फिर सुलतानपुर को लौट कर अपनी परम प्रेमिन बहिन नानकीजी को दर्शन दिया और सम्वत १५६६ में करतारपुर के नाम से एक नगर बसाया और उसमें धर्मशाला आदि बनवा कर अपने परिवार के लोगों को भी वहाँ ही बुला लिया।

॥ इति द्वितीय यात्रा ॥

सम्बत १५७० में करतारपुर से चलकर नूरपुर सुजानपुर कोट-काँगड़ा के लोगों को उपदेश देते हुए ज्वालामुखी देवी के पंडों तथा जात्रियों को जा चेताया और वहाँ से डलहौजी, धर्मशाला, मनीकरन होते हुए रावलसर, नादौन, बिलासपुर, कहलूर इत्यादि शहरों में बिचरते हुए कीर्तिपुर आये और वहाँ पर बुढनशाह फ़क़ीर से ज्ञान गोष्टी की। उसने दूध की मटकी गुरू साहेब के भेंट की परन्तु उनकी इस आज्ञा पर कि इसे हमारी अमानत की तरह रख छोड़ो हम किसी और काल में ले लेंगे, उस फ़क़ीर ने उसे एक जगह उत्तम भूमि में गाड़ दिया (जिसे छठवीं गद्दी पर के गुरु हरगोबिन्द साहेब ने अपने साहेब-ज़ादे बाबा बूढा साहेब को जो बृद्ध सरूप ही प्रगट हुए थे गुरू नानक साहेब के रूप में भेजकर वापस लिया)। कीर्तिपुर से चल कर महाशिवशील आदि पहाड़ी जगहों में घूमते हुए महाराज देहरादून पहुँचे और मसूरी, चकोतरा आदि में सत्यनाम की वर्षा करते हुए उत्तर काशी को आये और वहाँ साधुओं, महात्माओं आदि से गोष्टी करके वहाँ के अग्नि जल आदि के उपासक जीवों को सच्चा नाम दृढ़ाया। तदनंतर यमुनोत्तरी, गंगोत्तरी, श्रीनगर आदि होते हुए बद्री नारायण में पहुँचे और उस तीर्थ के ब्राह्मणों तथा भेषों को सत्मार्ग का उपदेश देते हुए भीमकोट पहाड़ पर जा बिराजे और उसके समस्त शिषरों की सैर करके रानीखेत, अलमोड़ा, नैनीताल पहुँचे और वहाँ के एक घने जङ्गल में जो गोरखमता के नाम से प्रसिद्ध था जा बिराजे जहाँ पर कि कनफटे जोगी रहा करते थे जिन्हें अपनी सिद्धताई का बड़ा घमंड था। उनसे गुरूजी का गहिरा वाद बिवाद हुआ। उन्होंने अपनी शक्तियाँ भी बहुत चलाई पर अंत को यह लोग हर तरह परास्त हुए जिससे वह गोरखमता स्थान नानक-मता स्थान के नाम से आज तक बोला जाता है। सिद्धों की याचना अनुसार मधुर किया हुआ एक रीठा का पेड़ वहाँ अब तक मौजूद है जिसका अपनी

ओर का आधा हिस्सा तो गुरू साहेब ने मीठा कर दिया था परंतु सिद्ध मंडली अपनी ओर का दूसरा हिस्सा मीठा न कर सकी। प्रतिवर्ष वहाँ मेला लगता है, जो यात्री लोग वहां जाते हैं उनको मीठे रीठे प्रसाद में अब तक दिये जाते हैं ॥

वहाँ से चल कर गुरूजी गोरखपुर आये और उस नगर के भूत प्रेत पूजने वालों को सदुपदेश दिया फिर खाँची झील, मानसरोवर आदि स्थानों में बिचरते हुए सम्वत् १५७१ के फाल्गुन को धवलागिर पहाड़ के रास्ते से नैपाल की राजधानी में पशुपति नाथ महादेव के स्थान पर डेरा किया जहाँ पर कि अब तक गुरु स्थान विद्यमान है। वहाँ से रवाने होकर ललतापाटी होते हुए सिकम देश, कंचनचंगा, डारजिलंग आदि पहाड़ी स्थानों में होते हुए भूटान में आन पधारे ॥

गुरू साहेब के तेज प्रताप तथा मानसिक बल को देख कर बहुत से लोग इनके शिष्य बन गये यहाँ तक कि लामा गुरू जो सदैव से वहाँ का पीर माना जाता था उसको भी गुरू नानक साहेब का सनमान और प्रतिष्ठा करनी पड़ी और उसने उनके बहुत से शब्दों को भूटानी भाषा में तरजमा करके बड़े आदर से अपने पास रख लिया। उस देश में कितने गुरु-स्थान नानक पीर के मकान के नाम से अब तक बोले जाते हैं। इस प्रकार उत्तराखंड में जगह-जगह बिचरते हुए सम्वत १५७३ में गुरू जी फिर करतारपुर लौट आये। उनके करतारपुर पहुँचते ही पंजाब प्रांत के जिज्ञासु जन चारों ओर से घिर आये और हजारों हिन्दू मुसलमान मर्द और औरत कृत्रिम धर्मों को छोड़ कर गुरू जी की शरण में आये और सत्य नाम के उपासक बन गये ॥

॥ इति तृतीय यात्रा ॥

कुछ काल करतारपुर निवास करके गुरू साहेब भाई बाला तथा मरदान को साथ लेकर पच्छिम दिशा की यात्रा को सिधारे। पहिले ऐमनाबाद और वज़ीराबाद होते गुजरात में पहुँचे और जहाँगीर शाह फ़क़ीर से मिलकर रुहितास पहाड़ पर आन पधारे। वहाँ पर पानी नहीं था इसलिये प्यास से व्याकुल मरदाना की प्रार्थना पर भक्त वत्सल गुरू जी ने एक चश्मा मीठे पानी का प्रगट कर दिया जिसको शेरशाह बादशाह ने सम्वत १५९६ में क़िले के भीतर ले लेने का बहुत जतन किया परन्तु उसका सबही परिश्रम व्यर्थ हुआ और चश्मा क़िले के बाहर आज तक मौजूद है। वहाँ से चल कर एक पहाड़

टीले पर पहुँचे, यहाँ भी सिद्ध लोग रहते थे सो उनका भी मान मरदन करके पिंडदादनखाँ, डेरा इसमाईलखाँ, डेरा ग़ाज़ीखाँ, जामपुर, शिकारपुर, हैदराबाद आदि के गृहस्थों और साधुओं को कृतार्थ करते कराची बंदर में आन बिराजे। उस काल में सिंध देश के लोग जड़ पदार्थों की पूजा करते थे परंतु गुरू जी के सदुपदेश से अनेक सिंधियों ने सत मार्ग अङ्गीकार किया और जगह जगह गुरुस्थान और धर्मशाला बनवाईं ॥

कराची से चल कर बलोचिस्तान आदि होते हुए सम्वत १५७५ में मक्का पहुँचे और मक्के की ओर पाँव करके रात को सो रहे। प्रातःकाल जब जीवन नामी मुजाविर आया तो उसने क्रोध में भर कर गुरू जी की टाँग पकड़ कर उन्हें चारो ओर घसीटा परंतु जिधर को उनके चरन फिरे उधर को ही मक्का फिरता हुआ नज़र आया। यह कौतुक देख कर सब ने गुरू जी को वली माना। इस जगह क़ाज़ी रुकनुद्दीन, क़ुतुबुद्दीन आदि के साथ बड़ी लम्बी गोष्टी हुई जो मक्का मदीना की साखी के नाम से प्रसिद्ध है।

वहाँ से मदीना को गये और यहाँ के इमाम वग़ैरह के साथ गोष्टी की और फिर रूम को आये जहाँ के ख़लीफ़ा को जो अति निर्दई था "नसीहत-नामा" उपदेश किया। रूम से गुरू साहेब बगदाद आये जहाँ कई मुसलमान फ़क़ीरों से ज्ञान चर्चा हुई। फिर जलब, द्यार-बकर होते हुए दरियाए फ़रात से पार होकर शहर स्वास में पहुँचे और वहाँ से ईरान के शहर तूरान में आये जहाँ के हाकिम को भलाई के रास्ते पर लाकर एक पानी का चश्मा निकाला जो कि "चरण गंगा" के नाम से अब तक विद्यमान है। यहाँ के बहुत से हिन्दू मुसलमान गुरू जी के शिष्य हुए जिनके वंश परम्परा के लोग गुरू साहब के उपदेश पर ऐसे पक्के हैं कि पंजाब वालों की भी हँसी उड़ाते हैं। उनके निश्चय की पकाई में यहाँ तक कहा जाता है कि जब कड़ाह प्रसाद को तैयार करके गुरू साहेब का भोग प्रसाद होने को रखते हैं तो यदि गुरू जी के पंजे का साक्षात् आकार प्रसाद पर न खिंच जाय तो उसे भोग लगा नहीं मानते।

इस देश से लौट कर जलालाबाद पेशावर होते हुए गुरू जी हसन-अबदाल की पहाड़ी पर पहुँचे जहाँ एक कंधारी फ़क़ीर जिसे वली-कंधारी कहते थे रहता था उसने बहुत सी याचना पर भी मरदाना को जल न दिया तो गुरू जी ने उसके जल कुण्ड को स्वतंत्र अपने आसन के समीप खेंच लिया। वली ने क्रुद्ध होकर एक शिला गुरू जी पर चलाई जिसे इन्होंने हाथ से रोक दिया और

उस शिला पर गुरू जी के पंजे का निशान बन गया जो अब तक मौजूद है। कितने विपक्षी लोग उस निशान को मिटाते-मिटाते हार गये पर वह चिन्ह भीतर से भीतर ही धसा हुआ प्रगट रहा। इस स्थान का नाम "पंजा साहेब" मशहूर है।

वहाँ से चल कर कशमीर, पुणच्छ होते हुए स्यालकोट को लौटे जहाँ बावली साहेब के नाम से गुरु स्थान प्रसिद्ध है। फिर ऐमनाबाद को आये। सम्वत १५७८ में गुरू साहेब के भविष्यत सूचक बचन[१] अनुसार बाबर बादशाह ने सेना समेत आकर ऐमनाबाद को मटियामेल कर दिया और गुरू जी का दर्शन करके उनसे हिन्दुस्तान की बादशाहत पाने का बर लिया। वहाँ से रवाने होकर शेख़ सरवर को अपना कृपापात्र शिष्य बनाया और साहोवालादि गाँवों में उपदेश करते हुए सम्वत १५७९ में फिर अपने करतारपुर स्थान को लौट आये।

कार्तिक १३ सम्वत १५९० को गुरू जी की माता तथा २० दिन पीछे पिता का देहान्त हुआ। इसके पीछे वह शिवरात्रि के मेला पर अचलवटाले पहुँचे। यहाँ भी सिद्धों से चर्चा हुई। यह अंतिम गोष्टी जिसमें भली प्रकार सिद्धों का सुधार हुआ श्री गुरू ग्रन्थ साहेब में मौजूद है। फिर करतारपुर लौट आये और कुछ दिन पीछे मालवा देश की यात्रा करके बहुत से जीवों को चेताया। इसके उपरांत गुरू साहेब ने करतारपुर ही में ठहर कर कालक्षेप किया।

॥ इति चतुर्थ यात्रा ॥

॥ तिलंग महला १ ॥

(१) "जैसी मैं आवै षसम की बाणी तैसड़ा करी ज्ञान वे लालो।
पाप की जञ्ज लै कावलहु धाया जोरी मंगै दान वे लालो॥
शर्म धर्म दुइ छप खलोए कूड़ फिरै परधान वे लालो।
काजीआं बामणां की गल्ल थकी अगद पढ़ैं शैतान वे लालो॥
मुसलमानिआं पढ़हिं कतेबां कष्ट महिं करैं षुदाय वे लालो।
जात सनाती होर हिंदवानीआं एह भी लेखै लाय वे लालो॥
षून के सोहले गावीअहि नानक रत्त का कुंगू पाय वे लालो॥१॥
साहब के गुण नानक आखै मास पुरी विच आख मसोला।
जिन उपाई रंग रवाई बैठा वेखै वख इकेला॥
सचा साहिब सच तपावस सचड़ा निआऊँ करे गुम सोला।
काया कपड़ टुक टुक होसी हिन्दुस्तान सम्हालसी बोला॥
आवन अठत्तरे जान सतानवै होर भी उठसी मर्द का चेला।
सचु की बाणी नानक आखै सचु सुणायसी सचु की बेला" ॥२॥

गुरू नानक साहेब अपने वक्त के ऐसे पाबंद और स्वतन्त्र विशेष प्रकृति के पूर्ण पुरुष थे कि बड़ी-बड़ी यात्राओं में भी इन की नित्य कृया का समय कभी नहीं टलने पाया। पहर रात रहे सदैव उठ बैठते और शौच स्नान आदि करके एकांत में ध्यान में बैठ जाते, और पहर दिन चढ़े ध्यान से उठ कर सदुपदेश करते, और फिर दर्शना-भिलाषियों का यथा योग्य सतकार करके आप भंडार घर में जाकर देखते कि कहीं कोई भूखा तो नहीं रह गया, सब को समान भोजन कराते। फिर एकांत में मालिक का गुणानुवाद करके सतसंग में जा विराजते और करतार महिमा के मिश्रित उपदेश करते, और भजन कीर्तन के उपरांत सभा बिसर्जन हुआ करती और रात्रि काल को भी ऐसी ही रीति से बिताया जाता था। अब तक यही प्रवाह गुरस्थानों तथा गुरु घर के महापुरुषों में चला आता है। उस समय के शिष्यों में बाबा बूढ़ा जी तथा लहना जी मुख्य गुरुमुख थे जिनमें से लहना जी का दरजा बढ़ा चढ़ा था क्योंकि अनन्त शिष्यों तथा पुत्रों में से अंग देने वाली कई भाँति की परीक्षाओं में यही पूरे उतरे जिसके कारण यह अपना लहना अर्थात् लेना लेकर स्वयं गुरू साहेब की रसना द्वारा अङ्गद नाम से विख्यात हुए।

गुरू नानक साहेब ६६ वर्ष १० मास और १० दिन की आयु भोग कर आश्विन बदी १० सम्वत १५९५ को सदेह परम धाम को सिधारे और उनकी गद्दी पर गुरु अंगद बैठे। गुरु नानक साहेब तथा कबीर साहेब के परम धाम सिधारने की लीला एक समान मिलती है—दो पाट की चादर मात्र ही हिन्दू मुसलमान शिष्यों के हाथ लगी जिसे दोनों ने आपस में बाँट कर अपने अपने धर्म के अनुसार मक़बरा तथा देहरा बनाया जो डेहरा बाबा नानक के नाम से प्रसिद्ध है।

गुरू नानक साहेब का जीवन चरित्र अपरम्पार और गंभीर उपदेशों से परिपूर्ण है जो बहुत संक्षेप में (सूची मात्र ही) प्रेमियों की भेंट किया जाता है। विशेष जानने के अभिलाषी श्री नानक प्रकाश, नानक हुलास और इतिहास गुरू खालसा आदि ग्रंथों को देख सकते हैं। भूल चूक क्षमा करनी॥

॥ वाहगुरू सहाय॥

॥ जीवन चरित्र समाप्त॥

॥ इति॥

॥ १ॐ सतगुरु प्रसादि ॥

उत्थानका श्री प्राण-संगली की

॥ श्री गुर परमात्माय नमः ॥

प्रिथ्मे श्री गुरू नानक जी कछुक काल करतारपुर रहे। सर्व लोक शिष्य होय लगे गुरू गुरू जपन। जगत तारन मंत्र उपदेश करते भये। वणत्रिय वाह गुरू होय रहिआ। तां करतारपुर[1] इक खत्री था। इक दिन (उसने) श्री गुरूजी से बेनती करी। कि हे प्रभो! मेरे घरि कन्या है वर के योग्य, अरु मुझमें संम्रथता[2] नाहीं तांते तुम सम्रथ गुर परमेश्वर हो। तब श्री गुरु कहिआ जो कछु सरंजाम[3] है सो लिखि ले आओ। तां ओह[4] लिख ले आया। ते इक भगीरथ सिक्ख सी उसनों[5] हुकम होया, जो तूँ लहौर जाय करि ब्याह का सरंजाम लै आउ। पर जे कल्ल रहैंगा तां तेरा जन्म बिगड़ैगा तां भगीरथ चक्रत होय लहौर भाग गया। ते इक बणीए शाह नूं जा कहिआ। जो इतनी बस्तु सानूं लोड़[6] है। सो मंगाय दे। शाह कहा। अज तूं रहो। भगीरथ कहा, मेरे गुराँ का हुकम है; मैं कल्ल नहीं रहिणा। जे रहांगा तां मेरा जन्म बिगड़ेगा, ताँते मैं जरूर जाणा है। ताँ शाह कहिआ, होर[7] तां सभ कुछ हाज़र है, पर चूड़े दे रंगदे[8] (होयां) रात पवैगी। तां भगीरथ कहा, जी मैं तां त्रैकाल नहीं रहिणा, गुरू थों[9] बेमुख नहीं होना। तां शाह कहा कलिजुग बिच असा कोई नहीं, जु जिस दे बचन ते जन्म बिगड़ैगा। तां भगीरथ कहा मेरा गुरू निरंजन पुरुष है। तां शाह कहा मेरे घर इक चूड़ा है मैं तेरे नाल[10] चलता हौं जे[11] मैं डिठा[12] शक्तिवान—तां तेरा भी, मेरा भी, गुरू होया नहीं ता मुल्ल[13] लै आवांगा। तां दोवैं सरंजाम लै करि गुरू पास आए। तां अंतरजामी समर्थ गुरू आगे ही आखिआ[14], जो भगीरथ आंवदा है पर बड़ी देर लाय करि आंवदा है; ताँ दोवैं आय पहुँते[15]। ते इह आवाज़ सुण लई शाह कहणे लगा जो इह परमेशर है, सच है। तां दोवैं चरनी पए। दर्शन देखते ही शाह दी निशा[16] होई। ते उह होया -- जि तिन्न वर्ष उत्थेही[17] रहिआ। गुरू की बाणी बहुत कंठ कीती सी, ते लिखी भी बहुत; श्री गुरु

---

(१) प्रथम उदासी की यात्रा के पश्चात् इस नगर को रावी नदी के किनारे पर गुरु साहब ने आपही बसाया था। (२) हिम्मत, शक्ति। (३) सामग्री। (४) वह। (५) उसने तई। (६) जरूरत, आवश्यकता। (७) और तो। (८) रांगते हुए। (९) गुरुओं से, गुरुओं के आगे। (१०) साथ। (११) यदि। (१२) देखा। (१३) मोल, कीमत। (१४) कहा (१५) पहुँचे। (१६) समोध, तसल्ली। (१७) उसी जगह।

जी की खुशी होई। मत्था टेक के शाह बिदा[1] होया। घर आया, सौदा खरीद कै जहाज समुद्र बिच भर चलाये। जांदा जांदा संगलादीप राजे शिव नाभ दे शहर जाय उतरिआ। वपार करने लगा। निता प्रति पहर राति तोड़ी[2] कीरतन करै। स्वा पहर रात नाल उठ करि स्नान करि बाणी प्रेम नाल पढ़े। जपजी[3] सिमरै। क्योंजु गुरू का बचन है: -जो अंम्रित वेले जपजी जपै तां सतिगुरु दे अंकि[4] समावै। ते शास्त्र भी कहा है जो प्रातः काल का वड़ा पुन्न है तैसेही उह शाह निता प्रति जपु पढ़े; ते लोक शहर के दिन चढ़े स्नान करि वरत पूजा तिलक करैं। तां लोकां कहिआ हे बणीए ! तू किस देश का है ? जो वरत न नेम, न इकादशी न ऐत[5], न अमावस— कोई नहीं मंनदा[6]। ते इक बाणी ही पढ़दा हैं। तां उस शाह ने उनांदा आखिआ ना[7] मंनिआ। तां लोक शाह की निन्दा करने लगे। ते राजे नूं खबर कीती। सो राजे ने बुलाया ते पूछिया। जो भगत ! तूँ भगत होय कै इह कीह[8] रीति करता हैं। जो वरत, नेम, इस्नान, टिका[9] नहीं करदा। तां शाह कहिआ राजा जी ! मैनू महाँ पुरुष का दर्श होया है। मैं मुक्त रूप होया हाँ ! राजे कहा दर्शन ते तेरी निशा होई है ? तां शाह कहा— जी ! जाँ परमेशर मिलिआ तां भरम केहा[10] रहे तां राजे कहा; शाह ! कली काल मैं महाँ पुरुष किथे[11] हैं जिसदे मिले मुक्ति होवै। तां शाह कहा राजा जी ! मेरा गुरू प्रत्यक्ष निरंकार है, निरंजन पुरुष है। उसके तां नाम लीए मुक्ति होंदी है। तां राजे दे समझ बिच कुछ न आवै ते गुस्से हो करि बाणीए नू बंद[12] चा कीता।

तां इक दिन एक ब्राह्मण दी गऊ समुद्र दी चिकड़ विच फस गई। ब्राह्मण बहु जत्न करह। पर नाँ निकली, तां जाय राजे को कहा। तद राजे कहा; जद गऊ निकलेगी ताही[13] मैं अन्न जल लेवांगा। ते पंजदित बीते[14] तद भी तां निकली। तां जोतकीओं[15] कहा, हे राजा अश्मेध जग्ग[16] का फल तू देवहिं तां निकलैगी। तां राजे कहा मैं तां अश्मेध नहीं कीता। इक द्वापर मैं पांडवा ने कीता सी,[17] इंद्र ने काम धेन भेजी सी—जग्ग कहने को। तिस बिना जग्ग नहीं होता। तां किसे आखिआ जो पंजाबी शाह कहिंदा है, जो मैं अश्वमेध दा फल देंदा हां; तां राजा प्रसन्न होया अरु शाह

---

(१) रवाना। (२) प्रयंत तक। (३) गुरू साहब की समग्र बचन रचना का मूलभूत पाठ। (४) गोदी। (५) सूर्यवार। (६) मानता, पूजता। (७) उनका कहा या बचन। (८) क्या। (९) तिलक। (१०) कैसा। (११) किस जगह। (१२) कैद कर डाला। (१३) तबी ही। (१४) व्यतीत हुये। (१५) ज्योतिशिओं। (१६) यज्ञ। (१७) किया था।

को बंदी ते बुलाया अरु कहा हे शाह ! इक अश्मेध-गऊ दे नमित्त देहि। तब शाह जप सोहिला[१] पढ़ करि संकल्प गऊ हेत दित्ता। तां गऊ निकल आई। ते राजे ने बणीए दे चरनों पर नमसकार कीती। अते कहा हे शाह ! तू अश्मेध रोज कैसे करता है ? तां शाह कहा मैं अपने गुरू का जप पढ़दा हां, मैंनू अश्मेध दा फल रोज़ होंदा है। राजे कहा तू अपने गुरू के वचन मैंनू सुनाओ ? जां शाह बाणी सुनाई, तां राजा बहुत त्रिप्त होया। रोम रोम मगन होया। तां राजे कहा जिसके इह अंमृत बचन हैं सो मेरा भी गुरू होया। ते राजा (इस प्रकार) मन कर सिक्ख होया। राजे कहा शाह जी तू मैंनू नाल लै चलु। तेरे पीछे मैंनू भी दर्शन होवै। तां शाह कहा, राजा जी ! महा पुरुषाँ दे पदनो[२] कोई पुरुषार्थ नाल नाहीं पहुँचिआ, पर जब तूं अपने दिल नूँ इकांत[३] करि सतिगुर सेवैंगा, ता सतिगुर अंत्रजामी तैनूं एथे ही दर्शन देवैगा। ताँ राजे कहा ओह कौण देश है जिथे सतिगुर निवास करते हैं। ताँ शाह कहिआ लहौर थों वीह कोहाँ[४] ते द्रयाउ कनारे नगर करतारपुर है। तिथै[५] गुरूजी रहिंदे हन। ताँ राजे कहा, हे भगतजी हुण ओथे ही चलो, दर्शन करीए। शाह कहिआ, हे राजा तूँ मेरे बचन ते परतीत कर, चित्त बिच अराधन कर। सतगुर तैनूँ एथेही दर्शन देवैंगे। पर तू लखेंगा कैसे ? की जावै[७] कित रूप दर्शन देवै, कि जोगी, कि जंगम ! क्यों अविनाशी पुरुष के अनन्त रूप हैं; पर तूँ हुश्यार रह्यो। ताँ राजे पासों शाह विदा होया। राजे शाह जोग[८] बहुत द्रव्य दित्त। ते विदा कीता। शाह अपने घर आया। ताँ राजे को गुरूजी के दर्शन की लालसा बैराग लग रहा। उठते बैठते रात दिन गुरू गुरू जपै होरु[९] कुछ सुझै[१०] नाहीं। ताँ राजे गुरू के दर्शन वास्ते होर उपाउ कीता। जो सदावरत लगाउ, ते भलीआँ सुंद्र इस्त्रीआं नों[११] राजे हुकम कीता जो कोई संत फ़क़ीर आवै, तुम सेवा करो। भावैं हिन्दू होवै, भावैं मुसलमान, कोई भेष होवै। सभनाँ दी सेवा करनी। पर जो महा पुरुष होवैगा सो तुसाँ थों[१३] छलिआ न जावैगा। ते होर तुसाडे[१४] हाव भाउ विचि छलिआ जावैगा। सो काली काल विच ताँ महां पुरुष गुरू नानक ही हैं होर ताँ कोई नहीं, होर सभ भूलण[१५] विचि है। जाँ[१६] इह बरत[१७] रा

(१) मूल पाठ पूर्वक कीर्तन सोहिले का पाठ कर के (यह बाणी श्री गुरु ग्रन्थ साहब में अंकित है प्राणी के अंत समय की घटना पर इसके पाठ का विधान है)। (२) पदवी कूँ। (३) अनन्य भाव से। (४) कोसों के फ़ासले पर। (५) उस जगह। (६) अब वही हीं। (७) क्या जानिए कि किस सरूप में उनके दर्शन हों—अथवा जोगी या कि जंगम। (८) तई। (९) और। (१०) भासै। (११) को। (१२) चाहे। (१३) तुम्ह से। (१४) तुम्हारे। (१५) अविद्या, भूल में। (१६) योंहीं, जबहीं। (१७) प्रण, नियम

धारिआ ताँ अंतरजामी श्री बाबाजी जानते भये, जो राजे की भगति बहुत होई है हुण उसनूं दान देना योग है। सो बाबा राजा शिवनाभ को पवित्र करने की इच्छा कौ धार उदास होये, ते गुरू अंगद ते भाई बाला ते मरदाने नूं नाल लैके चले। (मार्ग[1] बिषे संताँ साधुआँ फकीराँ ते सिद्धाँ आदि नाल गोष्ट ज्ञान चरचा आदि करदिआँ)[2] तब संगलादीप की सुरत[3] होई। ते जाय समुंद्र अगाहि बिच खड़े होए। तब बाबे आखिआ एहा[4] असगाहि समुंद्र क्योंकरि तरीऐ अतै लंघीऐ[5]। तद्हुँ[6] सिक्खाँ बेनती कीती सैदो अतै[7] घेहो आखिआ जी! तेरे हुकम नाल पहाड़ तरनि। तब गुरू बोलिआ, आखिओसु,[8] एहु श्लोक पढ़दे आवहु।

॥ श्लोक ॥

१ ॐ सत्तिनाम[9] करता पुरुष निर्भउ निरवैरु अकाल मूरति अजूनी सैभं गुर प्रसादि ॥

तब बाबा बोलिआ, आखिओसु जिस सिक्ख कै मुंह एहु श्लोक होवैगा अते उह पढ़दा जावै, अते ओस[10] दे पिछै जितनी सुनैगी। तितनी भउजल पार लंघैगी। तब सिक्ख पैरीं पए। आखिओ ने जिसनूँ तुध भावै तिसनूँ पार उतारै। तद्हुँ पार गए—संगलादीप। शिवनाभ राजे कै बाहर बसेरा[11] कीआ। राजे शिवनाभ का बाग नौलखा सूका[12] पया था सो हरिआ होया। फूल वाले फूल पड़िआ, पत्ति वाले पात पड़िआ, फल वाले फल पड़िआ। तब सँघरि बागवान देखै ताँ बाग बाराँ वर्षां का सूका पड़िआ था सो हरिआ

---

(१) राजा शिवनाभ को प्राण संगली रूप उपदेश में प्रवृत्त होने के अवसर में जो २ उपदेश तथा ज्ञान चरचा आदि गोष्टियां हुई हैं वह सब प्राण संगली के पूर्व भाग में अंकित हैं—यदि पाठकों की रुचि तथा अंतर्यामी की प्रेरणा हुई तो दूसरे एडिशन में दी जावेंगी। (२) करते हुए। (३) स्फुर्ती, फुरणा। (४) यह। (५) उलंघन करिये। (६) तब। सैदो घेहो सेहो (इन्हीं तीनों ने प्राण संगली साथ-साथ लिखी है)। (७) और। (८) कहने लगे। (९) श्री गुरू ग्रन्थ साहब का मूल मंत्र। (१०) उसके तुफैल से। (११) निवास। (१२) आज कल के नवीन रोशनी के लोग इस बात को असंभव समझेंगे परंतु यह उनकी भूल होगी "सूके हरे कीए खण माहिं। अमृत दृष्ट संचि जीवाहि"॥ इस गुर बचन प्रमाण से हम किसी को उपरोध नहीं करते परन्तु स्मर्ण कराते हैं कि मदारी लोग एक सूखी हुई गुठली लेकर साधारण मट्टी में उसे रखकर तत्काल उसे आम्र आदि का बृक्ष खड़ा कर दिखाते हैं। जैसा कि हमने एक काल में अपनी आँखों देखा था कि एक इंद्रजाली ने बहुत से लोगों के देखते २ आम्र का सफल बृक्ष खड़ा कर दिखाया था और उसी प्रकार लोप भी कर दिया था ऐसी २ बातें मदारी लोगों की प्रायः सभी देखते हैं जिनसे अनुमान किया जा सकता है कि जब किंचित मात्र मायक शक्ति से मदारी लोग ऐसा २ दुर्घट कार्य दिखला सकते हैं तो उस माया पति सच्चे मालक से जिनकी सदैव काल अभेदता हो रही हो क्या उनसे दुर्घट कार्यों का सद्भाव संभव नहीं हो सकता?

होया। तदहुँ[1] उस जाय खबर कीती। राजे चेरीआँ[2] भेजीआँ, पद्मनीआँ आय निरत लगीआँ करन, अनेक रंग राग कीते। ते बाबा बोलिआ नाहीं। तब पिछों राजा शिवनाभ आया, आय कै लागा पूछण। आखिओस गुसाँई! तेरा नाम क्या? कवन जाति है? तुम जोगी हो? कृपा करिकै भीतरि महलीं[3] चलीऐ। तब बाबा शब्द बोलिआ—राग मारू[4] विच :—

गुसाँईं तेरा कहा नाम कवन कैसे जाती।
चलतहुँ[5] भीतरि महलि बुलावहु पूछहु बात निराती[6] ॥१॥
॥ रहाउ ॥
जोगी जुगति नाम निर्मायल ताके मैलु न राती।
प्रीत्म नाथु[7] सदा सचु संगे जन्म मरण गति बीती ॥२॥

तब राजे पुछिआ जी तुम ब्राह्मण हो? तब बाबा दूजी पउड़ी बोलिआ :—

ब्रह्मण ब्रह्मज्ञान इस्नानी हरिगुण पूजै पाती।
एकोनाम एकोनारायण गुरमुखि एको जाती ॥३॥

तब फेर राजे पूछिआ तुम खत्री[8] हो? तब गुरूजी अगली पउड़ी बोली :—

जिह्वा डंडी इहु घट छाबा तोलउ नामु अजाचो।
एक हाटि शाहु सभनाँ सिर वणजारे बहु भाती ॥४॥
दोवैं सिरे सतगुरू निबेड़े सो बूझै जिस एक लिउलागी
जीअ रहै निभराती।
शब्दु बसाए भरम चुकाए सदा सेवक दिन राती ॥५॥

तब राजे शिवनाभ पूछिआ, जी! तुम गोरखनाथ हो? तदहुँ बाबा पउड़ी बोलिआ।

लेकिन शास्त्रीय प्रमाण युक्ति को एक ओर धर कर प्रत्यक्ष प्रमाण भी आज तक गु[रु] साहब की ऐसी यादगार के लिये मौजूद है :—कोई अलमोड़ा के एक जङ्गल में जि[स] रास्ता पीलीभीत से जाता है एक सूखा पीपल (वर्षों का) केवल जल सिंचन मात्र से ह[रा] करा हुआ मौजूद है। प्रथम उस स्थान का नाम गोरखमता था अब नानकमता नाम प्रख्यात है प्रति वर्ष यात्रा होती है। (१) तब। (२) ग्रह अंगनाएं। (३) राज मन्दिरों में (४) यह शब्द श्रीगुरू ग्रन्थ साहेब में भी है परन्तु दोचार जगह पर किंचित भेद है। (बाहर जाते मन को अपने मंदिर में बुलाता रहता हौं औ निरन्तर बात = सहज बा[त] (सत्यनाम) का वृत्तान्त उससे पूछता रहता हौं भाव शब्द में मन को जोड़ कर उस[े] परख निरख सदैव करता रहता हूँ। (६) निरंती पाठ भी है। (७) श्री गुरू ग्रन्थ साहब नाथ पाठ है परंतु यहाँ नाम था इतना शब्द हमने उसके अनुसार किया है। (८) छत्री- पंजाब में प्रायः खत्री वंश के लोग ही दूकान आदि व्यवहार करते हैं इस कारण राजा प्रश्नानुसार वैसाही उत्तर दिया है।

ऊपरि गगनि गगनि पर गोरख ताका अगम[1] गुरू
पुनि आसी[2]।

गुर प्रसादि बाहरि घरि एको ताँ नानक भया उदासी ॥६॥

जब गुरू पाया ताँ राजा आय पैरी पया। बेनती कीतीओसु। आखिओसु[3] जी मिहर करिकै घर चलहु। तब बाबे आखिआ जो मैं पिआदा ही चलिआ (ताँ लोक किआ कहैंगे कि शिवनाभ का गुरू पिआदा चलता है) तदहुँ[4] राजे शिवनाभ आखिआ जी तुमारा दित्ता[5] सभ किछु है हुकम होवै ताँ सुखपाल पर चलीऐ। हुकम होवै ताँ हाथी चढ़ीऐ॥ ताँ गुरू बाबे आखिआ जो राजा असीं[6] मनुख दी अस्वारी करते हाँ। तब राजे आखिआ अजी मनुख बहुत हैनि[7] —चढ़ चलीऐ। तब बाबे आखिआ अहो राजा ओह मनुष कोई राजकुवर होवै, ते राजा होवै। तिसकी पीठ पर चढ़ाँ। तब राजे आखिआ जी तेरा कीता राजा मैं भी हाँ। मेरी पीठ पर चढ़ चलीऐ। ताँ बाबा राजे की पीठ ऊपरि

---

(१) इस जगह तीन परधान स्थान कहे हैं; लोग महा पुरुषों को परिछिन्न सरूप में देख करि परिछिन्न विषय में ही प्रश्न किया करते हैं परंतु वह अपरिछिन्न वस्तु से अभेद होते हैं--इस कारण अपने यथार्थ निश्चे को प्रश्न अनुसारी व्यंग बचनों में ही वह उत्तर दिया करते हैं। संसकारी भेद पा जाता है और असंसकारी श्रद्धा पात्र को उनके बचन खोजी बनाने का काम किया करते हैं—ऐसा भाव ही गुरु साहब के वचनों का है—पूर्ण पुरुषों की व्यंगता संसारी जीवों की सी नहीं होती वह जीवों के बंधन का कारण और यह अवश्य कल्याण का हेतु। राजा ने भेष देखकर गुरूजी को गोरख होने की संभावना में पूछा है। सो प्रथम गुरूजी ने असली गोरख अंतरही सूचन कराया है इस कारण कि गोरख सिद्ध की टेक इसके भीतरि ना रहनी पावे :—गगन (त्रिकुटी) मंडिल इस शरीर रूप ब्रह्मंड के ऊपर है। उसके भी ऊपर गोरख (सचे) का स्थान सचखंड रूप (गोरख टीला है। गोरख नाम परब्रह्म परमेश्वर का है जो सचखंड का धनी है। ताका भी गुरू अगमपुर का जो धनी है; वहाँ पर का बासी या आसी (रहने वाला) मैं हूँ; भाव यह, कि मैं गोरख सिद्ध नहीं हूँ वरन् जहाँ पर ब्रह्म परब्रह्म आदि शब्दों की भी गंम नहीं उस अगंम सरूप का (जल में जल तरंगवत) मैं बासी हूँ। यह मत संशय करो कि मैं इतर जीवों वत ही विचरता हूँ; नहीं—मैंने उस अगम गुरू के प्रसाद से बाहरि-भाव-संसार में विचरता हुआ, तथा अपने घर अगम देश में स्थित भया, एक सरूप ही हूँ; तां (तभी) ही अनेकता से रहित सर्व संबंध शून्य मैं नानक उदासी हो रहा हूँ। (यह अपना पता दिया है)—'बोलत सहज सुभाय जे बचन मनोहर संत। सप्त भूमिका ज्ञान की ताहूँ मैं दर्शंत॥' पूरण संतों का यह सहज सुभाव होता है। (२) बासी—पाठ भी है। (३) कहा। (४) तब। (५) दिया हुआ। (६) हम। (७) हैं।

चढ़िआ[1]। ते लोग लगे आखण, राजा कमला होया है। तब बाबा राजे की पीठ ऊपरि चढ़ कै राजे के घरि गया। आय बैठा ताँ राणी चंद्कला अते राजा शिवनाभ हाथ जोड़ खड़े होए, लगे बेनती करन, जो प्रशादि[2] का हुकम होवै। तब बाबे आखिआ असीं[3] प्रशाद नहीं छकदे। ताँ राजे आखिआ साडा[4] भला क्योंकरि होवै। तब गुरू जी आखिआ जो मनुख का मास होवै ताँ अहार कराँ। ताँ राजे शिवनाभ आखिआ जी! आदमी भी बहुत हैनि। तदहुँ बाबे आखिआ हो राजा! उह आदमी होवै, जो राजे के घर इको[5] पुत्र होवै, अते बारहि वर्षा का होवै। ते ओस का व्याह होय को दिन बाराँ होए होन। तिस दा मास अहार कराँ। तब राजा अते राणी चिंतामान होए। तब राजे आखिआ, अहो परमेश्वर जी! जौ किसै राजे दे घरि पुत्र है, तां ते कहे[6] सिऊँ क्यों करि देवैगा। ओस साथ जुद्ध कीजै,[7] जब ओह जीतीऐ त पुत्र देवै—अतै[8] एथे हुण चाहिए। तब रानी आखिआ अहो राजा! असाडे घ तां इको पुत्र है, ओस की जन्म-पत्री देखीऐ। जब देखण तां बारह[9] वर्षां क का है। तब राजे कहिआ बेटा! तेरा शरीर गुरू कै काम आंवदा है। तेरी क्य मनसा है? तब लड़का बोलिआ—पिताजी! इसते क्या भला है जो मेर शरीर गुरू के कम आवै। तब राजे आखिआ जो एसनू[10] बारा दिन विवा कीते होए हैनि। इसकी स्त्री भी पूछी चाहिए। तब राणी आखिआ—(हे पुत्री तेरे भरत्ता का शरीर गुरू के काम आवता है, तेरी क्या रज़ा[11] है? तब उ लड़की बोली—पिता जी! माता जी!! जे एसदा[12] शरीर गुरू दे कम आ अते मेरा रंडेपा[13] गुरू ऊपरि होवै तां भला है। तब विचार[14] लैकरि गुरू पा आय खड़े होए। ते राजा बोलिआ—आखिओसु जी! इहु लड़का हाज़र है

---

(१) वरयोग्य सुंदरी विद्वान कन्या के अर्थ जैसे योग्यवर की आवश्यक खो होती है ऐसे ही पूरण सत वस्तु के प्रदान निमित्त परम प्रेमी पूर्ण अधिकारी की पूर्ण पुरुषों को खोज करनी पड़ती है जैसा कि गुरू साहब शिवनाभ के पूर्ण प्रेम त उसकी सच्ची शरण की परीक्षा उसका मान भंग करके करते हैं। (२) भोजन। (३) ह भोजन नहीं खाते। (४) हमारा। (५) एक ही बेटा हो। सच्ची शरण की परीक्षा यही कि सच्चे मालिक सतगुरु के नाम पर प्रियतम वस्तु को कुरबान कर देवे। (६) क अनुसार, कहने मात्र करके। (७) करें। (८) और यहाँ तो अभी ही चाहिये (भोज करना)। (९) गुरूजी ने स्वात्म संवेद्य शक्ति से प्रथम ही जान कर ऐसा भोजन माँ था। इकलौते पुत्र समान कोई वस्तु प्रियतम संसार में नहीं मानी जाती (१०) इसको। (११) मरजी। (१२) इसका। (१३) और मेरा वैधव्य गुरू जी के भरो पर निभे तो उत्तम है। भाव में गुरू साहब के नाम पर पति अर्पण करती हूँ मे धर्म रक्षा का विरद गुरू महाराज सँभालेंगे (तुम निश्चिंत होकर अपने पुत्र को समर्पो) (१४) संमत्ति, सलाह।

तब बाबे आखिआ अहो राजा (इऊँ)[1] इहु मेरे कंम नाहीं। माता इस कीआं वाहां[2] प्रकड़े अते इस्त्री इसके पैर पकड़े। अते तूँ हथि छुरी लै ज़िबह[3] करहिं तां कंम है। तब राजे शिवनाभ गुरू का हुकम मंनिआ। हथ छुरी लैकरि ज़बहि कीता। रिन्न[4] करि आगै आनि राखिआ। तब बाबा बोलिआ—हे राजा तुसीं तिन्ने[5] अखीं मीट करि "वाहगुरू" आखि करि मुँह पावहु। तब राजे अते राणी ते राजे दी नुंह[6] तिन्नां अखीं मीटीआं। जां[7] मुँह पाया तां चारे

---

(१) इस तरह। (२) भुजा। (३) काटहिं, तब हमारे अर्थ का है। (४) रींध करि। (५) तीनों ही। (६) बधू। (७) यूंही कि मुँह में ग्रास डाला—तो लड़का जीवित उनके पास बैठा हुआ है, और (देखें तो) मांस की जगह कड़ाह प्रशाद पड़ा है। कैसी आश्चर्यकारी परीक्षा है बहुत से पाठक गुरू साहब के सेवकों की केवल घड़त मात्र यह घटना मानेंगे, कई नुकता चीन पाठक इसे असंभवता की भेटा करेंगे। परंतु विचारशीलों को इसमें संशय का अविकाश नहीं है—लोगों में एक बात प्रसिद्ध है कि बिज्जू एक जंगली जानवर ताजे मृतक बालकों को कबरों से निकाल कर अपने पंजों से उनके पांव की कोई नाड़ी (जिसकी परीक्षा उसी को ही होती है) दाब कर उसे जीवित कर लेता है और उसके साथ खेल कूद कर फिर उसे खा जाता है—सत्य हो चाहे मिथ्या यह तो लौकिक उक्ति से मृतक को जीवित करने की पशुओं में प्रसिद्ध शक्ति है॥ अभी बहुत वर्ष नहीं हुए जब कि देश में जादू टामन, आदि विद्या का अधिक प्रचार था उस काल में छाया पुरुष विद्या के ज्ञाता हज़रात का प्रयोग करके चिरकाल की मृतक आत्माओं को व्यक्तिमान दशा में बुलवाकर एक नियत बालक द्वारा (जिसका मध्यम पुरुष नाम धरा जाता था जीवत वत् ही बातें कराई जाती थीं॥ वर्तमान काल में मिसमरेजम विद्या प्रचलित है इससे जड़ वस्तुओं को चेतन बनाया जाता है. चिरकाल के मृतक संबंधियों के दर्शन तथा उनसे वार्तालाप कराई जाती है और २ भी अकर्णो योग्य कार्य किये जाते हैं। यह योग विद्या की एक तुच्छ मात्र कला का प्रभाव है॥

मदारी लोग एक तमाशा किया करते हैं एक बारह चौदह वर्ष का बालक एक छोटे से टोकरे में घुसा कर सबके देखते उसी में लोप कर दिया जाता है, छुरियाँ उस टोकरे के चारों ओर बीच में घुमाई जाती हैं. बड़ा आश्चर्य होता है कि जब वह उस लड़के को पुकारता है तो जिस ओर से दर्शक लोग कहें. उधर से ही पाव मील भर से आवाज उसकी आती है. परन्त देखो तो निकलता टोकरे में से है॥ सूत की एक ताँत के सहारे पर एक अपने संगी लड़के को आसमान पर चढाना पीछे छुरी लेकर आप चढ़ जाना और एक २ अंग लड़के का काट कर नीचे दर्शकों के आगे फेंक देना। पश्चात स्वयं भी उतर कर संपर्ण अंग बालक के इकट्ठे करके जीवत कर देना आदि लोगों ने नटों की ऐसी कई घटनाएँ देखी होंगी। इन पर विचार किया जावे तो स्वयं ही उत्तर मिल जावेगा कि जब साधारण तन्त्र विद्या के ज्ञाता तथा तुच्छ मात्र भी योग कला के विद्वान ऐसे अकृत्य कार्य करने को समर्थ हैं तो गुरू साहब जैसे परम योगी राज जो सदैव के लिये उस सर्वशक्तिमान मालिक कुल से अभेद रहते थे क्या उनमें ऐसे कार्यों की शक्ति असंभव हो सकती है। कदाचित नहीं

बैठे हैनि। अखीं खोलण तां गुरू बाबा[1] नाहीं। तब राजा ब्याकुल होइ गया। उद्यान[2] पकड़ीआ—पैरां ते वाहना,[3] सिर ते नङ्गा गुरू २ करदा फिरै। तां बारह महीने पिछे आय दर्शन दित्तोसु, चरणीं लायेन्तु, जन्म मरण राजे दा कटिआ, सिक्ख होया। सैदो अते घेओ हुकम नालि पाहुल[4] दित्ती। सारा संगलादीप सिक्ख होया, गुरू २ लगा जपण, सारा खंड[5] बसिआ राजे शिवनाभ कै पिछे। बोलहु "वाहगुरू" संगलादीप की संगति की रहरास—जब राति पवै तां सभै इकठे आन बहनि[6] धर्मशाला। इक सिक्ख प्रशाद कहि जावै, भलके[7] इकठे जाय पावन—इकीस मण[8] लूण रसोंई पवै। तित महल[9] गुरुजी बाणी प्रगट होई। आगे लिखी—

॥ इति श्री प्राण-संगली श्री गुर ग्रंथे प्राण-संगली उत्थानका बरनन—सम्पूर्णम् ॥

नुक्ता चीन पाठकों को आस्तिक्यता से काम लेना चाहिए। मृतक बालक को जीवित कर लेने की शक्ति जब उस मालिक के रचे हुए इंद्र जालियों और पशुओं में प्रसिद्ध प्रख्याति है तो क्या उसके परम संतों में यह शक्ति नहीं हो सकती? (१) योगियों में अदृश्य हो जाने की शक्ति होती है, जब चाहें जितने काल तक जिससे चाहें अदृश्य रहि सकना उनके स्वाधीन होता है। (२) यह अनुमान करके कि जंगल में रहने के (गुरू साहब) रसिक हैं, संभव है जंगल बियाबान को ही पधार गए हों; राजा उधर को ही प्रेमातुर हुआ भाग निकला। (३) पाँवों से चलता हुआ भाव राज्य का धनी होकर भी पैदल ही (ढूँढ़ने में) भाग पड़ा। (४) गुरुमुख शिष्य बनाते हुए चरणामृत पान कराया जाता है सो उस काल में गुरू साहब की आज्ञा पाकर सैदो अरु घेओ इन दोनों शिष्यों ने उनके चरण कमल धोय कर विधि पूर्वक राजा को पान करा के गुरुमुख शिष्यों की श्रेणी में उसे शामिल किया। (५) सिंगला दीप का सारा देश ही गुरमुख हो गया। (६) आय बैठें भाव दिन को अपने कार्यों का निर्वाह करें। रात्रि को सत्संग किया करें। (७) दूसरे रोज़, कल (८) इक्कीस मण नमक एक दिन की रसोई में पड़ना कुछ बड़ी बात नहीं बहुत से पाठक हैरान हो जाते हैं। परन्तु विचार करें तो संशय को अवसर नहीं रहता—क्षेत्र की मर्यादा है कि ८ आदमियों को १ सेर दाल के साथ (अंदाज़न) आध पाव नमक मिलता है। यदि ६४ आदमी हों तो १ सेर नमक रसोई में एक वक्त में पड़ता है। सिंगला दीप का मन ११ सेर का है (कच्चा)। अब ६४×११ चौसठ को ११ के साथ गुणा जावे तो ७०४ आदमियों की एक दाल मात्र में मण भर कच्चा दाल निमक आता है। और इसी ७०४ संख्या को फिर २१ के साथ गुणा जावे तो ७०४×२१ = १४७८४ पंद्रह हजार से भी कम आदमी २१ मण नमक खाते होंगे। यह हिसाब रहा कच्चे मणों का। परंतु यदि पक्के २१ मण भी समझे जावें तो बड़ी बात नहीं क्योंकि इसी ११ सेर को ही चौगुणा कर दिया जाय तो एक मण चार सेर पक्का तो हो जाता है और इसको १९ के साथ गुणा जावे तो चार सेर कम २१ मण पक्का तो होगा—ऊपर ७०४ आदमी ११ सेर का कचा मण नमक खा सकने का हिसाब लगाया गया था सो ७०४ को यदि ७६ गुणा कर दिया जावे तो ५३२०४ आदमी चार सेर कम २१ मण पक्का नमक खाते होंगे। या १४७८४ × ४ किया जावे ५९१३६ आदमी प...

इक्कीस मण नमक खाते होंगे। महाभारतादि पुराणिक इतिहासों में बहुत से प्रमाण मिलते हैं कि अमुक राजा के यहाँ अट्ठासी हजार ऋषियों ने चौमासा काटा अब ज़रा विचार करना चाहिए कि उनके भोजन पर कितना नमक खरच आता होगा जो कि सत्ताईस अट्ठाईस मन के दूर निकट होगा, सो जब सिंगलादीप में गुरू महाराज का उपदेश सुनने निमित्त गुप्त प्रगट सिद्ध ऋषि मुनि आदि का संघट इकत्र रहता था तो इक्कीस मण नमक कौन बड़ी बात है कि न लगता होवे। और फिर राजसी रसोई में अकेली दाल तो बनती ही नहीं होगी दो एक साग भाजी भी तो जरूर ही बनने का अनुमान हो सकता है—सो ऐसी व्यवस्था के होते पचास साठ हज़ार जेवनारों की रसोई पर इक्कीस मण नमक कैसे नहीं लगता होगा। इतिहासों की बातें तो किंचित दूर की हैं, वर्तमान में अब भी तरन तारन की तहसील में ही गोंदवाल साहब नामक तृतीय श्रीगुरू अमरदास जी का गुर स्थान है। वहाँ पर भाद्र की पूर्णमा को उनका दिन मनाया जाता है उस रोज़ देग (भंडारा) में २५ मण पक्का के लगभग नमक खरच होता है। तीर्थों के कुंभों पर और गुरू सिक्खन के भी केचित्त दावानों पर वीस-बीस पचीस-पचीस हज़ार की पंक्ति भोजन समय बैठती है तो नमक इस हिसाब से कम खरच नहीं होता। (९) उस मुकाम पर, उस मौक़ा पर॥

॥ १ ॐ सतगुर प्रसाद ॥

प्राण संगली

॥ राग रामकली महला १ ॥

ओअंकार निरमल[1] सत बाणि । ताँते होई सगली खाणि ॥
खाणि खाणि महिं बहु बिस्तारा । आपे जानै सिरजनहारा ॥
सिरजनहारे के केते भेष । भेष[2] भेष महिं रहै अलेष ॥१॥
एकहि नाम जपहु मन माला । नानक सिमरहु गुर गोपाला ॥

॥ रहाउ ॥

ओअंकार हूआ परगास । साजे धरती धउल[3] अकास ॥
साजे मेरु मँदिर कविलास[4] । साजे पिंड धरे बिच सास[5] ॥
साज्या काल न छोड़ै पास । छूटै पिंड उड़ावै हाँस[6] ॥२॥
ओअंकार हुआ चानायल[7] । तदहुँ तीने देव उपायल ॥
महादेव कीता भंडारी । ब्रह्मा चारि बेद बीचारी ।
बिस्नु :हढ़ाउन[8] दस औतारी ॥
आप निरालभ करे तमासा । ज्यों ज्यों हुकम तिवैं परगासा ॥३॥

---

(१) ॐकार मलीनता से रहित तथा सत्य नाम स्वरूप है । यद्यपि संतमत के अनु-
सार यह सत्य शब्द नहीं है और काल मंडल की हद (त्रिकुटी स्थान) का शब्द होने से
यह निर्मल भी नहीं है तथापि परा, पश्यंती, मध्यमा, वैखरी यह चार प्रकार की बाणी
पिंड देश संबंधी होने से मलीन है उसकी अपेक्षा से ॐकार को निर्मल कहा है । इसी
प्रकार ॐकार प्रकाशक तथा व्यापक का नाम है और शब्द ही भीतर बाहर पूर्ण तथा
प्रकाशक है इस कारण पूर्ण तथा प्रकाशक जो होवे वोही शब्द है तथा ॐकार है । और
जो सर्वत्र पूर्ण होता है वह अविनाशी होता है इस वास्ते इस ॐकार शब्द को सत
बाणी कहा गया है । और भी स्थूल सूक्ष्म रचना की उत्पत्ति स्थिति संहार का हेतु
ॐकार है ऐसा वेदक मत है सो जो ऐसा अधिष्ठान सरूप शब्द ब्रह्म है स्थूल सूक्ष्म
प्रपंच की अपेक्षा और इसमें पूर्ण तथा सर्वत्र लोक संबंधी तथा परलोक संबंधी कारजों
का साधक (प्रकाशक) होने से सत्य शब्द रूप है । जो कथन या लिखने में आवे सो
शब्द है और ऐसे वर्णात्मक शब्द का आदि ॐकार है । जहाँ शब्द जाल का विस्तार
होवे वहाँ इस ॐकार की ही सत्ता होती है इस वास्ते शब्द की सत्ता का आधारभूत
होने से यह सत्यबाणी कही गई है ॥ (२) पिंड ब्रह्मंड के स्थानी स्वरूप । (३) स्वच्छ,
निर्मल, उठाया हुआ । (४) कैलाश । (५) श्वास । (६) हंस । (७) चाँदना, प्रकाश ।
(८) फिरने वाला ।

ओअंकार चौरासीह[१] अग। अंग अंग महिं बहुते रंग॥
रंग रंग महिं बहुते रूप। रूप रूप महिं चतुर सरूप॥
जम्मै मरै न बिनसै सोइ। ऐसे नाँइ[२] लिये सुख होइ॥ ४॥

ओअंकार बीरज[३] संसारै। ओअंकार गुरमुख चीतारै॥
ओअंकार सिरजै अरु मारै। ओअंकार लागी सब कारै॥
ओह देखे एनाँ नदरि[४] न आवै। को बिरला गुरमुख सोझी पावै॥ ५॥

ओअंकार खाणी अरु बाणी। किनही बिरलै गुरमुख जाणी॥
तिस विच कीते बहुते भेद। ताँ ते[५] शास्तर सिमृति बेद॥
दूजे अंग किया पासारा। एको तारे तारणहारा॥ ६॥

ओअंकार बहुता विस्थार। ताँ ते अंत न पारावार॥
क्या कहिये किछु कहण न आवै। देखै आप न आपु दिखावै॥
ताँ कै सद बलिहारी जाऊँ। जगजीवन[६] है निर्मल नाऊँ॥ ७॥

ओअंकार पानी अरु पवन। सूर्य चंद धरे महि भवन॥
तारे बहुते कई करोड़। गणेते अंत न आवै ओड़[७]॥
जिनि कीता एता पसारा। तिसकै नाँइ[८] तरै संसारा॥ ८॥

ओअंकार सुनिये[९] चित धार। ताँ कौ जम्मण मरण न कार॥
जपहु जाप गुर कै उपदेस। कर्ता अगम अलेखी भेष॥
ते महरम[१०] खासे दरबारी। हिरदै एक अनेक[११] बिसारी॥ ९॥

ओअंकार पूजा अरु मान। ओ अंकार जप संजम ध्यान॥
ओअंकार तप तीरथ दान। ओअंकार राखै सुर ज्ञान॥
ओअंकार गुरू अरु चेला। ओअंकार रह रासी[१२] मेला॥१०॥

ओअंकार तिथी अरु बार। ओअंकार पल घसे विचार॥
पहर महूरत बर्ष अरु माह। ओअंकार ते बाहर नाँह॥
ओअंकार निरन्तर बानी। जिन जानी तिन गुरमुख[१३] जानी॥११॥

---

(१) चौरासी योनिगत शरीर। (२) नाम। (३) कारण। (४) दृष्टि। (५) "थाम्रे
पाठ भी है। (६) जगत की स्थिति का कारण। (७) ओड़क, अंत। (८) तिसके ना
लिये अर्थात् ॐकार आराधन से। (९) सुरत की धार से सुनिये यही सुमिरन है
(१०) भेदी। (११) एक में मगन होकर जिन्होंने अनेकता बिस्मरण कर दी हो अर्था
शब्द से जिनकी सुरत पूर्ण एकता को प्राप्त हो गई हो। (१२) गुप्त पूँजी वाले (मालि
कुल) से ॐकार द्वारे मेला हो जाता है या ॐकार से सीधे मारग मेला हो जाता है
(१३) सतगुरों के मुख से ही।

ओअंकार सँजोग[1] बिजोग । ओअंकार जुग्ती अरु जोग ॥
ओअंकार होय सब स्वाद[2] । ओअंकार होय वाद बिवाद ॥
ओअंकार सुनहु चित लाय । किनै बिरलै गुरमुख सोझी पाय ॥१२॥
ओअंकार होय पुन्न अरु पाप[3] । ओअंकार होय बर अरु स्राप ॥
नरक सुरग दोऊ थापे थान । गुरमुख ध्यावहिं मारग[4] जान ॥
जाँ कै अंतर गुरु मति आई । ताँ कौ अंच[5] न लागै काई ॥१३॥
ओअंकार कीनी इक दाति । तिसते होईं दिन अरु राति ॥
बाजीगर इहु खेल पसारा । धन्धै लाय दिया संसारा ॥
काम्र क्रोध लालच अरु मोह । जाल पसारचा सगला ध्रोह[6] ॥
इत जाली फाथा[7] संसार । को बिरला गुरमुख उतरहि पार ॥१४॥
पिता[8] रूप शब्द कौ जानहु । रहै कहाँ अस्थान बखानहु ॥
कौन रूप केतक[9] पासारा । केतक हलुका केतक भारा ॥
सुनि सुनि शब्द रहै लिव[10] लाय । सूक्षम महिं अस्थूल[11] समाय ॥१५॥
अधैं उर्धै दुइ थमैं पवना । गुरमुख मेटै आवागवना ॥
गगन[12] शिषरि शिव का अस्थानु । जुग्ती सहज[13] मिलावै भानु ॥
भँवर गुफा महिं डेरा करै । गुर परसादी जीवत[14] मरै ॥१६॥
सत्तवार[15] चौदह थिति सोधै । ज्ञान महारस मन परबोधै ।
लागी लागि[16] रहै दिनु राति । निर्मल सर[17] न्हावै निभ्रांति[18] ॥
तन कौ छाँड़ि न बाहर जाय । कहु नानक गुर[19] शब्द समाय ॥१७॥
राचै शब्द सुशब्दै जेंह । गुरुमुख ताँकौ मिलै सनेह[20] ॥

---

(१) अकाल पुरुष से संजोग और अहंता ममता का विषय रूप परपंच और और
भी जो कुछ उस परम पुरुष से भिन्न है सब से बिजोग हो जाता है अर्थात् सुरति की
धार सब से टूट कर एक से लग जाती है। (२) सर्व रसों का आधार। (३) वेदों का
बीज होने से पुन्न पाप की प्रगटता का मूल भी ॐकार ही है। (४) युक्ती भजन ध्यान
की। (५) आँच। (६) द्रोह। (७) फँसा हुआ। (८) सभ का कारण। (९) कितना।
(१०) सुरति की डोरी। (११) अंतरमुखी अवस्थाओं में स्थूल पसारा लीन हो जाता है।
(१२) शून्य मंडल से भाव है जोकि त्रिकुटी का शिखर है; और शिव कल्याण स्वरूप
का नाम है—शून्य मंडल में सुरति कल्याण की भागी हो जाती है तां ते शून्य ही शिव
की ठौर है। (१३) सहज योग की युक्ती द्वारा। (१४) शरीर से सुरति का संबंध सुरति
शब्द युक्ती से टूटना जीवत मरना है। (१५) सप्ताह के दिन। (१६) लिव लगी हुई।
(१७) मान सरोवर। (१८) भ्रांति से रहित होकर। (१९) ऊँचा शब्द, सब से बड़ा
तथा भीतर प्रकाश करने वाला सत्य नाम। (२०) प्रेम रस।

दुर्मति दुबिधा दोऊ निवारै। ज्ञान खड़ग ले पंचाँ मारै॥
रसि[1] रसि संचे ब्रह्म कियारी। नानक इहि बिधि लागै तारी[2] ॥१८

परम सुन्न परगास दुआर। गुरमुख चेतै ज्ञान बिचार॥
चारि कला[3] ले खेलै कोय। इस बिधि ता को भरम न होय॥
अजपा जप जपियै मन माहिं। ता के दरशन बहु दुख जाहिं ॥१६

पंच चारि ले तीनि समावै। काहे को घर छाड़ि सिधावै॥
अटल अडोल रहै रँग राता[4]। अगम निगम[5] की जाणै बाता॥
जग फूटै खेलै नहिं सार। इह बिधि जन्म न आवै हार ॥२०

नाभि कँवल सोधन गति पावै। मूल कँवल सोधै बनि आवै॥
हीरै[6] हीरा बेधै रूप। तब मानस नहिं आप सरूप॥
बंधन काटि भये निर्बन्ध[7]। गुरमुख चीन्ही बिषमी[8] संध ॥२१

उलटा नीर चढ़ै कविलासि[9]। तब बारह सोलह एकै रासि॥
भँवर भवंते बहु दुख पाया। गुरमुख होय सहज घर[10] आया॥
देखै मंदिर थान बिचारि। रंग महल राता रंग तारि ॥२

गंग[11] मिली सर सागर माहीं। जो जो जाँहिं सो निकसहिं नाहीं॥
नीर निराते को निरवारै। गगन मगन बिस्माद[12] बिचारै॥
किया बसेरा ज्ञान घरि वाँ कै। जो मारै काल पंच झकि[13] न झाकै ॥२

लिव[14] कार नकरे इह कारन। लिव लागी तौ सगल बिसारन॥
जिवँ करि नारि खसम से मानी। दाई[15] बीचि भई हैरानी॥
जे अब नारि खसम को पावै। तौ अवगुण मेटि लगावै पाँवै ॥२

नीर धरनि बाढ़ी आकासि। को बिरला संचै गुर परगासि॥

---

(१) उत्साह तथा अनुराग पूर्वक। (२) त्रिकुटी में ध्यान करे, ताड़ी लावे। (३) [illegible] उपदिष्ट रीति से नाभी हिरदे कंठ तथा सहस्रदल कमल में सुरत का नीचे ऊपर [illegible] द्वारे चढाना उतारना। (४) ध्यान रंग में रचा हुआ। (५) अगम ज्ञान—केवल अनु[illegible] मात्र से जानने योग्य=अगम लोक। (६) हीरा कणी रूप सुरति को तिल की ठौर स्थिर करै। (७) सुमिरन ध्यान के प्रभाव से निर्मल हुई सुरति शारीरिक मान[illegible] बंधनों से न्यारी हो जाती है। (८) जिन गुरमुखों ने कि पिंड ब्रह्मांड की विखड़ी [illegible] को पहिचान लिया है (सुषमना की संधी)। (९) कैलाश शिव की ठौर या सुरति क[illegible] की ओर "पाणी की न्याईं मन शरीर से तद्रूप हो रहने वाली" सुरति उलटावे। ([illegible] सहज घर है। (११) सुर[illegible] इड़ा पिंगला सुषमना की संधी सहज घाट या सहज घर है। (१२) अश्चर्यी दशा मँगनाई की। (१३) आवारागर्द होना। (१४) लव। (१५) मा[illegible] अविद्या।

मूल संचि उपजै सब सिद्धि। मूल संचि होवै मन बुद्धि॥
दादुर जल महिं कौल न तुलिया। गुरमुख भौर रूप होय मिलिया॥२५॥
उलटे जंत्र पकावै सार। धुर महली पावै बीचार॥
कोथले कला पिछाणि जलावै। गुरुमुखि यौं मनूआ समझावै॥
शब्द सुरति महिं रहै अडोल। नानक ताँ का पूरा बोल॥२६॥
आसन चौरासी दस पवन[1]। द्वादस[2] उलटै राखै भवन॥
षटचक्र[3] के षट अस्थान। जो जानै तेऊ परधान॥
ताँ ऊपर इक नागिन[4] बसे। नानक गुर शब्दो ओहि नसे॥२७॥
मेरु डंड[5] की बिषमी बाट। गुर बिन कोउ न बतावै घाट[6]॥
इह घाटी जो उतरै कोय। ताँ कौ जन्म मरण नहिं होय॥
शव[7] रीती जीतौ संसारा। नानक पावहु मोष दुवारा[8]॥२८॥
अंभ[9] माहिं बैसंतर जालै। सूझै भवना सगल उजालै[10]॥
त्रैगुण[11] त्यागि रहै बिस्माद। शब्द अनाहद सुरति समाधि[12]॥
सुष्मनि महल करै जो डेरा। ताँ कौ भौजल बहुरि न फेरा॥२९॥
कवन खंड आछै घट खंड। कवन खंड काया की जिंद॥
कवन खंड शब्द का वास। कवन खंड होवे परगास॥
कवन खंड महि काल बसेरा[13]। सतगुरु मिलै ताँ करै निबेरा[14]॥३०॥
कवन खंड रूप का थानु। कवन खण्ड तपै नित भानु[15]॥
कवन खंड काल फिरि आवै। कवन खंड काली[16] गति पावै॥
कवन खंड बोले सो होय। नानक गुरमुख चानण लोय[17]॥३१॥

---

(१) प्राण, अपान, समान, व्यान, उदान, नाग, कूर्म, क्रिकल, देवदत्त, धनंजय। (२) द्वादश राशि में विचरने वाला सूर्य यहाँ प्राण का सूचक है क्योंकि प्राण सूर्य का नाम है और अपान चंद्रमा का—सो प्राण कीड़ी मारग द्वारा नाम मिला कर उलटाय राखै, न कि हठ योग द्वारा। (३) गुदा, लिंग, नाभी, हिरदे, कंठ तथा भँवों के मध्य में षट चक्र हैं जहाँ २ पर अगली ओर गड़हा है उसके ठोक पीछे चक्र का स्थान है—यह पिंडी चक्र हैं। (४) कुंडलनी शक्ति—परतु यहाँ षष्टम चक्र की मालिक माया सर्पनी (आद्या) से भाव है। कुंडलनी नाभी में है। (५) रीढ़ की हड्डी। (६) इड़ा पिंगला से सुषमना के मेल की ठौर। (७) मरण काल मैं मृतक दशा के ढंग पर सुरत टिका कर। (८) तीसरा तिल। (९) प्राण गरभित नाम सुमिरन द्वारे ज्योति प्रगट करे अथवा पाणी का भंडार नेत्र हैं उनके मध्य में ज्योति प्रगट करे। (१०) चाँदना। (११) जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति के पिंडी मंडलों को त्याग कर सहसदल कमल में। (१२) स्थिर रक्खे। (१३) निवास। (१४) निरणय। (१५) सूर्य। (१६) आद्या, योग माया। (१७) प्रगट चाँदना।

कवन खंड शास्त[1] बुधि आवै। कवन खंड मन कौं[2] मन खावै ॥
कवन खंड तजि रहै इकेला। कवन खण्ड शिव शक्ती[3] मेला ॥
कवन खण्ड तन की सुधि जाय। सतगुरु[4] बाणी रहै समाय ॥३२॥
कवन खण्ड राता रँग रासि। कवन खण्ड होय कवल बिगास ॥
कवन खण्ड भौरा ठहराय। कवन खण्ड घर छाड़ि न जाय ॥
कवन खण्ड रहै सदा आनंद। कवन खण्ड तहाँ परमानन्द ॥३३॥
जब ज्ञानी ज्ञान सम्पूरण पावै। तब इह ध्यान कहो कहाँ लावै ॥
सर्ब निरन्तर ब्रह्म समाना। जहँ जहँ जाय तहाँ है राना[5] ॥
मिरग सुवास रह्यो लपटाय। नानक गुर बिन सुरति[6] न पाय ॥
अचरज एक तमाशा आवै। जल[7] छाड़े मीना[8] बिगसावै ॥३४॥
जिह जल कारण फिरहु उदासा। सो जल छोड़ि निरंतर[9] बासा ॥
श्रवते सुनते जीते गुर ज्ञान। नानक पाया पद निरबान ॥३५॥
सुन्न निरन्तर सहज समाधि। तिंह घरि जाय ताँ मिटै उपाधि ॥
त्रैगुण त्यागि रहै अतीत। सतगुर शब्द भई प्रतीत ॥
निर्मल नीर[10] किया अस्नान। नानक गुरमुख पाया दान ॥३६॥
सगल खण्ड महि रहै अखण्ड। सुरग पइआल[11] अरु ब्रह्मण्ड ॥
करि किरपा खूले दरवाजा। महरम भया अनाहद बाजा ॥
मगन भये तिंह सत[12] सर माहीं। जो जो जाँहिं सो निकसहिं नाहीं ॥३७
मीन की रीति गगन सर बास[13]। तहाँ पाप पुन्न सगले का नास ॥
गुर परसादि पदारथ पाया। ताँते सहजे[14] पलटी काया ॥

---

(१) सुमति। (२) पिंडी मन को ब्रह्मण्डी मन अपने में लीन करे। (३) इस शरी में काम करने वाली ताकत जिसकी सत्ता से सम्पूर्ण मन इन्द्रियाँ आदि चेष्टा करते उसका नाम यहाँ शक्ति है, जाकि सुरत (चैतन्यता) से भाव है। (४) सत्यनाम। (उसी जगह चलकर गया हुआ अर्थात् व्यापक (मौजूद) है। (६) सुध, समाचार, सूभ (७) विषय मदिरा रूप या संसार भौजल। (८) जीवकला, सुरति। (९) सुन्न मंडल सह घर। (१०) मान सरोवर घाट, सुन्न सरोवर नाम भी गुरुजी इसी का रक्खा करते क्योंकि उसी मण्डल में यह अभ्यासी को मिलता है। (११) पाताल (पिंडी मण्ड हिरदे के नीचे के)। (१२) उसी मान सरोवर अर्थात् भीतरी अमृत सर से भाव है। (१ जैसे मछली पानी के बहाव को त्याग करके प्रवाह के उलटी जिधर से प्रवाह आता उधर (ऊपर) को चढ़ा करती है ऐसे ही नीचे का प्रवाह त्याग कर ऊपर को उलटी कर सुरत मान सरोवर बासी हो सके। (१४) सहज घाट में (सुषमना की संधी में)।

अहनिशि सदा रहिये रँगराते । किनहूँ बिरलै गुरमुख जाते ॥३८॥
कवन खण्ड आनि मिटै पियास[1] । कवन खण्ड महि छुटकै आस ॥
कवन खण्ड लागै नहिं बान[2] । कवन खण्ड तहँ पद निरबान ॥
सगल खण्ड महि दि्ष्टि पसारी । ताँ कौ भेट बनै जोहारी[3] ॥३९॥
शब्द सुने का क्या उपकार[4] । ज्ञानी ध्यानी कहु बीचार ॥
सुनिये शब्द न दीसै सोय । बिन देखे क्या परचा[5] होय ॥
सुनि सुनि शब्द कहै संसारा । नानक बिरला को देखणहारा ॥४०॥
जब सूक्ष्म अस्थूलै खाय । गुर शब्दी पद पिंड समाय ॥
गगन सरोवर कवल बिगासि । भौरा उरझि रह्यो तिंह बासि ॥
मनूआै बूझी उलटी रीति । नानक गुरमुख सदा अजीत[6] ॥४१॥
किंह कारण मन शब्द लगावहि । लागै शब्द कवन गति पावहि ॥
सुनि सुनि ज्ञान कथै जग माहीं । जो देखे सो आवै नाहीं ॥
गूँगे की गति गूँगा जानै । गूँगा भया न काह बखानै ॥४२॥
लिव लागी तहँ थानि सुहावै । लिव लागी तन की सुधि जावै ।
ऊँचे खण्डि महल घर पाया । गुरमुख ज्ञानी त्यागी माया ॥
बैरी उलटि भये सब मीत । नानक बसिया केवल चीत ॥४३॥
पंच पचीस अरु पंचासि[7] । इनकौ जीति करै मन रास ॥
पवन[8] नाथ नाथै मन माना । उलटी कला तब आपु पिछाना ॥
तहँ गति अवगति दोउ हैरानी । जो देखहि सो कहहि नीशानी ॥४४॥
तहँ दूख भूख बहु मोह पियासा । काम क्रोध लालच अरु आसा ॥
अस्तुति निंधा लोकाचार । एते ठाके[9] तिंह दरबार ॥
इह ठाकै जे जीतै कोय । ताँ कौ मिलते बिलम[10] न होय ॥४५॥
मास बिहूनी मिरगै[11] खावै । गुरमुख चकमक[12] ठनका लावै ॥

---

(१) पदार्थों की तृष्णा। (२) कामादि का विघ्न। (३) नमस्कार। (४) फल। (५) परतीत। (६) मन माया और कर्मों की घात उस पर प्रबल नहीं पड़ सकती। (७) अस्सी पवन। (८) चींटी मार्ग को गुरु-पदिष्ट युक्ति द्वारा श्वासा के साथ नाम संधान करके मन नाथा हुआ स्वाधीन हो जाता है, इसी युक्ति से उलटी बाजी लग जाती है और आत्म ज्ञान की प्राप्ती होती है। (९) रोके। (१०) ढील, देरी। (११) मन। (१२) जैसे चकमक पत्थर पर चोट मारने से अगनी प्रगट हो आती है ऐसे ही गुरूपदिष्ट ज्ञान (जुगता) से शिव शक्ति की संधी रूप सहसदल कमल पर सुमिरण ध्यान की चोट ल गाने से ज्योति दर्शन रूप ब्रह्म अगनी प्रज्वलित हो आती है।

ब्रह्म अग्नि जारै गुर ज्ञान। निर्मल नीर करै इस्नान॥
शिव शक्ति की चीन्है संधि। तौ बंधन काटि भये निर्बन्ध ॥४६॥
निर्गुन सर्गुन कहा बखानहु। गुरमुख अपना आप पिछानहु॥
जो तुम जाता अपना आप। तौ लाग[1] न लागै पुन्न न पाप॥
अम्भै[2] महि जो अम्भु समाना। ताँका आवागवन मिटाना ॥४७

तहँ दिवस न रैन न चन्द न सूर। तहँ सर्व कला आपे भरपूर॥
जीवत ठौर न कबहूँ पावै। जो जो मरै सोऊ घरि आवै॥
कहु नानक घर की नीशानी। चिन्ता फिकर न आवन जानी ॥४८
पंच चोर पंचाँ[3] पँचि सूत। जो राखै सोई अवधूत॥
गुरमुख जागि[4] ज्ञान बीचार। इहि बिधि चोर न मुसै[5] भँडार॥
छाया तरवर[6] माहि समावै। तिंह घर जाय तो बहुरि न आवै ॥४९
नष[7] शिष भरै न डोलै चंचल। पच्छिम सूर चढ़ै तब निहचल॥
अहनिशि तागा खिंथा पहिरै। गुर परसादी अजर जरै[8]॥
चंद सूर्य दुइ टल्ली लावै। इहि विधि खिंथा खिसनि न पावै[9] ॥५०
चंचल थीर करहु जोगीशर। गुर शब्दी मन राखहु भीतर॥
जुग्ती सहज लेहु आहार। मन जीतै जीता संसार॥
जब लग चंद भवन[10] आवै नहिं भान। तब लगि कहु नानक कैसे कल्यान[11] ॥५१

शिव शक्ति एकै घर बास। तब मेटै बहु मोह पियास॥
अमृत नीर भरे नित गागर। यों करि गंग मिली सर सागर॥

---

(१) लेप, स्पर्श। (२) सुरति रूपी जल अपने सुरते रूप जल भंडार में जो स जाय। (३) पाँच पंच (सरपंच) जो शब्द है उनसे पाँच चोर सूत डाले। (४) ज सावधान रहे। (५) चुरावे। (६) बृक्ष—यहाँ संपूर्ण ब्रह्मांड के धनी ब्रह्म से भाव सब प्रपंच उसी की छाया है और छाया नाम माया का है जब यह अपने मालिक अभेद हो जावे तो निर्मुक्त भई सुरत निज देश में पहुँच कर, फिर नीचे नहीं गिर (७) पाँव के नाखून से सुरत को गुरु-उपदिष्ट युक्ती से ऊपर खैंच कर जो चोटी की शिर में है वहाँ पर भर देवे और हिलने न देवे तब पिछवाड़े की ओर से अबिन सूर्य जो सूर्यों का भी महाकारन है प्रकाशित होगा। (८) सुरति की एक तार त गुदड़ी पहिने तो न जरे जाने वाले महान आनंद को भी जर (बरदाश्त कर) लेता (९) नेत्रों की टाँकी लगावे अर्थात सुरत का एक तार रूप गुदड़ी में नेत्रों की धार प कर टाँकी लगावे तब वह छीन नहीं होने पावेगी अर्थात अडोल रहेगी। (१०) चन का घर सहस दल कमल है। (११) नेत्रों का मालिक सूर्य है, भाव यह कि की ज्योति सूर्य सरूप है जब तक कि यह ज्योति पलट कर वहाँ न ले जाई जावे कल्याण हो।

सरप[१] भरे दादुर घर नीर। नानक तन महि मन अस्थीर ॥५२॥
तन सागर[२] मन बोहिथ भारी। पवन के रथ करे असवारी ॥
जे करि राह अवत्तै[३] धावै। गुर शब्दी धरि लंगर पावै ॥
गुर बिन राह बतावै कौन। बोहिथ क्यों पहुँचै बिन पौन ॥५३॥
तीन धार एकै घरि मेला। गुर सेवा करि न्हावै चेला[४] ॥
इह न्हाये का क्या उपकार। परलो[५] पाप कोट इक बार ॥
ऊँचे घर पावै घर वास। तत्र पाप पुन्न सगले का नास ॥५४॥
कँवल एक जाके दल बत्तीस। गगन सरोवर इह बषशीश ॥
गुरमुख भँवर रूप होय पावै। उहाँ सुबास[६] उरझै ठहरावै ॥
अहिनिशि मगन सदा विस्माद। नानक गुर मिलि मिटै उपाध ॥५५॥
दर कौ जानै सो सरवेश। पंचाँ जीतै गुर उपदेश ॥
नगरी बैठि हकूमत करै। गुर परसादी जीवत मरै ॥
इहि बिधि मारै मन कै मान। कहु नानक दरगह परवान ॥५६॥
जोगी जोग लिये नित खेलै। शिव शक्ति एकै घरि मेलै ॥
सच खण्ड अमृत सर नीर। उलटै मारग मन अस्थीर ॥
दुर्मति दूर पलट्टी काया। जोगी जोग लिये घर आया ॥५७॥
सन्यासी सो जो सुन्न का बेता[७]। गगन मंडल महिं राखै चेता[८] ॥
अहिनिशि तारी कबहुँ न खूलै। कनक कामिनी देखि न भूलै ॥
अब[९] साचै खंड बसेरा पावै। महरम महल न को अटकावै ॥५८॥
जंगम जोग करै मन मारे। गुरमुख ज्ञान न कबहूँ हारे[१०] ॥
सगल बिषया अमृत कर पीवै। गुर परसादि जुगो जुग जीवै ॥
करम भुयंगम हिरदै धारै। आप तरै ले बहुते तारै ॥५९॥

---

(१) सर्प रूपी मन अपने शिकार के पात्र जीव रूप मेंडक के घर अर्थात् सुरत के घाट पर आधीन हो रहे। (२) शरीर समुद्र में मन जहाज को खैंच कर ले जाने वाला बादबान सरूपी पवन है उस पर सवार होकर अर्थात् मन सुरत तथा प्राण को एक करके धुर पद में जो कि शिषा सरोवर से भाव है भजन ध्यान का लंगर लगा देवे तब इसको उक्त समुद्र के तरंग चलायमान न कर सकेंगे। (३) उलटे। (४) दृष्टि की धारों को इनके भंडार की धार से शिवनेत्र के स्थान पर एक करे तो शब्द गुरू की सहायता से सुरति चेला भीतरी त्रिबेनी स्नान को प्राप्त होता है। (५) पूरे पूरे नाश होते हैं। (६) रस रूप सुगंधी। (७) भेदी। (८) सुरत। (९) तत्काल ही, जीते जी। (१०) "जंगम जोग करै मन माहीं। गुरुमुख आलस कबहूँ नाही"—ऐसा पाठ भी है। ऊपर के पाठ की कड़ी का अर्थ यह है कि गुरमुख के निश्चय को कभी कोई डोलायमान नहीं कर सकता।

बिष्नु प्रीति नित हिरदै धारै। कुंचर[१] चींटी एक बीचारै॥
अनाहद धुनि राखै मन नीत। दूसर भाव न आनै चीत॥
चञ्चल मिरग बँधै गुर ज्ञान। बैशनो बिश्नु जानै परवान॥६०॥

सो ब्रह्म बिचारी जो चीन्है ब्रह्म। गुर साखी सुनि मेटै भर्म॥
सप्त ध्यान[२] धरै मन मारि। तब लागी धुन शब्द मँझारि॥
काटि कर्म होवै निःकर्मा। आवागवन मिटै गुर धरमा॥६१॥

सोई शेष जो सोधै काया। गुरमति पाय तियागी माया॥
दूख भूख करि पीवै पानी। चौथे[३] घर महि आबादानी[४]॥
पवन सूत मन[५] मनिया करै। जपि जपि नाम सरोवर तरै॥६२॥

काजी सो जाँका कवल बिगास। ज्ञान सम्पूरण है तिपतास॥
रोजे सदा रजाय पिछानै। चन्द सूर्य[६] एकै घर आनै॥
पंजाँ मारे पंज निवाजै। ताँके घर अनहद धुनि बाजै॥६३॥

मुल्लाँ मन की मेटै चाला। चञ्चल बंधि करै पैमाला॥
अनहद बाजा बाँग सुनावै। सुन्न मसीत जाय सिर नावै॥
तहँ एकाकरणी दूजा नहिं भाव। ना कोउ सेवक ना कोउ राव॥६४॥

मौनी मन के मरदन मान। त्रिकुटी घाट करै इस्नान॥
ब्रह्म अग्नि जारै मन जीति। काया समँधै[७] बिष्नू प्रीति॥
जम्मण मरण मिटे दुइ अंगा। नानक नीर नीर कै संगा॥६५॥

राग दोष रहिता बैरागी। अहिनिशि सुरति सदा लिव लागी॥
पलटै पवना निपजै काया। मन कौ जीति सहज घर आया॥
शशै[८] सिंह कीया घर वास। तब ऐसे सरवर माहि निवास॥६६॥

---

(१) हाथी। (२) तीसरे तिल से लेकर सच्च खंड के स्थान पर्यंत। (३) यदि तीसरे तिल से लिया जाय तो शून्य मंडल पर्यंत चौथा घर आता है परंतु गुरू साहेब का भाव नभ कमल से लेकर प्रधान स्थानों को अँगीकार करते हुए सच्च खंड को चौथा कहने से है, और इसी का नाम चौथा पद है जैसा कि सच्च खंड का प्रकरण सप्त ध्यान में चला है, प्रमाण—"कहि कबीर हमरा गोविंद। चौथे पद महिं जन की जिंद"। (४) निवास, स्थिति। (५) पवन सूत्र में मन मणिके को पिरो कर नाम की गाँठी दे। (६) दृष्टि अपने भंडार के स्थान सुरति सुमिरन करे तो संसार सरोवर तर जावे। (७) मन को लकड़ियों की भाँति उस ब्रह्म अग्नि के ध्यान में भस्म कर जोड़ै। (८) स्यार रूपी जीव ने काल रूप सिंह के घर सहसदल त... अर्थात् विस्मृत कर देवे। त्रिकुटी के घाट पर स्थिति करी।

पूर्व[1] त्यागि पच्छिम करै गवन। उलटै पवना सोधै घर भवन॥
नौसै नाड़ी सोलाँसै संधी। पवना खेलै तहाँ निर्बंधी॥
उलटी गंग समुद्र मिलावै। वहै अकार फिर बीच समावै॥६७॥
किस विधि तन महि मन ठहराय। सतगुर मारग दिया बताय॥
चन्द सूर्य घर एकतु आनै। पूर्व त्यागि पच्छिम को तानै॥
मोहि तोहि सब तरियो सागर। सुभर नीर न फूटै गागर॥६८॥
उलटै बान गगन कौ साधै। पंच चोर गुर शब्दै बाँधै॥
सुन्न कोठड़ी वज्र कपाट। इन कौ जानै औघट घाट॥
गुरमुख ज्ञान लपेटै बुद्धि। मन लपटै निरबाणी सुद्धि॥६९॥
औहठ[2] पटणि[3] ताँके दस द्वार। दसवें भीतर खेल अपार॥
ताँ दर के बहुते दरबान। निगुरे मूल न पावहिं जान॥
जाँके मन गुर का उपदेश। ताँ कौ ठाक[4] नहीं उह देश॥७०॥
पदम आसन करि बैठहु मीता। अजपा जप जापहु नित नीता॥
ब्रह्म अग्नि जारहु गुर ज्ञान। तीन लोक महि ताँ की मान॥
इन्द्र चन्द्र सूर्य सरूप ध्यावहि। ताँ का दरशन देखि सुख पावहि॥७१॥
पूरक घट महि राखहु पूरि। चञ्चल मिरगा खेलै दूरि॥

---

(१) जिस ओर सूर्य चढ़ता है वह पूर्व है, जिस ओर उतरे वह पश्चिम कहाता है, परंतु पिंड में जीव रूपी सूर्य जिस अपने देश से उतरता आया है वह इसमें पश्चिम है और ब्रह्मांडादि मंडलों से उतर कर पिंड में अपना व्यवहार कर रहा है अर्थात् पिंडवर्ती मंडलों में प्रकाश करने के लिये उद्यत है सो इसका पूर्व है, सो इसी को लक्ष करके गुरू साहेब अपने घर को लौटने की शिक्षा करते हैं कि पूर्व को त्याग करके अर्थात् पिंडी मंडलों का उलंघन करती हुई सुरत को पश्चिम की ओर चलावे। पश्चिम से भाव सुरति कमल का है जहाँ पर कि इसका ऊपर से उतार हुआ और इसका संबंध पिंड से होना आरंभ हुआ था, यह स्थान पिंड तथा ब्रह्मांड की मध्यवर्ती हद है और सुरति की अपनी ठौर है इस कारण पिंड से उद्धार करके इसे प्रथम वहाँ चढ़ा ले जावे, निराधार नहीं बलिक श्वास की सहायता से ऊपर को उलटा कर अपना स्थान खोजे। पवन भी अपने आकाश मंडल को त्याग कर नीचे मंडलों में भ्रमण कर रही है सो गुरुपदिष्ट मारग से उसकी चाल भी सीधी करके उसी पर सवार करके सुरत को उलटे। इस प्रकार सुरति गंगा को उलट कर सुरते समुद्र (निज भंडार) में अभेद होने का गुह्य मारग सतगुरों ने बता दिया है कि पूर्व को त्याग कर पश्चिम में जिस घर पर चंद्र सूर्य उलट कर एकाकार हो जाते हैं सुरत को तान देवे और शब्द का बान उलटा अर्थात् ऊपर को गगनमंडल में संधान करे तो सुन्न कोठरी जो सहज सुन्न का घाट है उसके वज्र किवाड़ खुल जाते हैं, यही औघट घाट है जिसमें इसे निर्वाण अवस्था साक्षात् प्राप्त हो जाती है। (२) उपरले हाट। (३) नगर—भाव ऊँचे स्थान। (४) रोक।

रक्त रेत[१] मल सोखै तीन। गुर मिलि शब्द रता मन लीन ॥
थिर थावंर[२] घर चौथा पाया। निर्मल जोति निर्मली काया ॥७२॥
कुंभक कुंभ सम्पूरण भरै। (तब) जाय त्रिबेणी मंजन करै ॥
मन ते बिसरै दूजा अंग। यौं आप आपने आपे संग ॥
बिनु जिह्वा गुन अपने गावै। आप कहै आपै समझावै ॥७३॥
कर्म भुवंगम करै बिनाशन। गुर परसादि पिछानै आसन ॥
अग्नि[३] जलै पाकै निज सारि। डोरी लागी गगन मझारि ॥
तहँ अकल अरूप रूप सर्वङ्गी। राम नाम देही सब रङ्गी ॥७४॥
रंचक रंच जा की लिव लागी। माया संग रहै बैरागी ॥
ज्यो करि कवल सरोवर माहीं। बीचि रहै डूबै पुनि नाहीं ॥
विषयाँ महि निर्मल होइ जीवै। गुर परसादी अमृत पीवै। ७५॥
पंज तरणि[४] मेलहि सर सागर। यों करि नीर समावै सागर ॥
पंज एक[५] होय एक समावै। नरक सुरग सगले बिसरावै ॥
ज्यों तरङ्ग जल अंग समाना। ताँ का आवागवन मिटाना ॥७६॥
मन[६] का जीव जाय नित छीजै। क्योंकर झूठी बातन रीझै ॥
जब इह जीउ रहै घट माहीं[७]। तब मन तन कौ छाड़ि न जाही ॥
ना गुर मिलै न मारग पावै। बिन मारग क्यों नगर सिधावै ॥७७॥
तन का जीउ रहै मन माहीं। मन का जीउ रहै केहिं ठाँई ॥
जो इह जुग्ति जीअ की जानै। सो नर अपना आपु पिछानै ॥
आपु पिछानि बन्धन सब काटै। नानक बिरला लागै घाटै ॥७८॥
आपस कौ ऊँचा[८] करि जानै। सो नर अपुना आपु पिछानै ॥
जिनि पाया गुर का उपदेश। उत्तम नीच नहीं उह देश ॥

---

(१) वीर्य (अल्प आहार तथा अल्प निद्रा से तीनों सूखते रहते हैं परन्तु हठ अं को न लावे)। (२) दृढ़ परतीत पूर्वक भजन ध्यान में स्थिर रहने से। (३) ज्योती प्रग तो आत्मज्ञान पकता है। (४) पाँच शब्द सरूपी बेड़े (नौका)। (५) पाँचों शब्द सच खं में एक ही ठौर एक रूप हो जाते हैं पश्चात् एक में मगन होती भई सुरत जल में ज तरंगवत् सत्पुरुष में अभेद हो जाती है। (६) प्राण नित्यप्रति क्षीण हो रहे हैं। (७ सहज योग रीति से यदि यह जीव अर्थात् मन अपनी चंचल गति से निवृत्त कर लिय जाय तो यह मन शरीर से बाहर नहीं जा सकता, भाव चंचलता छोड़ कर अपने आ में ही रह जाता है। (८) ऊपर गगग मंडल आदि में अपनी सुरत को चढ़ा कर अप को ऊँचा जानै, न कि अभिमान से।

ज्ञान भानु हिरदै परगाशा। ताके अंधकार सब नाशा ॥७९॥
देखहि वृच्छ फूल फल पावै। आपस कौ नीचा दिखलावै॥
सुरते ज्ञानी इह संसारि। तरवर रंग रहै मन मारि॥
जिन अंतर गुर मति नहिं आई। मेरु कहा[1] वहिं नाहीं राई ॥८०॥
जेकरि गागर कूप महि घाली। बिनु नीची[2] भरिये नहिं थाली॥
समझि बूझि गुर के पग लागी। पल महिं भरिये बिलम न लागी॥
रिदै अशुद्ध कहा सिर निवावै। जो मनसा धारै सोइ फल पावै ॥८१॥
गुरमुख ज्ञान परापत हूआ। शब्द बिचारि जीवत फिरि मूआ॥
अंतर बाहर एकै रङ्ग। तब हरि डोलै जन के संग॥
प्रगट जोति निर्मल निरबाणी। गगन सरोवरि सुरति समाणी ॥८२॥
गुर दरियाव रतन भरपूर। नेड़े रहै न जानहु दूर॥
सर्व कला[3] जाणै जाणोई। ताँते छिपी नहीं बिधि कोई॥
जेहि घर जोति किया परगासा। जम्मण मरण की चूकी आसा ॥८३॥
मन की चञ्चल चाल मिटावै। अपना जन्म सुकारज लावै॥
चन्द सूर दुइ शिव सुर सारे। मन बसि कीया मुक्ति सिधारे॥
सतगुर सेइ[4] लिया उपदेश। तुरत सिधावै हरि के देश ॥८४॥
गुंगे भये जिन्हूँ रस चाख्या। पाया स्वाद न जाई भाख्या॥
लिव लागी मनुआ अलसाना[5]। सर्ब निरन्तर ब्रह्म समाना॥
नाद अनाहद अहिनिशि राते। पिया महाँ रस सहजे माते ॥८५॥
समरथ सदा अडोल अथाह। गुर मिलि मनुआ बेपरवाह॥
गया बिलाय[6] इह दूसर भाव। सभनीं महलीं एको राव[7]॥
वहदत[8] कसरत एकै रंग। ज्यों जल ते जल उमकि[9] तरङ्ग ॥८६॥
भउ भागा निरभउ घरि आया। तब इहु चरण पखालै गाया॥

---

(१) गुरमत से बिहीन मनमुख अभिमानी अपने को सुमेरुवत् ऊँचा कहते हैं किन्तु राई समान (आपा भाव से रहित) अपने को नहीं मानते। (२) झुके बिना; निर-अभिमानता धारे बिना। (३) संपूर्ण विद्या। (४) सेवा करके। (५) रस में निमग्न हुआ। (६) लीन हो जाना, भाग जाना। (७) समस्त पिंडी और ब्रह्मांडी लोकों में एक उसी मालिक का जलवा है। (८) एकता अनेकता सब एक ही सरूप है जैसे निस्तरंग रूप जल तथा तरंग सहित, एक ही रूप होता है। (९) उछलना, उत्पन्न होना।

होय अधीन सेवक दरि ठाढ़ी । जाँके चरन[1] कँवल रुचि वाढ़ी ॥
दिष्टि मांहि सारा जगु देखै । आप अलेख और सब लेखै ॥८७॥

प्रथम अध्याय समाप्त ॥ १ ॥

॥ १ ॐकार सतगुर प्रसाद ॥

(राग रामकली महला १)

॥ नौ नाड़ी, दश द्वार, चार जुग्ति का ध्याउ[2] चला— शरीर का बंधेज ॥

नऊँ नाड़ी की रहत बताई । कवन कवन वाके नाऊँ सुनाई ॥
वाके नाऊँ बतावे सोई सूरा । प्राण पिंड सोधे सो पूरा ॥
सो सूरा बलवंत ज्ञानी । प्राण पिंड की जिन मिति जानी ॥
अगम पिंड जिन सहजि बीचारिआ । सो जन जलाविंव ते तारिआ ॥१॥

---

(१) ब्रह्मांड में इसका मालिक निवास करता है और ब्रह्मांड उसका शरीर है। जो बाहर है वोही भीतर है। भीतरी ब्रह्मांड में भी मालिक बसता है और वह उसका शरीर है और शरीर में सब से नीचे अंग का नाम पाँव है, सब से ऊपर का सिर। सब से नीचे का उसका अंतरीय अंग (पाँव) सहसदल कमल है। पाँवों का देवता बाहर अगनी है, भीतर भी सहसदल कमल में निरंजन ज्योती देवता है, नाभी उसकी त्रिकुटी है। नाभी का मालिक बिष्णु आदित्य भगवान पिंड में है। ऊपर ब्रह्मांड में त्रिकुटी का मालिक भी आदित्य ही है। हिरदे में चन्द्रशेखर शिव रहता है और ध्यानी को ध्यान में चन्द्र दर्शन होते हैं। इसी प्रकार शून्य मंडल में पूर्ण चंद्र का प्रकाश होने से यह शिव लोक शून्य मंडल अंतर्यामी का हृदय है, सचखंड सिर (उसका) है। सिर में सारी ज्योति दिमाग़ी भंडार में ही रहती है सो सर्व समर्थ मालिक अकाल पुरुष का पूर्ण तेज सच खंड में है इस कारण उसका सिर है। मनुष्य शरीर के अंतरवर्ती जीव का सर्व शरीर ही अपना निज रूप होता है परन्तु उसका असली निज रूप अंतर दिल दिमाग़ में रहता है। इसी प्रकार अंतरीय ब्रह्मांड का मालिक उक्त स्थानी स्वरूप अंग वाला होता हुआ भी सच खंड वर्ती निरंकार के सारभूत (स्वरूप) वाला है। भाव यह कि सच खंड में निरंकार का निवास है और निरंकार का अपना असली स्वरूप भी उसके अंतरवर्ती है जो अपरंपार और अवाच संपूर्ण आनन्द मात्र है। बिना स्वरूप ज्ञान के इष्ट नहीं बँध सकता और जिस इष्ट प्रीतम को प्रेमी अपने पर कृपालू करना तथा उससे अभेद होना चाहता है तो उसके चरणों पर गिर पड़े रहने से बढ़ कर और उपाव नहीं होता। इस कारण जो सुरति कि परम पुरुष से मिला चाहती है रुचि बढ़ा कर उसके चरण कमल रूप सहसदल के स्थान पर पड़ी रहे, बस जब चरण हाथ आये अर्थात् वहाँ निरंजनी ज्योत प्रकाशित हुई और उस पर सिर (आपाभाव) सुरत का झुका तत्काल आदि पुरुष आप झुक कर हृदय से लगावेगा और सिर चूम अपने स्वरूप में मिला लेवेगा। गुरू महाराज उन्हीं चरणों का इशारा करते हैं। (२) अध्याय।

सहजि बिचारिआ अगमा थेहु । नानक सो जन पूरा जिनि चीनिआ देहु ॥
नऊँ नाड़ी सब कोई कहै । साधि विचारि कोई बिरला लहै ॥
जो लहै तिस कौ मिति आवै । नऊँ नाड़ी की मिति सोई पावै ॥
कवन क्रिया दा कवन बंधेजु । कवन शीत कवन राखै तेज ॥
कवन सूखम कवन अस्थूला । कवन सु अस्थिर कवन डडूला ॥
कवन पेती कवन है बाई । नऊँ नाड़ी की किन मिति पाई ॥
जिन मिति पाई सोई पूरे । नानक उनकी बाँछे धूरे ॥२॥
नौ नाड़ी की जो मिति[1] जानै । विचरि विचरि ओह आखि बखानै ॥
ठौर ठौर की नाड़ि बतावै । जाँ की अगम[2] दृष्टि होय आवै ॥
प्रान पिंड का करै बिचार । ताँ कौ सदा सदा नमस्कार ॥
नाड़ि नाहि का डेरा[3] कौन । कौन नाड़ि जितु बसता पौन ॥
नौ नाड़ी का कथा कथा नाँउ । नानक जो कहि देवै तिसके बलि[4] जाँउ ॥ ३ ॥
वंक नाड़ि पहली का नाँउ । बंक नाड़ि रनकि[5] गुन गाउँ ॥
बंक नाड़ि बोलत सुख जीउ । बंक नाड़ि दृढ़ियै[6] करणीउ ॥
रसकि रसकि जब हरि गुन गावै । बंक नाड़ि महि गाइ रिझावै ॥
करि किरपा प्रभु अगम दिखावै । नानक पहिली नाड़ि बक नाँवै ॥ ४ ॥
दूजी नाड़ि शहरग कर धरी । जाँ महिं सास बिराजत हरी ॥
शहरग माहि बसै जब शाह[7] । शहरग चलै पौन का राह ॥
पौन मारग शहरग है भाई । फिरि घरि आय तहीं ठहराई ॥
बोलनहार शहरग महि आवै । नानक दूजी नाड़ि बतावै ॥ ५ ॥
उहज नाड़ि पानी की जाय । बिन पानी पीते कुम्हलाय ॥
हरिआ होवै तब पीवै पानी । बिन नीर पीते नाड़ि कुम्हलानी ॥
सरसा[8] रहै पानी के संग । बिन पानी सूखै निभरंग[9] ॥
जब सूखे तबही तिष[10] लागै । तब पानी पीवन कौ भागै ॥

---

(१) मर्यादा। (२) अनुभव। (३) निवास स्थान। (४) बलिहार, कुरबान। (५) नाभी की बाईं ओर मांस हृदय से लेकर मध्य भाग छाती में से थोड़ा थोड़ा सा व्यंग मारती हुई जो एक नाड़ी है जिसमें से श्वास आता जाता है उसे बंक नाड़ी कहते हैं, उसके बीच में से गुप्त रीति से झनकार पूर्वक स्वतः नाम की धुनि उठती रहती है उसे भी अजपा जाप कहते हैं—गुरू महाराज उसी की ओर यहाँ ध्यान दिलाते हैं। (६) उसी करने योग्य कार्य को अर्थात् नाम स्मरण ध्यान को बंक नाड़ी में दृढ़ करे। (७) जीव। (८) सरवा, तरोताज़ा। (९) निश्चय करके। (१०) प्यास।

पित्त नाड़ि महि आतश भाई। तौ नानक तीजी नाड़ि बताई ॥ ६ ॥
हहू नाड़ि ऊष्म[१] का थाना। तब होय सम्पूर्ण जब मन शितलाना ॥
बिन अहार ओह नहिं ध्रापै[२]। हहू नाड़ि की तब गति जापै ॥
हहू नाड़ि बिच राखी भंडारा। एक सौ ग्यारह ताके डारा ॥
डार डार महिं सब रस जाई। तब आहार हहू महि पाई ॥
चौथी नाड़ि हहू की कीन्ही। नानक किनहूँ बिरले चीन्ही ॥ ७ ।
इंद्री नाड़ि सँग सूत बनाये। नख सिख[३] का रस इंद्री जाये ॥
इद्री की जड़ मस्तक भाई। जब इंद्री चलै जोति[४] मिटि जाई ॥
इंद्री बाँधि रतन बस करिया। सोई रतन लै माथे धरिया ॥
इंद्री की नाड़ि सोई जन जानै। तबही लाल[५] जोति पहिचानै ॥
पंजवीं नाड़ि इन्द्री की करी। नानक किसै बिरलै सोझी परी ॥ ८

गुहल नाड़ि प्रान सुख शांति। तिलु[६] अटकै तरफै दिन राति ॥
जब अटकै तब क्या सुख होवी। पेट गगन[७] जिय कौ दुख होवी ॥
गुहल नाड़ि का अटकै राहु। तब इस जिय कौ खरी महाहु[८] ॥
गुहल नाड़ि जब सहजी[९] चालै। तब इस जिय कौ सहजि बहालै ॥
छठवीं नाड़ि गुहल करि साजी। नानक कीन्हीं अचरज बाजी ॥ ९
बेनी नाड़ि महि तन की परखा[१०]। नाड़ी का कूच[११] बीनी करि रखा ॥
नाटक महि जिय की सब जोति। बीनी महि नाटका ओत पोत[१२]॥
नाटक चलै तबहि जिय सुखी। ठौर छोड़ै नाटक जिय दुखी ॥
बेनी अरु नाटका रहि जावै। तब इस जिय कौ मरना आवै ॥
बेनी नाटका एकहि जाय। नानक सप्तमि नाड़ि बताय ॥१
अष्टम नाड़ि कोई जन जानै। तहाँ सिद्धि नौ निधि ठहिरानै ॥
बाहू कर्म शोध उह पावै। अठवीं नाड़ि जे कोइ बतावै ॥
अठवीं नाड़ि राखी बिच त्रिकुटा[१३]। जिस सूझै तिस एह ध्यान जुगटा[१४] ॥
अठवीं नाड़ि रखी है गुहजा[१५]। नानक कोइ जन खोजै शुहदा[१६] ॥१

---

(१) हवाड़, भाफ। (२) धीरज नहीं धरती, तड़पती है। (३) पाँव के नाखून से
सिर की चोटी तक। (४) प्राक्रम, तेज माथे का। (५) आत्म ज्योती। (६) तिल
रंचक भर। (७) पेट के अंतर्वर्ती जीव (कृम कीट आदि)। (८) भारी कठि
मुशकिल। (९) सहज सुभाव, अपनी चाल के अनुसार। (१०) पहिचान। (११)
का जाल। (१२) ताने बाने की नाईं परस्पर गुथी हुई। (१३) त्रिकुटी। (१४)
गया। (१५) गुप्त। (१६) तत्त्वदर्शी।

नवीं नाड़ि महि सब जोति बनाई । कोऊ विरला खोजि लहै जन भाई ॥
नवीं नाड़ि का महल[1] है कैसा । जो चीन्है सो उसही जैसा ॥
नवीं नाड़ि राखी है दूरे । खोजि लहै सोई जन पूरे ॥
नवीं नाड़ि राखी असमाना[2] । नानक कोइ जन उहाँ समाना ॥१२॥
नौ नाड़ी का नाँव बताया । जिन कहिया तिनि आप दिखाया ॥
आपहु कोऊ किछू न जानै । जिनि डीठा सो आषि बषानै ॥
अनडीठा किछु कहिया न जाई । जिन सूझ परी तिनि साषि[3] सुनाई ॥
रोम रोम की जब मिति आवै[4] । नानक हरि प्रभु साचै भावै ॥१३॥

आगे दस द्वारे चले, द्वार द्वार की रीति ।
जिस जन द्वारे निरखते[5], तिस ठाढ़ी भ्रम[6] भीति ॥
द्वार द्वार की मिति कही, द्वार द्वार की रहित ।
जिस गुर पूरा भेटिश्रै, सोई कथनी कहित ॥
कहै वृतन्त दसवें द्वार का, मन मथि[7] कहै सुनाय ।
गुहल दुवारा नानका, सोई कहै लिव लाय ॥१४॥
गुहल दुवार प्रान महि, प्रान पिंड का राहु ।
वाई बहन[8] जब नीकसै, प्रान पिंड सुख ताहु ॥
जीव प्रान सुख शांति होय, जब चलै गुहल[9] की नाड़ि ।
जे इक किनका अकट[10] होय, रहै दसे दर ताड़ि[11]॥
सहज चलत सुख होय जिय, प्रान मुक्ति उदमाद[12]।
नानक गुहल दुवार की, कथा विषम विसमाद ॥१५॥
इन्द्री द्वारा बिंदु का, रत्न गिरन का राहु ।
जिस खूले तिस हिरै[13] जोति, बंधै रत्न महाहु ॥
माथे प्रगटै रत्न जोति, जो इन्द्री बन्धन देय ।
गुर का शब्द बिचारि जन, रत्न बिहाझहि[14] सेइ ॥
काम बन्ध नरकहुँ बँछै[15], बहु जूनी तें दूरि ।
नानक रत्न अमोलक तिनि लिया, पंच भूआत्मा[16] चूरि ॥१६॥

(१) मुकाम । (२) सहसदल, भ्रूचक्र में । (३) प्रमाण, निशानी । (४) मर्यादा । (५) दिखाई देते हैं । (६) भरम की कंध । (७) मन को मर्दन करके । (८) अपान वायु का सरना, गुदा मारग से पोन का निकलना । (९) गुह्य नाड़ी, गुदा की । (१०) थोड़े भी अटक जावे तो । (११) ताड़े रहना, खँचे रहना, अफरे रहना । (१२) प्रान खुली रीति से अपने उद्यम को धारे रहता है । (१३) क्षीण या नष्ट हो । (१४) इकट्ठा करे, सौदा करे, खरीद करे । (१५) बच जाना । (१६) पाँच भौतिक शरीर को चूर करके अर्थात बड़ी ही कठिनता से ।

तृतीया द्वारा मुख किया, जित बोलन बकन सुभाव।
शब्द कुशब्द बकता रहै, बकते का दरियाव॥
अमृत भोजन जित परै, करता स्वाद अनेक।
निन्दा अस्तुति बकता रहै, अहि निशि गणत अनेक॥
भक्ष[1] अभक्ष अहि निशि रचै, कह्यौ मुख्ख द्वार।
नानक तीजे द्वार का, सुनिये इह बिस्थार॥१७॥
दुइ द्वारे कर नासिका, महा मुशक[2] रस लीन।
खुशबूई रस भापने[3], बुरा भला बुधि दीन॥
खुश खुशबोई सींघि[4] कै, सुमिरत सिरजनहार।
इस मन कौ एकी एक गुन, बूझ न होहि गँवार॥
सब रस लीन्हा नासिका, सींघन कौ सुख बास[5]।
नानक कीन्हे दुइ द्वार, लेन साँस अरु बास॥१८॥
दुइ द्वारे नेत्तर किये, निरखन कौ उत्पत्ति।
निरखि निरखि होवहि विसमा, जानत सब गति मित्ति॥
अठसठ तीरथ पगि भवै, साधू निरखन जाय।
चारि कुंट[6] चौदह भवन, निरखि निरखि बिगसाय॥
उतपति परलौ निरखने, नेत्र किये प्रभु आप।
नानक निरखै नेत्र महिं, जल थल रह्यो ब्यापि॥१९॥
दुइ द्वारे करन किये, हरि जस सुनहि सहज।
गीता[7] अरु भागवत की, कथा सुनीजै रज[8]॥
वेद चारि अठारह पुरान, सुनिये हित चित लाय।
जो जन प्यासा नाम का, हरि जस सुनि बिगसाय॥

---

(१) उचित अनुचित अहार। (२) अतर आदि सार सुगंधि। (३) सुगंधी रस अघोकने के वास्ते। (४) सूँघ कर। (५) सुगंधो। (६) दिशा। (७) यह बचन लोगों साधारण रुचि के अनुसार कहा है, भाव इस का यह है कि जिस प्रकार बालक मिठ आदि का आग्रह करता है तो पिता कहता है लो तृप्त होकर एक बार खालो बार- ऐसा खयाल न रक्खो यही अभिप्राय गुरु साहब का इस जगह है कि तृप्त होकर बार कथा पुरान सुन लो कि फिर-फिर यही काम न करना पड़े; असली काम औ जिसको गुरु बाणी में आप दर्साया है—"रे नर क्या पुराण सुनि कीना। अनपा भक्ति ना कीनो भूखे दान न दीना॥" तात्पर्य यह है कि उनको सुने और सार अर्थ लेकर सत्यासत्य की कसौटी पर कसे, जो धारणीय हो धारे, त्यागनीय को त्यागे, बार पीसे का क्या पीसना। (८) तृप्त होकर।

शब्द कुशब्द सुनन कौ, दुइ दर करन कीन।
नानक करनी ब्रह्म सुनि, होइहै संत अधीन ॥२०॥

सहजी दसवें द्वार की, कथा सुनीजै संत।
तहँ प्रगास अती घना तहँ, शशीअर[1] सूर अनंत॥
तहँ चढ़ि मनूआ होय अकाल, तिस काल न निरखन[2] जाय।
गुर किरपा उस द्वार महिं, मनूआ सहज समाय॥
दसवें द्वारे की कथा, सुनिये संत सुभाय।
नानक जीवत ही मरै, जब दसवें द्वारे जाय ॥२१॥

नौ दरवाजे परगटै, दसवें गुहज अस्थान।
नौ निरखत सभ सैं किसै[3], दसवें संत समान॥
संत भक्त ऊहाँ रचि रहे, जो नौ तें ऊपरि होत।
नानक नौ दर निरखते, गुहजी निर्मल जोति ॥२२॥

महा अगम गढ़ किया बनाय। बिच अठसठ[4] हाट किये जनाय॥
सुरखी[5] फीफसु[6] पित्त[7] बिचि कीन्हा। काया गढ़ की विषम है चीन्हा॥
जीआँ महिं जीअ केते हहिं भाई। गुहज जियाँ की खबर न पाई॥
इस नगरी महिं अगनित जीया। अवर गुहज एक प्रगटीया॥
एक प्रधान अवर हैं गुहजे। जिन्ह गढ़ चीन्या तिसही सूझै॥
प्रान पिंड अगम है भाई। नानक क्या कहै किछु कहा न जाई ॥२३॥

प्रथमै जुग्ति महा निरबाण। नाहीं पीवण नहिं तहँ खाण॥
दुतिया जुग्ति अभय सँग बनी। नाम प्रसाद[8] पिंड नहिं छनी[9]॥
तीजी जुग्ति जत्न करि धारी। बाल बुद्धि सब दृष्टि उबारी॥
चौथी जुग्ति दया मनि आई। चहुँ जुग्ती की तब मिति पाई॥

---

(१) चंद्रमा। (२) देखने मात्र को भी उसके समीप। (३) सब किसी को नौ दिखाई पड़ते हैं मगर दसवें के गुह्य होने के सबब उसमें संत ही समाते हैं। (४) सविस्तर निरणय आगे आवेगा। (५) कलेजी। (६) फेफड़ा। (७) पित्ता। (८) कृपा, प्रताप। (९) क्षीण होना।

काया नगरी का मारग जिन पाया। चहुँ जुगती का नाम बताया ॥
अगम नगरी[1] बिषम दरिआव। नानक हड चम का किया बनाव ॥२४॥
पहली माहीं निर्मल नीर। दूजी महिं ले किआ पंचीर ॥
तीजी महिं ले थान थनोला। चौथी महिं सच दीये बोला ॥
पँजवीं में ले फीटी फुटी। छठवीं में इहु देहु पलटी ॥
सत्तवीं माहिं ले राखी उलटी ॥
अठवीं महिं अठसठ ले राखे। नावीं महिं ले नौं दर भाखे ॥
नौ नाड़ी बहत्तरि कोठड़ियाँ। नौं खंड चारि कुंड चौदह पुरियाँ ॥
इकीस ब्रह्मण्ड सत्त सत्तीका। धरती आकाश बंधन सब जी का ॥
पिंड ब्रह्मण्ड धरती आकाश। मिरत मँडल प्रगटे ले स्वाँस ॥
दसवें महिं कीया परगास। बिसम भया देखि नानक दास ॥२५॥
मानसदेह करि कीया कंध[2]। नौं नाड़ी बहत्तरि बंध ॥
जैसे दूध महिं जावनु[3] दिया। रक्त बिंदु गुर शब्द अलीया ॥
पहिली माहीं निर्मल नीर। दूजी महिं उत्पन्न मथीर ॥
तीजी माहिं रक्त का गोला। चौथी माहीं जोति[4] बटोला ॥
पँजवीं माहीं सगल शरीरा। छठवीं माहिं सम्पूर्ण मथीरा ॥
सतवीं महिं धातु ले संचिया जीउ। अठवीं महिं नष शिष साजि सरीउ ॥
अंगुल पिंगल नष शिष नाक। नावीं महिं होवहि तन पाक ॥
दसवीं महिं जो होआ मुक्ता। नानक ऊर्ध कवल महिं हरिहरि जपता ॥२६॥
इंगला पिंगला सुष्मना नौ द्वारे। चारि चौदह इकीस भँडारे ॥
दसवें मास दस द्वारा मुक्ता। उर्ध मुखि आवत उर्ध मुखि जाता ॥

---

(१) अगम लोक, जब सुरत अगम लोक को सचखंड से ऊपर चढ़ती है तो एक प्रकार का तात्कालिक शब्द जिसके दृष्टांत के लिए कोई शब्द ही नहीं परन्तु समझाने के वास्ते ऐसा कहा जा सकता है कि निर्मल अपूर्व तथा विस्तरित मैदान में अपनी मौज में मगन (अमृत के नशे में पड़े हुए) राजकुमार की सेज्या को अगम का हड़ (जल का शब्दायमान बेग) जैसे अपने ऊपर-ऊपर बहा ले जाकर उसे अपने निज पिता के गृह में पहुँचा देवे इसी प्रकार का एक अगमी शब्द सचखंड बासी सुरति को भी एक अकह दशा में उड़ा कर ले जाता है जहाँ पर कि अगम नगरी है। उस शब्द का महान् रसीली दशा में उड़ाते हुए चढ़ा ले जाना। जिस अद्भुत परमानंद का उत्पादक है उसको कोई असंख्यात जीवों में से बिरला ही अनुभव कर सकता है— उसी का इशारा गुरू महाराज ने दिया है॥ (२) सम्पूर्ण नाड़ियों का आधारभूत योग शास्त्र प्रसिद्ध नाड़ियों का पुतला जिसका शास्त्रीय नाम कंद है। (३) जैसे दूध में दही की लाग। (४) तेज शामिल किया गया, लपेटा गया।

नेत्र रसना कर कीये पाँउँ । करिबो बचन हरि भगति कमाउँ ॥
जब लगि भगति करै तब छूटै । नहीं गरभ अग्नि महिं काचै फूटै ॥
जब पाकै तब भगति कमावै । नहीं फुटि जाय काची ही आवै ॥
दसवें मास आय बाहरि डीठा । नानक हरि बिसारया थन लागा मीठा ॥२७॥
त्रैसे साठ करी हड़वारी[1] । अनील असंख करी रूमारी[2] ॥
सवा घड़ा रक्त[3] का करिया । इहि बिधि ठाकुर देही सरिया[4] ॥
एक हाथ महिं सब परकारा । जो चीन्है सो पावै पारा ॥
हाथ ऊपरि चंपा बंक नाले । ताँ ऊपर रसना नाम सम्हाले ॥
दुइ दरबान जब ताली खोलहिं । तौ बैनी अपने रस बोलहिं ॥
रक्त बिंदु का देंह उपाया । नानक अचरज रूप दिखाया ॥२८॥
करि कलबूत बिचि जीव समाया । कौल[5] बचन दे भीतर आया ॥
अंतर देखि खरा लोभाना । कौल देने कौ पछताना ॥
अब पछताने क्या होता मीता । जब हरि सिउँ बोल बचन है कीता ॥
देखि अंधेर बहुर उह डरिया । तब हरि सिउँ बोल बचन है करिया ॥
इस नगरी महिं हाट बजारा । ऊहाँ मन जाय किया पसारा ॥
छोड़ि पसार मीत उठि चालु । अपना बोल बचन सम्हालु ॥
जिनि तू साजि स्वाँरि सिंगारया । नानक प्रभु सिउँ बचन न हारया ॥२९॥
उह कैसी धीरी जित प्रभु पेखै । आँखि पसारि नहीं प्रभु देखै ॥
ओइ दृग अवर जिनी प्रभु दीसै । बिनु उन आँखी मिलण न रीसै ॥
ओइ आँखी जिस आप दिखावै । ब्रह्मदृष्टि ताँ को होय आवै ॥
धन्य ओइ आँखी जिन प्रभु डीठा । नानक हौं मैं बिनसी ढीठा ॥३०॥
अठारह कुंग[6] करि पिंजरू करिया । दुइ लट्टू लै ऊपरि धरिया ॥
सूति चौकाठि धरी दोय गुहजा । हिकमत साजि किया दरवाजा ॥
दरवाजे शिषरि करी दुइ बारी । इन महिं केते मरद केती आहहिं नारी ॥
एक नारि[7] बत्तीस हहिं मरदा । उन नारि सिउँ भेद न परदा ॥

---

(१) हड्डी । (२) रोमावली । (३) सवा घड़ा प्रमाण शरीर में रक्त है एक प्रति में पाठ रत्न था यदि रत्न पाठ हो तो यह वीर्य का प्रमाण समझना चाहिए, रक्त का प्रमाण दस धारण वज़न का आगे दिया है । (४) रची । (५) इक़रार । (६) करंग अर्थात् पिंजर की हड्डियाँ जो तादाद में अट्ठारह होती हैं—इन्हीं अट्ठारह करंग की हड्डियों का पिंजर खड़ा किया गया है और उनके ऊपर दो लट्टू थनों के रक्खे गये हैं । (७) रसना नारी बत्तीस मरदरूप दाँतों में ।

उनकी रखवारी होइ उह नारि । जब ओह भागहि उहु देइ बिगारि ॥
उन नारि बिगरे भागहिं दोइ वैरी । नानक दुहुँ अवर मरदाँ कौ होय खुआरी ।३१।
दरवाजे की डाली[1] दोय । दुहुँ बारी ऊपरि दुइ रत्न[2] परोय ॥
उन रतनाँ की जोति सभ रचना दीसै । गुहज जोति नहिं परगट कीसै ॥
दुइ श्रवन किये हरि कथा सुनन कौ । नेत्र किये दरशन पेखन कौ ॥
नासिका कीया मुशक[3] लेन कौ । मन कीया हरि भगति देन कौ ॥
मस्तक कीया साध निवन कौ । पिंजर किया सब रस पीवन कौ ॥
प्रान पिंड का किया मथंत । नानक कोट मधे को बूझै संत ॥३२
धुन कै बीच धरी सब धरनाँ । हीये बीचि रखिया है फुरना ॥
गाँठी ऊपरि गाँठी धरी । होय निरंभ[4] प्रभ मिहनत करी ॥
गल बिच अगनित नारि बनाई । अपने अपने ठौर रखाई ॥
नौसै नारि पिंजर की करी । कोटि मध्ये किसै सोझी परी ॥
जिस किरपा तिसही कुछ जाना । नानक प्रान नगर देखि रह्या हैरान। ॥३३
दरवाजे के दोय बुरज[5] स्वाँरे । हिकमत करि उस्ताद सुआरे[6] ॥
करि हिकमत इक कला बनाई । डोलै तलै लेधरी कलाई ॥
नाटक बेनी[7] कोहन स्वाँरी । अनंत कूच कीआ इहि नारी ॥
नौं नारी का कोइ मत जानै । भुजा भुजा सब कोय बखानै ॥
पंच नाम भुजा के कीने । जड़ाउ[8] किया है चौदह दूने ॥
चौदह दूने[9] गाँठी पाई । दोय मरद दश नारि उपाई[10] ॥
अठत्तीस[11] पौड़ी का किया बनाउ । दश नारि मरद का एको नाँउ ॥
आप जीवत मुख जाका मूआ । इह अचरज-खेल प्रभु तुमतें हूआ ॥
बहुत बिस्थार कहियतु है ऐको । नानक देखहु एहु बिबेको[12] ॥३४

(१) चाभी, नेत्रों से भाव है। (२) दोनों बारियाँ गोलक (पोल) नेत्र को कहा उनके उपरले मुकाम पर पुतली रूप रत्नों को परोय कर एक कर देवे इन दोनों आदि जोत जो शिव-नेत्र में है उसी का बाह्य प्रकाश सम रचना दृष्टि आ रही है (३) सुगंधि। (४) सहारे से रहित, बिना दूसरे की सहायता के। (५) कन्धे। (बनाये। (७) बीणी (कलाई) की नाड़ी। (८) जोड़। (९) अट्ठाइस गाँठें उँगलियों पोर। (१०) अंगुष्ठों के उपरले भाग दो मरद और निचले दोनों भागों समेत १० नारि (अँगुलियाँ)। (११) अँगुलियों के पोरों की अंतरालिक रेखायें न्यूनाधिक होती गुरू साहेब ने इनकी मध्यभावी औसत ली है सो भद्र पुरुष के ३८ ही होती विरक्त के ४२ और पंडित के (जो धारणाशील हो) ४४, ऐसा ऐसा इनका विचार है (१२) निरणय।

दुइ चुशमे[1] पानी के करे। पानी साथ समपूर्ण भरे॥
पानी की मटकी करि धरी। जैसे शीशी पानी भरी॥
शीशी कौ जब ठनका आवै। तब पानी बीचड बिनसि समावै॥
पानी बीचि ले जोति बनाई। कुदरत[2] करि विच धीरी पाई॥
धीरी बीच जोति सब धरी। चशमे बीच प्रभु कुदरत करी॥
रंग रंग के दस्ते[3] पाये। स्याह सुपेद रंग सुरषाये॥
भौहाँ सेली सूत[4] बनाई। नानक पानी की कला[5] जनाई॥३५॥
कहहि कान की को मर्यादा। कोपर पुटपुटी त्रै अंदाजा[6]॥
तीनों का एकोई बासा। प्रभु अबिनाशी किया तमाशा॥
क्या कहिये किछु अंत न पाया। अचरज करि प्रभु रचन रचाया॥
गल ते ऊपर एह पसारा। आँख नाक मुख कान सवाँरा॥
ठोड़ी कीन्हीं हड़ब[7] बनाई। नानक क्या कथिये कछु कथ्या न जाई॥३६॥
कोपर[8] किया देही का छत्तु। अवर हाड़ चाम रक्त[9] पित्तु॥
कोपर ऊपर अगनित बाल। कवन खान[10] कवन कही अहिं साल[11]॥
साल अढ़ाई बाल कहावहिं। उत बालहि केई बिरले पावहिं॥
जब ओइ भीगहिं तब होवहिं पाक। जब ओइ कोरे तब सदा नपाक॥
हिन्दू मुसलमान ना जानै। ओइ ले राखे गुहजै थानै॥

---

(१) आँखें। (२) कारीगरी, शक्ति। (३) डोरे, सूक्ष्म रेखायें जो क्रोध शोक तथा आनंद आदि अवसरों पर प्रगट हुआ करती हैं। (४) जैसे विशेष पंथाई फकीरों के गले में रेशमी ताँत की सेली पड़ी होती है इसी प्रकार श्याम श्याम कोमल रोमों का घेरा भँवों का आँखों के गिर्द दिया हुआ है। (५) खेल। (६) कांडली, कनपटियाँ और कान तीनों अंदाजे (करीने) के साथ बनाये गये हैं। (७) चबाड़ियाँ, जबड़ों का संबंधित स्थान। (८) खोपड़ी। (९) लहू। (१०) ढेर रूप बाल केशों से भाव है। (११) खोपड़ी पर के रोम जो केशों में गुप्त हैं, जो ब्रह्मरंध्र के स्थान पर होते हैं, जब तक उन पर जल का स्पर्श न होवे स्नान पूर्ण नहीं होता परंतु उनका भेदी हर कोई न पाकर प्राचीन आचार्यों ने जो कि कर्मकांड प्रवर्तक हुए हैं साधारण तरह पर सभ में यह प्रचलित कर रक्खा है कि वह चोटी को जरूर ही जल स्पर्श करावें। यही कारण सहजधारी हिंदू मतावलंबियों के शिखा (चोटी) धराने का है। उन बालों का काटना धर्म नहीं है क्योंकि कुल आचार कर्मकांड आदि का स्नान पर निर्भर है और स्नान उनके बिना पूर्ण नहीं होता। यह प्रचार केश धारियों अर्थात् शिष्यों में भी है कि स्नान करते समय ब्रह्मरंध्र के स्थान पर बहुधा जल का सपर्श करते हैं। मुसलमान सर्वथा भूले पड़े हैं इसी वास्ते चोटी तक भी नहीं रखते। सन्यासियों को कर्मकांड का अधिकार नहीं इस कारण वोह भी शिषा (चोटी) का मुण्डन करा देते हैं।

अगनित बाल कोपरी के भाइ। नानक इह मिहनत आपि उपाई ॥३७॥
नासिका कछ[1] इंद्री के मूश्रा[2]। हराम ओइ विचि सगले लूआ[3] ॥
और लूआ सगले हहिं लेखे। उन लूअन कोइ बिरला देखे ॥
तीन बाल का सदा ही भर्म। बाल अढ़ाई सदा अकर्म ॥
लूव लूव का करै विचार। वा कौ सदा सदा नमस्कार ॥
रोम रोम की आखि सुनावै। नानक वाका दास कहावै ॥३८॥
नाभ तलै नल किया बनाय। तिन महिं काम रहिया घर छाय ॥
काम द्वार इंद्री है कीनी। उनि बंद बंद की रस हर लीनी ॥
इंद्री जीतै सो साधू कहावै। इंद्री जीतै सो परम पद पावै ॥
काम पदार्थ इंद्री महिं धरिआ। जिनि चीनिया तिस कौ हथ चढ़िया ॥
जिनि खोलिया तिन रत्न गुँवाया। नानक इन्द्री स्वाद जोनि भरमाया ॥३९॥
कूले[4] तले स्थल है कीनी। गोडे ऊपर चपनक[5] दीनी ॥
चपनक तले आँखि[6] दुइ करी। नाड़ो सूति मिहनत करि धरी ॥
सथल कोले तलै बनाई। दुहूँ नाड़ी की नींउ बँधाई ॥
दुइ नाड़ी सथल ते तले। तिनि प्रसादि प्राणी सुखि चले ॥
सथल तले पिलाँ[7] ले दीनी। नानक ऐसी पुतली[8] कीनी ॥४०॥
पिलकाँ कहि बीचार सुनावै। बन्द बन्द की खबर बतावै ॥
एक नाली दुइ गिट्टे करे। नाड़ी के कूच तले लै धरे ॥
पग के तले तली है कीनी। तली हिवार[9] चलन कौ दीनी ॥
पग के आगे अंगुलि स्वारी। बारह मरद आठ है नारी ॥
दुइ मरदाँ[10] के मरद हहिं दोय। कोई बतावै बिरला ओय ॥
आप जीवत मुख[11] मूए हैं उनके। कोई नाँउ बतावै तिनके ॥४१॥
बिंद बिंद सभ कोई कहै। महा बिंदु[12] कोई बिरला लहै ॥
महाँ बिंदु महिं लाल बनाया। जिनि चाना तिनही जन पाया ॥

(१) बगल। (२) मोटे बाल। (३) रोम। (४) कूले से भाव चूले या दो पहलुओं से है। (५) चपनी या घुटने के ऊपर की हड्डी। (६) घुटने के आस पास छोटे-छोटे दोनों गढ़े। (७) टांग के पाछे का गुद्दीदार मांस (पिडलियाँ)। (८) शरीर (९) हमवार-एकसार चपटी जगह मैदान आदि। (१०) दो अंगुष्ठों के दो नाखून (११) नाखून का बढ़ा हुआ अगला भाग मुरदा होता है इसी कारण काटा जाता उसके कटने में क्लेश नहीं होता परंतु किंचित भर पीछे से कट जाय तो कई दि पर्यंत पीड़ा करता है, यही इसकी परख है। (१२) ओज धातू वीर्य का सार जीवन त (वैदक कथनानुसार) ओज में ही स्थिर रहता है।

तत्त बिंदु की क्यों मिति आवै। जब बन्धै तबही मिति पावै ॥
बिंदु भरोसे इन्द्री कसी। राँडी[1] कै डरि बन महिं बसी ॥
नेत्र न सोवहिं बिन्दु गिरन ते। मन बाँधै चहुँ कुंड[2] फिरन ते ॥
दह दिशि धावत इह मन बाँधा। नानक महा रत्न बिंदु ते लाधा[3] ॥४२॥
बाँधी बिंदु रत जब पाया। बिंदु बाँधी जब मन ठहराया ॥
बिंदु बाँधी जब जोति प्रगासी। बिंदु बाँधी जब मिल्या अबिनासी ॥
बिंदु बाँधी तब पिंड थिर पाया। बिन्दु बाँधी जब अमर ठहराया ॥
बिंदु बाँधी जब आपि आप जाना। बिंदु बाँधो जब तत्त प्रगटाना ॥
बिंदु बाँधी जब ब्रह्म कौरलिया। नानक बिंदु बाँधी फिरि गरभ न गलिया ॥४३॥
बिंदु बाँधी तब रहत सभ जानी। बिन्दु बाँधी तब जोति प्रगटानी ॥
बिंदु बाँधी तब बिषम गढ़ साधा। बिंदु बाँधी तब अभय पद लाधा ॥
बिंदु बाँधी तब उषमा[4] त्यागी। बिंदु बाँधी तब अगम धुनि लागी ॥
बिंदु बाँधी तब जोग मिति पाई। बिंदु बाँधी तब शिव जुगति आई ॥
बिंदु बाँधी ते छिमा मन आवै। बिंदु बाँधी ते रत मिति पावै ॥
बिंदु बाँधी तब काया बीचारी। नानक कोट मध्ये कोई रत्न ब्योहारी ॥४४॥
रत की सार कोई और न जानै। रत की जोति कोई जौहरी पिछानै ॥
रत जोति कौ कोइ जौहरी पावै। रत की जोति मिति आखि सुनावै ॥
रताँ का पारखू रत कौ पावै। बिन जौहरी नाँ परख्या जावै ॥
रत कै पारखू रत मनि जरिया। रताँ कै पारखू रत हथि चढ़िया ॥
रत कै पारखू रत मोल लीया। नानक रताँ कै पारखू रत बशि कीया ॥४५॥

जब रत हथि चढ़िया तब जोति पसारी।
जब रत हथि चढ़िया तब लागी धुनि तारी ॥
जब रत हथि चढ़िया तब सुन्न समाया।
जब रत हथि चढ़िया तब अगम दृष्टाया ॥
जब रत हथि चढ़िया तब बिमल जुगति[5] पाई।
जब रत्न हथि चढ़िया तब भई शीतलाई ॥
जब रत हथि चढ़िया तब सभ मिति जानी।
जब रत हथि चढ़िया तब भये मुनि ध्यानी ॥
जब रत हथि चढ़िया

---

(१) स्त्री। (२) दिशा विदिशा, परंतु यहाँ भाव पदार्थों से है। (३) प्राप्त हो जाता है। (४) हवाड़ अधिक बोलने आदि का स्वभाव। (५) निर्मल युक्ती सहज योग की।

सुन्न समाधि का पाया जिन रूप ।
नानक तिस हथि चढ़िया रत्न अनूप ॥४६॥
जिनि बिन्दु खोई तिनि रत्न गुँवाया ।
जिनि बिन्दु खोई सो गरभ महिं आया ॥
जिनि बिन्दु खोई सो फिरै चौरासी ।
जिनि बिन्दु खोई सो परै यम फाँसी ॥
जिनि बिन्दु खोई तिस पिंड धरि[१] पाई ।
जिनि बिन्दु खोई तिस काल संताई ॥
जिनि बिंदु खोई तिनि सब किछु गुँवाया ।
जिनि बिन्दु खोई तिनि महा दुख पाया ॥
जिनि बिन्दु खोई तिस कौ खरी भारी ।
जिनि बिन्दु खोई तिस करै जम ख्वारी ॥
जिनि बिन्दु खोई तिस अंत दुख होसी ।
नानक जिनि बिन्दु खोई सो अंत कौ रोसी ॥४७॥
जिनि बिन्दु खोई सो जन्म फिरि आवै ।
जिनि बिन्दु खोई सो सदा दुःख पावै ॥
जिनि बिन्दु खोई तिस नरक घर बाँधा ।
जिनि बिन्दु खोई तिनि महा दुख लाधा ॥
जिनि बिन्दु खोई सो गर्भ महिं गलै ।
जिनि बिन्दु खोई सो अग्नि ज्यों जलै ॥
बिन्दु खोई का एही विचारु ।
नानक बिन्दु खोई फिरि फिरि अवतारु ॥४८॥
जिनि बिन्दु नहिं साधी पर त्रिया जोहहि[२] ।
जिनि बिन्दु नहिं साधी से अंत बहि रोवहि ॥
जिनि बिन्दु नहिं साधी से धरमि न धावहि ।
जिनि बिन्दु नहिं साधी से अंत पछुतावहि ॥
जिनि बिन्दु नहिं साधी से स्वान[३] ज्यों जूठे ।
जिनि बिन्दु नहिं साधी से पावक मँझ लूठे[४] ॥

(१) धरती में पड़ता है अर्थात् मट्टी में बरबाद हो जाता है। (२) परस्त्रियों को ढूँढ़ता फिरता है। (३) कुत्तों की न्याईं विषई सहचारी विषय व्यसनी स्त्रियों की जूठन खाता फिरता है। (४) अग्नि में लूहे जाते हैं भाव नरकाग्नि में झुलसे जाते हैं।

जिनि बिन्दु नहिं साधी से फिरहिं मुँह काले ।
बिन्दु कै सादि[1] जीअ नरक महिं घाले ॥
बिन्दु कै सादि होय रहिया दिवाना ।
नानक बिन्दु खोय कै पछोताना ॥४९॥

बिन्दु चीने का कैसा स्वाद । बिन्दु चीनै पेखै बिस्माद ॥
बिन्दु चीने के लच्छण कौन । बिन्दु चीने सूझै सभ भवन ॥
बिन्दु चीने का क्या परकार[2] । बिन्दु चीने तरै संसार ॥
बिन्दु चीने तिस सभ आसान । बिन्दु चीने सो रहे निरबान ॥
बिन्दु चीनै तिस सभ मिति आवै । बिन्दु चीने तिस रत्न प्रगटावै ॥
रत्न राखिया बिन्दु के साथ । नानक जिनि बिन्दु चीन्या तिस चढ़्या हाथ ॥५०॥
बिन्दु की इह मिति सुनहु रे भाई । जिनि बिन्दु चीन्या तिन रत्न मिति पाई ॥
बिन्दु की जोति माथे महिं आवै । माथे माहिं चमक अगमि दिखावै ॥
अचरज कौ चीनै अचरज जब होय । तत्त कौ चीनै तत्तदर्सी होय ॥
ब्रह्म कौ चीनै ब्रह्मही होय । जोग कौ चीनै एहु जोगी होय ॥
विष्णु कौ चीनै सो वैष्नव होय । तप कौ चीनै सो तपा होय ॥
एते तत्त कौ जो कोइ बूझै । नानक वा के चरन लगि सीझै[3] ॥५१॥
बीनी ध्यान जब इहु मन जाई । तन महि बीनी कर्म कमाई ॥
बीनी संजम जब मनु जाता । ध्यान धार सभ ब्रह्म पछाता ॥
बीनी ध्यान सभ जोत पछानी । बीनी ध्यान धरै जन ध्यानी ॥
बीनी महि सभ जोत दिखाई । तउ नानक बीनी सिऊँ धुनि लाई ॥५२॥
त्रिकुटा ध्यान तीन गुन त्यागै । चौथे पद कौ जन बैरागै ॥
तीन रहन की रहत त्यागी । जब त्रिकुटा ध्यान धरया बैरागी ॥
राजस तामस सातक तजै । हरि जन शब्द अनाहद भजै ॥
अनहद रचिआ अवरु नहीं जानहि । जब त्रिकुटा माहि चंदोआ तानहि ॥५३॥
उन्मन ध्यानु जन उन सँगि राता । नानक उन बिन जन मनि न कहता ॥
ब्रह्म ध्यान जन महि जी राता । सभ महि एको ब्रह्म पछाता ॥
आन न जानै एका गही । तब ब्रह्म ध्यान मन होया सही ॥
ब्रह्म होय ब्रह्म रलि जाय । ब्रह्म ध्यान की तब मित पाय ॥
ब्रह्म पछान ब्रह्म को आवै । तउ नानक ब्रह्म ध्यान लगावै ॥५४॥

(१) काम के स्वाद का मारा हुआ । (२) ढंग, तौर । (३) जिज्ञासू जन अपने परमार्थी मनोरथ को उससे प्राप्त कर लेता है, सिद्ध हो जाता है ।

पंच दुष्ट आय अंतरि बैठे । इसहि भुलाय चलहिं होय ऐंठे ॥
अपुने अपुने मारग चलते । इसहि भुलाय बिमारग घलते[१] ॥
नाभि कँवल ते ओअंकार उठाइयै । रसना रसकि रसकि[२] गुन गाइयै ॥
गुन गावै कैसे फल पावै । पंच बिदारै[३] एक एक घर आवै ॥
अमरु[४] एक का नगर फिराया । नाम प्रधान बिचि डेरा पाया ॥
होय एक दृष्टि सभ हाटै । कहु नानक जब ब्रह्म पछातै ॥५५॥
नौ ताली[५] दे दसवाँ खोलिया । तब इस गढ़ महिं एको टोलिया[६] ॥
कहत सुनत भाजरि[७] तब पाई । तब आज्ञा सच्च शब्द की आई ॥
सच्च शब्द अंतरि आय बसिया । सभ दुष्ट लोक नगरी ते नसिया ॥
सभ सिध[८] लोक आय नगर स्थाने । नानक प्रभु के नाम समाने ॥५६॥
नाभ उपजै हिरदे महिं आवै[९] । बंक नाल रनकि गुन गावै ॥
नेत्री ध्यान त्रिकुटी महिं पेखै । सच्च पर्धान होरु सभहि अलेखै ॥
सच सिउँ कोई बिरला जन रातै । सोई शोभा पावै दरि साचै ॥
साच शब्दु जे को बीचारै । नानक सोई सगल कौ तारै ॥५७॥

---

(१) कुराह में भेजते हैं, कुमारग में प्रेरते हैं। (२) जो कामादि पंच जीव पर प्रबल होकर अपने-अपने कार्य को साधते और उसे कुमार्ग में भेजते हैं उन पर जयजीत पाने की युक्ती गुरू महाराज दर्साते हैं कि नाभ कंवल के स्थान से सुरत की अंतरीय धुनि से ॐकार को धुनि जो कि परम रसीली है सहज-सहज प्रेम से बारंबार ऊपर को उठाता रहे। (३) इस प्रकार रसिक मालिक के गुन गाता हुआ पाँचों दुष्टों को फाड़ मारता है और एक असंग मात्र हुआ फिर उस एक आदि पुरुष के लोक में जा पहुँचता है (उप्रंत)। (४) उसी एक को दुहाई (शब्द की प्रगटता द्वारे) इस शरीर नगर में फिरने लगती है। (५) नौ दरवाजे बंद करके अभ्यास की युक्ती द्वारा जब दशम द्वार खुलता है तो उसमें प्रविष्ट होकर। (६) मालिक को खोजता है। (७) जब कहते (स्मर्ण नाम करते) तथा यत्न करि आकाशी शब्द को सुनते उधर को ही इस की दौड़ पाई जाती है तब सचखंड से सत्य शब्द का परवाना इसके पास आता है भाव अपने आप ही यथार्थ रूप में भीतर शब्द खुल जाता है। (८) ऊर्ध मंडलों के स्थानी तथा शुभ बिचार आदि गुण। (९) पृष्ठ ६४ के टिप्पण ५ को स्पष्ट करते हैं, नाभि से स्वाँस उठ कर हृदय में आता है और बंक नाल जो थोड़ा-थोड़ा सा व्यंग मार के शाहरग के साथ मिली हुई स्वाँस की नाड़ी है उसमें से स्वाँस स्वतः ही ऊपर नीचे आता जाता रहता है और उसकी इस लोम प्रति लोम रूपागति से एक प्रकार की अंतरीय रसीली ध्वनी प्रगट होती है जिसका नाम 'हंस' मंत्र अजपा जप है, जिस किसी ने ध्यान दिया इसे अनुभव किया है, सोई गुरू जी शिव नाभ राजा को उपदेश करते हैं कि उधर ध्यान कर परन्तु नेत्रों की दृष्टि का त्रिकुटी के स्थान पर (जहाँ पर कि दृष्टि की तीन धारें एक रूप होती हैं) स्थिर करना जरूरी है। आगे इस अभ्यास की महिमा दो पदों में है।

आव आतश करि बुत[1] कमाया। पौन बचन दे भीतरि पाया ॥
अंतर देखि बहुत लपटाना। बाहर देखन को पछोताना ॥
बाहर बचन देइ भीतरि वरिया[2]। सरपर[3] कौल निकसन का करिया ॥
हाट पटण[4] देखि रह्या हैरान। नानक एह गढ़ छूटै निदान ॥५८॥
उवाहू[5] ठाकुर महिं सभ किछु आन्या। अठसठ तीरथ माहिं समान्या ॥
भार अठारह भीतरि धारे। सप्त दीप नौ खण्ड मँझारे ॥
चौदह भार कर कला बनाई। बिचि आठ लाख की पाल बँधाई ॥
छिअ[6] दरशन की माला पोई। नानक चीनै बिरला कोई ॥५९॥
उत्तर दक्खन अंतरि राखै। पूरब पच्छिम इस महिं भाखै ॥
सप्त समुन्द बीच दरियाउ। बिच चलै जहाज प्रेम की बाउ ॥
प्रेम भगति की बाउ उड़ारे। जाय निरञ्जन[7] कै घाटि उतारे ॥
करि व्यापार साहु घर आये। नानक हरि प्रभु लीये मिलाये ॥६०॥
इस देही महिं रोम उपाया। रोम रोम की सोझी पाया ॥
नौं दरवाजे कहियन भाई। दशवें द्वार टिकन की दाँई[8] ॥
कब पुटपी[9] कब फुरनै आवै। कब नाभि कवल महिं जाय समावै ॥
कब निरंकार का महल पछानै। कहु नानक सोई मिति जानै ॥६१॥
फटक धातु के नेत्र बनाए। अचरज दीसै किछु कह्या न जाए ॥
बहतर[10] करि सूरख बनाया। दश धारन का रक्त बँधाया ॥
अगनत बाल बिचि सही[11] अढ़ाई। कोई इह बिधि बीचारि देइ रे भाई ॥
बीस नारी बीस[12] हैं मरदा। नानक उनको भेद न परदा ॥६२॥
जिह्वा रचती हरि हरि नाम। नेत्री लागै सहजि ध्यान ॥
श्रवणीं सुणीयै हरिजस गीता। हिरदै अघाय जब हरि रस पीता ॥
अधर[13] वाह वाह करते रंग। मस्तकि निवै देखि सभ संग ॥
करि सेवा करनि[14] सुनि हरि जस बानी। सभ देह पवित्त सतसंग समानी ॥
प्रान पिंड का एहो उधार। नानक जो जानै सो पावै पार ॥६३॥

---

(१) शरीर यंत्र, देह का कलबूत। (२) प्रविष्ट हुआ, भीतर घुसा। (३) तत्काल, आज्ञा पहुँचते ही, अवश्य ही। (४) बाजार, नगर। (५) उसी ही। (६) छः। (७) नभ मंडल, सहसदल कमल। (८) जगह, पासा, तर्फ। (९) संपुटवत संकुचित हुआ, कभी सिमट जाता अफुर हो जाता है। (१०) बेहतर, श्रेष्ठ, सर्व का सरदार। (११) प्रसिद्ध। (१२) बीस अंगुली नारी हैं बीस नाखून मरद हैं। (१३) होंठ सदा वाहगुरू के उच्चारण में तत्पर रहैं अथवा गगन मंडल अधर में सुरत वाह-वाह करती रहै। (१४) कर्ण।

पीते[१] कौ मारै सोई जन पूरा। इन्द्री कौ जीतै सोई जन सूरा॥
दृष्टि कौ ठाकि मन कौ समझावै। काम कौ साधि जाय महलि समावै॥
दुविधा कौ त्याग भरम कौ जालै। कूड़ हिरे[२] सच बंधे पालै॥
इह जुगती प्रभु पाये मीता। नानक हरि जस सुनीये नीता॥६४॥
प्रान पिंड का कीया बन्धेज। आब आतश महिं रखिया तेज॥
खाक पौन ले कहगलि[३] कीनी। इस महल की मिहनति चीनी॥
इस महलि महिं पंच बसाये। उन अपने अपने राह चलाये॥
साचि आय अब कीया न्याऊँ। तौ नानक बसिया सुखी गिराऊँ[४]॥६५॥

अनादि अनाहद पुरुष की लीला, विरलै किनै बीचारी॥
आदि तपीसर वृक्ष कहावै, धूप सहै शिरि भारी॥
कहु नानक पंच साधू कलि महिं, बिरले किने बीचारी॥६६॥

पंच दुष्ट जब ते कड़ि[५] बाँधे। जब अपने सतगुरू अराधे॥
गुर प्रसादी नगरी बूठी[६]। हौं मैं दुर्मति त्यागी झूठी॥
पञ्च दुष्ट को दीया निकाला। तौ नानक बसिया नगर सुखाला॥
काम क्रोध काया को खारे[७]। निन्दा उस्तुति लै नरकि उतारे॥
नाँ निंदा न उस्तुति धरै। आठ पहरि हरि सिमरन करै॥
आठ पहिर हरि सिउँ लिव लागी। नानक कहै सोई बड़ भागी॥६७॥
तेरह तीन नौ छः इस माहीं। पन्द्रह सत्त अठारह आहीं॥
तीन चारि चौंसठि बहत्तरि। बारह चौदह बीस निरन्तरि॥
प्रान नगर महिं सभ विधि साजी। कौन राजा कौन महता[८] काजी॥
नामु राजा सचु काजी थीया। नानक तहाँ धरम तपावस[९] कीया॥६८॥
पञ्च तत्त की मढ़ी उसारी। पञ्च मरद[१०] पञ्च दूनी नारी॥
अठसठ हाट इसे गढ़ माहीं। विचि पञ्च मुहाके[११] लूट लै जाहीं॥
गढ़ के राखनहार बहाले। तिन चौंकी दीनी नामु सम्हाले॥
आठ पहर जपि पहरा दीया। नानक पञ्च चोर पकड़ि बँधि लीया॥६९॥
त्रिकुटी संगमि[१२] जो मन मेलै। दीपक जालि धरै बिनु तेलै॥

---

(१) पित्ता। (२) झूठ त्याग देवे। (३) लिपाई। (४) ग्राम, गाँव। (५) करड़े, मजबूत, दृढ़। (६) बसी, आबाद हो गई। (७) गालते हैं। (८) पंजाब (पोठोहार) में एक चलते क्षत्रियों के वंश के लोगों को महता कहते हैं जो महान पुरुष से भाव है। (९) न्याव। (१०) पंच प्राण मरद और दश इन्द्रियाँ स्त्री। (११) मोहनहारे, ठग, लुटेरे। (१२ इड़ा पिंगला सुषमना की संधी के स्थान से यहाँ भाव है, त्रिकुटी और त्रिवेणी यहाँ एक ही मुकाम के सूचक हैं।

जब दशवें द्वार इकेला खेलै। इन बिधि पवन पवन कौ मेलै ॥
बेनी कै ध्यानि जो रहै समाय। तब इस गढ़ की सोझी पाय ॥
आत्मा चीन परात्मै गया। तौ नानक सलल[1] सलल एको भया ॥७०॥

ज्ञान षड़ग ले मन सिउँ लरै। तौ ढाहि[2] भरम पट भीतरि बरै ॥
भीतरि जाते कोई न ठाकै[3] । हरि के चरन बसे मनि जाँकै ॥
सोई संत जिनि भरम गढ़ जीता। घर बाहर तिनि अपना कीता ॥
अंतरि बाहरि महरम होया। नानक गुर किरपा ते यह गढ़ गोया ॥७१॥

मनूआ जीता निर्मल रीति। इन्द्री जीती सतगुर परतीति ॥
जिह्वा जीती हरि गुन गावै। नेत्र जीते भ्रमता ठहरावै ॥
बकता[4] जीतै जब सुषमनि गहो। सभ किछु जीतै जब होवै पद सही ॥
मनु तनु जीता जीता ब्रह्मण्ड। पंचि दुष्ट कीने खण्ड खण्ड ॥
राजे महते गढ़ के सभ जीते। नानक सतगुर की परतीते ॥७२॥

मुख दीया हरि नाम जपन कौ। होंठ दिये वाह वाह करन कौ ॥
दंत दीये मुख कँवल बिगसन कौ। रसना कीनी राम राम रसन कौ[5] ॥
कंठ दिया मुख ग्रास ग्रासन कौ ॥
बंकनाल सभ सहजि समाय। नानक पेट दीया नाड़ी[6] की जाय ॥७३॥

इड़ा पिंगला नाड़ी कीआ। सुषमन के घर जाय समीआ ॥
पट दल सोधै चहुँ के माँझ। दुहँ त्रिहँ मिल कीनी इक साँझ ॥
दल अंगल ते भया निरारा। दुइ दस मैं ले कीआ पसारा ॥
तज पसार मनु दसवैं जाई। नानक ता कउ कालु न खाई ॥७४॥
ढाहि भीत[7] कीया मैदान। ऊहां जाय रचिया चौगान ॥

---

(१) जल। (२) गिराय कर। (३) रोकै। (४) बोलनहारा जीव परंतु यहाँ मन से भाव है। (५) राम राम को रसीले रससे रसने के वास्ते। (६) नाड़ियों की जगह पेट में नाभी के नीचे कछू आकार में संपूर्ण नाड़ियों का जाल सभ के भीतर तना हुआ है। इसी को धरणी कला कहते हैं, अपने बल से उलंघ कर बर्त्तने आदि कारणों से यह नाड़ियों का कूच अपनी जगह से हिल जाया करता है, जिसको धरन या नाफ का हट जाना कहते हैं। इससे बड़ा क्लेश होता है। (७) कंध (दीवार) भाव पिंड देश से सुरति खैंच कर त्रिकुटी के मैदान में जाकर स्थिर होता है (खेलता है)।

एहु मन मारि गोइ[1] लए पिंडा। एक पंच सिउँ खेडै खंडा[2] ॥
एक जीता पञ्च हारे भाई। जब चौगान दुगाई[3] दाई ॥
पञ्च हारे एक ही जीता। जौ नानक ढाई भरम की भीता ॥७५॥
भीत ढाहि कै महरम होया। भेद भरम का डेरा खोया ॥
दुहुँ बारी[4] के तपते खोलै। भेद गया बिनशे सभ ओलै ॥
महरम कौ कोई ठाक न पावै। महरम महिल को महली धावै ॥
महरम अपुनै निकट बताया। नानक महरम भरमि जलाया ॥७६॥
जिस विषम कोठड़ी जंदे[5] मारे। बिनु बीजी[6] क्यों खूलहिं ताले ॥
बड़ी बड़ आँखी किछु सूझै नाहीं। राह छाँड़ि औझड़[7] क्यों पाईं ॥
जिन कौ सतगुरु आँखी देई। दगड़ु[8] राह फिरहि जन सेई ॥
राह फिरहिं तिन आँखी दीसै। नानक जाय मिलै जगदीसै ॥७७॥
सूर चाँदना तिस प्रगटावै। जाँ कौ हरि प्रभु आपि दिखावै ॥
तीन[9] दलै चहुँ ऊपरि चरै। तब जगन्नाथ सिउँ बाता करै ॥
भीति ढाहि सभ किया मैदाना। तौ इस गड़ महिं वुह जाय समाना ॥
नानक निर्मल भगति कमावै। जिसु सूर चाँदना नदरी आवै ॥७८॥

(१) गेंद; बाजी-पिंड (नर तन) धारने का फल पा लेता है। (२) पंजाब में एक खेल "लुकनमीची" प्रसिद्ध है, एक बालक दाई बनता है इसी पर खेल का निर्भर होता है। दाई एक लड़के की आँख बन्द करती है बाकी छिपते हैं उप्रांत आँखें छुड़ा कर उन बालकों को वह ढूँढ़ कर पकड़ने का जतन करता है, जो उससे बच कर दाई को हाथ लगा देवे उसको फिर नहीं पकड़ सकता, और वह 'दाई हाथ लाया, थूह थड़ि का पाया' ऐसे दाई का प्रताप गाता है, और बाजी जीत जाता है, परंतु जो बालक बिना स्पर्श किये दाई के पकड़ा जाता है उस पर बाजी की हार होती है और फिर उसी की आँखें दाई बंद करती है, दृष्टान्त में कर्तार (सत्पुरुष) दाई है पाँच शब्द और सुरति इस खेल को खेल रहे हैं सुरति की आँखें ज्ञान विचार की बंद की गई हैं, भाव दृश्य संसार देखने में प्रवृत्त की गई हैं, जब इसको किसी जन्म जन्मांतर के निष्काम पुन्न से छोड़ा जाता है और श्रद्धा भक्ति की दृष्टि इसको मिलती है तो सत्पुरुष स्वरूप सतगुरों से भेद पाकर त्रिकुटी के मैदान पर उन शब्दों की खोज करके ॐकार शब्द को सुरति पकड़ लेती है और पिंड की बाजी को जीत कर आगे के लिये दाई को छूने के योग्य हो जाती है। सिद्धों और गुरु साहेब ने भी यह खेल खेला था। (३) दुहाई देना, ऊँचे गुन गाना। (४) दोनों नेत्र, इनके तखते पलकें हैं। संसारी रीति से इनका खुले होना बंद होना है और सोते या मरते आदमी की आँखों सदृश इनकी दशा होना इनका खुलना है। (५) ताले। (६) चाबी। (७) उजाड़, बियाबान। (८) संकोच रहित, सुतंत्र, मौज से। (९) तीसरा तिल और दो आँखों का या तीन गुनों का स्थान सहसदल इसको ध्यान से नपीड़ (लाँघ) कर इन चारों के ऊपर चढ़ जावे तो त्रिकुटी में जगत के मूल से परिचय होय।

जो पवन पानी की जानै जाति । आतश पवन की समझै भरात ॥
रूख विरख की जात बतावै । जिस अंतरि राखै सो बाहरि जावै ॥
ऐसा बेता[1] को संसारि । इन जाती कौ देइ बीचारि ॥
कौन सूद[2] कौन ब्रह्म[3] कहावै । तौ नानक बिचरि बिचरि उह ध्यावै ॥
गुर[4] कौ खाय सो पापी होय । पिता[5] कौ खाय मरि जनमै सोय ॥
माता[6] ते उपजै तिस कौ खाय । फिरि चौरासी आमहिं पाय ॥
अन्नादि[7] पानी तजि लागहि दूध । तिन कै अंतरि भई कुबूधि ॥
जिसका दूध पीवहि तिस मुई न स्वारहि । नानक फिरि सौंपहि चमिआरहि ॥
दूध पीकै देहि चमिआरा । सोई दरि कहीयै हत्यारा ॥
दूध पीकै करहि हराम । ओहु मूई फिरि माँगहि दाम ॥
चाम गोइ[8] लइ पाइँ हँढावहि[9] । तौ पापी ओइ दोजकि जावहिं ॥
नानक मूढ़ न करहि बीचार । इन कर्मी डूबा संसार ॥७९॥
सोई उबरै होवै ब्रह्मज्ञानी । जिनि मनमहिं काई भ्रांति न आनी ॥
माँऊँ धी[10] नारि सऊँ झरै । सो ब्रह्मज्ञानी किस ते डरै ॥
अनादि[11] पानी का करै बीचार । ब्रह्मज्ञानी का ज्ञान अहार ॥
ब्रह्मज्ञान करि देखि ध्यानु । तौ नानक प्रभ सिउँ जाय समानु ॥८०॥
भ्रांति गनै सो अनादि न खावै । भ्रांति गनै जल निकटि न आवै ॥
भ्रांति गनै सो लवै न वाउ[12] । भ्रांति गनै दुहि पीवै न माउ[13] ॥

---

(१) ज्ञानी, जानहारा। (२) शूद्र। (३) ब्राह्मण। (४) पवन गुरू है इसलिये जो पवन अहार करते हैं पापी हैं। (५) सभ का पिता पानी है जो केवल जलाहारी हो रहते हैं वह पिता को खाते हैं। (६) माता धरती है जो केवल मृत्तिका का ही आहार करते हैं वह माता को खाते हैं अथवा धरती का स्थावर अंश फल फूल आदि में विशेष होता है जो घास पात फल तथा इनके प्रणाम दूध पर ही केवल अपने आपको छोड़ देते हैं अर्थात् मृत्तिकाहारी, फलाहारी, दुग्धाहारी बन बैठत हैं उनको माता के खाने का पाप लगेगा कि चौरासी में धकेले जायँगे, या चौरासी के दुख का शिकार होंगे। (७) भोजन करने योग्य अन्न आदि साधारन आहार। (८) कमाय कर। (९) पहिनते हैं। (१०) मैं मैं करने वाली अहन्ता माता है तथा धीर्य निश्चय बँधाने वाली धी (पुत्री) है, जो इनसे झड़ जावे (इनको त्याग देवे) उसे पाप नहीं। इनसे रहित भये ब्रह्मज्ञानी से यदि कोई अकार्य कार्य भी हो जावे तो उसे बालकवत भय नहीं होता परन्तु हो सच्चा ब्रह्मज्ञानी। (११) अन्नादि। (१२) प्राणायाम के आधार पर रहने वाले योगी भ्रांत हैं। (१३) गाय—दूध का सर्वथा त्याग करने वाले भी भ्रांत हैं—दूध से शरीर दिमाग का वल स्थिर रहता है।

भ्रांति गनै बन फल नहिं खाय[१] । भ्रांति गनै तीरथि नहिं न्हाय ॥
भ्रांति गनै कहू निकटि न आवै । नानक सो दरि जाय समावै ॥८१॥
भ्रांति न गनै अनादि कौ खाई । भ्रांति गनै नहिं मिलीयै भाई ॥
तुटै भ्रांति दरि ठाकै न कोय । तूटि भ्रांति जब, निर्मल होय ॥
सम दिष्टी होय प्रभ कौ पावै । जाँ कौ भरम भेद नहीं आवै ॥
भरम भीति ढाहि इस मन कौ ढोवै[२] । तौ नानक दर की लायक होवै ॥८२॥
होय पवित्त जब इन्द्री बाँधै । रसि कसि[३] त्यागि अंतर कौ साधै ॥
डोलनि चित्त न देई काहूँ । प्रेम भगति रसु पावै ताहूँ ॥
नींद निवारै तारी[४] लावै । जब मूल ज्ञान का दिष्टी आवै ॥
ब्रह्मज्ञान जब आवै दिष्टि । नानक ताँ कौ पूजै सृष्टि ॥८३॥
ब्रह्मज्ञान जब अंतरि आया । उह जैसा जल महिं बिंब[५] समाया ॥
होय रेनु धरनी रलि गया[६] । जीवति मूआ फिरि जूनि न पया ॥
अटल पिंड फिरि धरनि[७] न पाई । जब ऐसी ब्रह्म दिष्टि होय आई ॥
भरम न आने एका गही । तौ नानक ब्रह्मज्ञानी सही ॥८४॥
उह मन कैसा जो प्रभु कौ पावै । जब इहु मरै उत[८] जाय समावै ॥
उत समाय तौ प्रभु कौ मिलै । उत मनु मिलत सभ दुबिधा जलै ॥
दुबिधा जाय तौ उह मन आवै । एकहि राता[९] कतहि न धावै ॥
इस मन ते सब भरम जलावै । तौ नानक उत मन जाय समावै ॥८५॥
उह कैसे चरन[१०] जित प्रभु दरि जाउ । उह कौन शब्द जित कतहूँ न धाउ ॥
उह सच शब्द जित कतहूँ न धाइयै । साध चरन गहि प्रभु दरि जाइयै ॥
अपने पग छाँड़ि साध पगि लागै । शब्द प्रीति मन सोया जागै ॥
गुर कै शब्द हरि चरन पछानै । तौ नानक प्रभु जन एक समानै ॥८६॥
उह मनु कैसा जो कथै अकथु । उह मनु कैसा जो उलटै चुनि तथु[११] ॥

---

(१) जो वन फल का अहार मूल से ही त्यागते हैं भ्रांत हैं क्योंकि रक्त की स्थिति फलों के आधार पर है ऐसे ही आगे भाव है। (२) भेंट करे, पेश करे। (३) रस में जकड़ने वाले भोग पदार्थ, राग में कसने वाले विषय भोग। (४, ताड़ी। (५) जल का गोलाकार तरंग जैसे जल से उपजि जल में ही समाय जाता है ऐसे ही जीव पूर्ण ब्रह्मज्ञान भये पर आदि पुरुष में। (६) ऐसी दीनता मन में धारे कि सभ की धूल होकर आपा भाव से रहित भया सर्व की आधारभूत वस्तू निर्मल चेतन कला (धरती) में ही रल जावे। (७) मृत मंडल से भाव है क्योंकि इसमें सभ मर कर धरती में ही लीन हुआ करते हैं। (८) ब्रह्मांडी मन या ब्रह्मलोक के धनी में। (९) रचा हुआ, संलगन। (१०) भाव चाल रहनी या शरण से है। (११) तत्व वस्तु सार, माखन।

उह मनु कैसा जो अगम कौ धावै। उह मनु कैसा जो परम तत्त पावै ॥
उह मनु कैसा जो परम पदु लहै। उह मनु कैसा जे उन्मुनि[1] होइ रहै ॥
उस मन की जो कथा सुनावै। तौ नानक उवा के चरन धिआवै ॥८७॥
ज्ञानी मनूआ कथै अकथु। परम हंस होइ लहै चुण तथु ॥
सुन्न ध्यान होय अगम कौ धावै। तहिं ते रहित सो परम तत्त पावै ॥
जीवत मरै जब परम तत्त लहै। प्रेम की डोरी उन्मुनि होय रहै ॥
इन जुगती इस मन कौ पाये। नानक बिन गुर भरमि भुलाये ॥८८॥
इहु मन भ्रमता कित विधि रहता। क्यों समा करै इहु कहता बकता ॥
बकन कहन ते एहु ठहराय। बिन गुर दीक्षा मन भरमि डुलाय ॥
बिनु गुर डूबै कतहूँ न तरै। बिनु गुर जम कंकर[2] बशि परै ॥
गुरु बिन थाँइ न पाय आधी[3]। नानक गुर बिन उजरै राधी[4] ॥८९॥
गुर बिन लख चौरासी भरमैं। गुर बिन मार मरि फिरि फिर जनमैं ॥
गुर बिन खाजहि बहुत सजाईं। गुर बिन मुशकिल इस जीअ ताईं ॥
गुर बिन बाधा कोइ न छुड़ावै। गुर बिन जठर अग्नि जलि जावै ॥
गुर बिन रे मन कबहुँ न छूटहि। नानक गुर बिन काचेही[5] फूटहि ॥९०॥
गुर कै अंगि मन कौ सुख होय। गुर कै अंगि न पहुँचै[6] कोय ॥
गुर कै अंगि जम कंकर डरै। गुर कै अंगि जन भउजल तरै ॥
गुर कै अंगि रही चौरासी। गुर कै अंगि भये अविनाशी ॥
गुर कै अंगि करहि सभ सेवा। गुर कै अंगि भये जन देवा ॥
गुर कै अंगीकार तरीजै। नानक गुर किरपा ते नामु जपीजै ॥९१॥
गुर किरपा ते मनु बशि आवै। गुर किरपा ते भ्रमता ठहिरावै ॥
गुर किरपा ते गुहज[7] मति जानी। गुर किरपा ते भया सुन्न ध्यानी ॥
गुर किरपा ते बिमल[8] मति पाई। गुर किरपा ते भई शीतलाई[9] ॥
गुर किरपा ते हउँ मैं सभ गई। नानक गुर किरपा ते मति उत्तम भई ॥९२॥

---

(१) उन्मुनी मुद्रा धार कर अंतर लक्ष स्थिर करके दृष्टि निरोध कर रक्खे अथवा ब्रह्मांडी मन में थिर होय रहे, या उलट कर अपने आप में (निज घर में) ही मगन होय रहे। (२) किंकर, सेवक। (३) मन के रोगों में ग्रसित संसारी जीव। (४) राही हुई या हलजोती बोई हुई खेती—भाव, संपूर्ण जप तप तीर्थ दान भजन पाठ आदि गुरुदेव की प्राप्ति बिना सभ अकार्थ ही जायँगे। (५) जो भजन बंदगी आदि कर्म (साधन) गुरु बिना किये जाते हैं पूरे नहीं पड़ते—अधवीच कच्चे ही टूट जाते हैं। (६) गुरु शिष्य की बराबरी कोई नहीं कर सकता। (७) गूढ़ भेद, गुप्त मरस। (८) यहाँ दो भाव सूचन कराये हैं एक तो बिमल या निर्मल बुद्धि, दूसरे बिह्वल अर्थात् दीन भाव संयुक्त बुद्धि। (९) शांति।

गुर किरपा ते साधू नाम परिश्रा । गुर किरपा ते अजरु जरिश्रा ॥
गुर किरपा ते अनहदु समाधा । गुर किरपा ते निरबान पदु पाधा ॥
गुर किरपा ते सम दिष्टी होया । गुर किरपा ते भरम सभ खोया ॥
गुर किरपा ते मेरी तेरी सभ गई । नानक गुर किरपा ते अभय मति[१] लई ॥६३॥

अगम निगम सभ इस मन माहीं । गुर किरपा ते कीमति पाहि ॥
सूक्ष्म अस्थूल इस माहिं समाया । गुर किरपा ते नामु दिष्टाया ॥
नरक सुरग है इस कै अंतरि । कोई जन खोजै गुर कै मंतरि ॥
सोई पिंडी सोई ब्रह्मण्डी । जो किछु खंडी सोई ब्रह्मण्डी ॥
सभ किछु कीश्रा इसही माहीं । नानक मूढ़ बूझ[२] किछु नाहीं ॥६४॥
कौन ठौर जित मनूश्रा बसै । अहि निशि कवलै वांगु[३] बिनसै ॥
बिगसि बिगसि जब मानै रलीश्रा । बिगसि रहिया भँवर ज्यों कलीश्रा ॥
डगमग करै भँवर की न्याईं । उस करनहार प्रभ कला बनाई ॥
करि अचरज पिंड परगासिश्रा । नानक ता महिं मनूश्रा बासिश्रा ॥६५॥
इस मन कौ सभ रंग बनाइ । प्रथमे दूध पीया मनि चाइ ॥
चार मास दूध मुख पीश्रा । आस अंदेश अवर नहीं कीश्रा ॥
जब माँगै तब दूध ही माँगै । होइ बाल ब्रह्म मति लागै ॥
जब सम दिष्टी तब होय श्रयाना[४] । भई बुद्धि तब भरमि भुलाना ॥
चार मास रहिश्रा बिसमादि । नानक इहु मन लागा अनस्वादि ॥६६॥
दूजै महलि हउँ मेरा करै । अहि निशि हउँ मैं खपि खपि मरै ॥
मैं मतिवंत मैं ही अति ज्ञानी । मैं वेता मैं ही अति ध्यानी ॥
मैं चतुर सियाणा मैं ही अति शूरा । पूरन सारु न कबहूँ ऊरा[५] ॥
आपस ऊपरि करत गुमाना । नानक दूजे महलि एहु भरम भुलाना ॥६७॥
तीजै महलि कुटुंब सिऊँ राता । अहि निशि माया कौ बिल्लाता[६] ॥
माया के सँगि रहत बिसारी । माया लपट रहिश्रा जूश्रारी ॥
सुत बनिता कै मोहि लुभाया । आठ पहर महिं चित्त[७] न आया ॥६८॥
करत उपाय कुटुँब कै कारनि । करि अखेड[८] लगा एहु हारनि ॥

---

(१) अनुभव, निरभय ज्ञान । (२) सोझी, ज्ञान, पता । (३) कवल की न्याईं, कवलवत् । (४) बालकवत राग दोष रहित । (५) ऊना, अपूर्ण । (६) बिलाप करता । (७) याद, स्मरण । (८) जो खेडने योग्य नहीं ऐसी खेड (विषय भोग) तथा सर्वथा संसारी प्रवृत्ति में मगन रहना ।

तीजै महलि अनखेडि डुलाया । नानक रहिआ हारि जब चित्तु न आया ॥
चउथे महलि निकट भया मरना । कंपै देहु रहे हारि चरना ॥
घसि मिस[१] नेत्र न किसै पछानै । बोलत षासु[२] शबदु नहीं आनै ॥
जब बोलै तब स्वाद न कोई । चउथे महलि ऐसी मति होई ॥
सुत बनिता सभ को संगावै[३] । मीत कुटँब कोई निकट न आवै ॥
कहु नानक जब मनु बिरधाना । जब चौथे महलि महिं जाय समाना ॥९९॥
चार महलि की कथा सुनाई । हित चित लाय सुनहु जन भाई ॥
चहुमहिला महिं एहु बिस्थारा । कोट मध्ये को इस ते निआरा ॥
इन ते निआरा आपि अजोनी । सभ उस माँहि[४] जो उदोत उपनी ॥
उन ते निआरा दीसै न कोई । सभ रचना उनहीं महिं होई ॥
चारि महलि महिं एहु बरतंतु । नानक बूझै कोई अनुभै संत ॥१००॥

बारीआ चलीआ

चहुँ बारी की कथा सुनीजै । जिस मनि बसै सोई जनु भीजै[५] ॥
कौन कौन बारी के नाँऊ । बारी बारी की ठौर बताउ ॥
चहुँ बारे के तखते मारै । जिस की किरपा तिसहि उघारै ॥
चहुँ बारी महिं हरि जस गाया । अनुभै नाम दानु जन पाया ॥
चारि महलु बारी सभ जानी । नानक कोटि मध्ये कोई जन ज्ञानी[६] ॥१०१॥
प्रथमे सुरति की खूली बारी । करि किरपा गुर सहजि उघारी[७] ॥
सुरति गही आत्म जब भीना । सुरति गही जब मंदर चीना ॥
सुरति गही जब कीआ बिबेकु । सुरति गही जब जानिआ एकु ॥
सुरति गही जब सतगुर जाना । सुरति गही जब धरिया ध्याना ॥
बूड़त नरक सबै बिधि पाई । तब सर्ब सुरति बारी खोलाई ॥
सुरति बारी के तपते[८] खोले । तब नानक बितसे सगले ओले[९] ॥१०२॥
दूजी बारी रहत है कीनी । हरि पद रत्ता करि मति हीनी[१०] ॥
पदि[११] कहिआ सोई दृढ़ कीआ । मन ते त्यागी इह मति बीआ[१२] ॥

---

(१) मंद ज्योती, धुन्ध ग्रसित । (२) युक्ति रहित कच्ची बातें । (३) संकोच करते हैं । (४) जो कुछ भी उत्पन्न हुआ विदित हो रहा है अर्थात् जो कुछ है सभ उसी में है और वोह न्यारा है । (५) द्रवीभूत (प्रसन्न) हो जावे । (६) बारियों को जानने वाला । (७) उघाड़ दी, खोल दी । (८) किवाड़ । (९) ओट । (१०) गरीबी भाव दीनता को धारे है । (११) जिसको चरन कवल अथवा परम पद कहा है । (१२) द्वैत बुद्धि, दुबिधा ।

पदि कहिया सोई मन दृढ़िया। जब रहै अडोल नहीं कब थिड़िया[1] ॥
फिरन[2] घिरन ते जब मनु ठहराना। नानक रहत का कपट[3] खुलाना ॥१०३॥
तीजी बारी दृढ़ता जानी। हित चित लाय दृढ़हि जन ज्ञानी ॥
दृढ़ता दृढ़ी भगति दृढ़ि होई। दृढ़ता दृढ़ी जब सुरति मति होई ॥
दृढ़ता के ऐसे गुन भाई। दृढ़ता गही जब सभ मति पाई ॥
दृढ़ता ते नामु दृढ़ पाए। नानक दृढ़ता ते महलि बुलाए ॥१०४॥
जब धावत निरधारा बारी। निराधार होय रहै निरारी ॥
निराधार होय रहे निरारा। निराधार का ताक उघारा ॥
अधर निधर की तब मिति पाई। जब निराधार बारी खोलाई ॥
खोलि बारी जब अंतरि आया। तउ नानक इहु तन बैराया[4] ॥१०५॥
जब ते चारि बारी जन डीठी[5]। तब अनभै बारी लागी मीठी ॥
चहुँ बारी का मरम जब पाया। तब जन कौ सभ किछु दृष्टी आया ॥
जब जाय हरि जन महलि समाना। तब प्रेम भगति मिलिआ षजाना ॥
मुक्ति बैकुंठ का मिलिआ सिरपाउ। नानक चहुँ बारी की इही गुनाउ ॥१०६॥

॥ दूसरा अध्याय नाड़ी आदि का सम्पूर्ण हुआ ॥
॥ सतगुर प्रसादि ॥

॥ १ ॐ सतगुर प्रसादि ॥
॥ राग मारू महला १ ॥

आगे पंच तत्त का पूछना, सप्तदीप, सप्तसमुंद, सप्तपर्बत, नौखंड, चौदह भवन, अठारह भार, देही का बृत्तांत ॥

॥ श्लोक ॥

इकंति पूछत तेरा जन सुआमी, ब्रह्म ज्ञान के लच्छण देहु।
पिंड ब्रह्मण्ड कीतो[6] उत्पन्न, कथा सुनावहु मो कउ एहु ॥
ना किछु किछु करि देखाया, हरष सोग का बाँधिया देहु।
करि मिहनत कलबूत सवारिया, मस्तक कर धरिया कर नेहु।
नानक जिनि किछु रचन रचाया, बहुरंगी मे[7] प्रीतम एहु ॥ १

---

(१) कंपायमान। (२) वासना तरंग उठाने से। (३) किवाड़। (४) सभ का आधारभूत होकर सभ से न्यारा हो जाता है (पुष्प सुगंधीवत) तात्पर्य सभ में सभ का रूप होकर भी जो सभ से न्यारा रहनेहारा है उसमें अभेद हो जाता है—उस काल में इसको तन से इस प्रकार बावरता हो जाती है जैसे मस्ताने (कमले) को अपने शरीर की बेसुधि। (५) देखी। (६) किया। (७) मेरा।

प्रथमै आप कि कीआ तेज। वाइ मध्ये रखिआ वंधेज॥
अकाश कला करि धरिआ भाई। जब पंच तत्त की कला बनाई॥
ऐसा ब्रह्म विचारै कोय। जाँकै अंतरि भरमु न होय॥
ब्रह्म ब्रह्म जब सभ महिं जानिआ। जिनि पंच तत्त का मरम पिछानिआ॥
कहु नानक एहु ब्रह्म बीचार। जिस मनि वसै सोई जन सार॥ २॥
पृथमै[1] आप दुतिआ करि तेज। त्रितीया कीआ बाय बंधेज॥
अकाश चतुरथो तत्त बनाया। तत्त तत्त कर इसहि बताया॥
आप तेज बाय पृथमि अकाश। पंच तत्त का कीआ परगास॥
पंच तत्त मनु के मधि कहे। नानक हुकमी चलै हुकमी वहि रहे॥ ३॥
अवगत[2] ते उत्पन्निआ आकाश। आकाश ते उत्पन्नियं बाय प्रगास॥
वायू ते उत्पन्नियं तेजु। तेज ते उत्पन्नियं तोयं प्रगटेजु॥
चहुँ तत्त की उत्पन्न कही। नानक प्रान पिंड जब होया सही॥ ४॥
पंच तत्त के बरन[3] कोइ कहै। उवा के चरन नानक जन गहै॥
अपु का बरन कहै को कैसा। जो चीनै सो उसही जैसा॥
उवा का बरन कौन बिधि जापै। आकाश का बरन कित शब्द पछापै॥
पंच तत्तु के बरन बतावै। नानक उवा के चरन ध्यावै॥ ५॥
कोई इन तत्ताँ के बली[4] बतावै। कौन बली ते कौन प्रगटावै॥
तोय[5] बली ते होवै तेज[6]। तेज बली ते बाय बंधेज॥
तेज बली ते हुआ आकाश। बाय बली ते अवगति प्रगास॥
पिंड ब्रह्मण्ड का कीआ बीचार। नानक तिस जन कौ नमसकार॥ ६॥
पंच तत्त के रँग जब थापे। पिंगला[7] पृथ्मी सीता[8] आपे॥

---

(१) पृथ्वी। (२) जब सहसदल कमल में सुरति पहुँचती है तो प्रथम ही नीलम रंग का महा तेजोमई गोलाकार सा प्रकाशित मंडल दृष्ट आता है वास्तव में आकाश उसका नाम है और यह स्थूल आकाश उसी से प्रगट हुआ है; महा आकाश या अवगत उसी का नाम है। (३) बरन नाम रंग का भी है और बरन नाम अक्षर का भी है। रंग तो तत्वों के आगे कहेंगे इस कारण यहाँ अक्षरों के विषय में प्रश्न है सो पाँचों तत्वों के लं वं यं रं हं यह पाँच बीज अक्षर हैं। लं पृथ्वी का बीज चतुर्कोण स्वर्ण के समान प्रकाशमान सुगंधी का आधार है। वं जल तत्त का बीज अर्द्ध चंद्र के आकार समान है। रं अगनी तत्व का बीज रक्त वर्ण तिकोण स्वरूप है। यं वायू का बीज गोलाकार श्याम रंगवान है। हं आकाश का बीज अधिक क्रांतिवान अव्यक्त स्वरूप है। सहसदल कमल में कदाचित् और कदाचित त्रिकुटी के स्थान पर भी यह स्वरूप भिन्न-भिन्न या सम काल दृष्ट आया करते हैं। (४) शक्ति। (५) जल, पानी। (६) अग्नि। (७) पीला रंग पृथ्वी का। (८) श्वेत (सफेद) रंग जल।

रत्ता तेज नीली है बाय[1] । काल[2] आकाश की कला रहाय ॥
पंच तत्त के रंग बताए । नानक हरि प्रभु आप जनाए ॥ ७ ॥

पंच तत्त के स्वाद हहिं कैसे । जिन चाखे तिनि बरने ऐसे ॥
मीठी पृथ्मी मौला[3] आपि । तीखा तेज महा अचाख ॥
खाटी बाय कड़ूआ आकाश । पंच तत्त का कीआ प्रगास ॥
अपने अपने स्वाद बताइ । नानक गुर किरपा ते बीचार सुनाइ ॥ ८ ॥

पंच तत्त के घर कोई कहै । आत्म चीनि परात्मा लहै ॥
पृथ्मे का घर कलेजा कीआ । अप का घर फीफ[4] सुदीआ ॥
तेज का घर कीआ है तिली । बाय नाभि महिं सहजे मिली ॥
आकाश का घर कीआ है पीता । नानक पंच तत्त का मरम सभ लीता ॥ ९ ॥

पंच तत्त के द्वार कहीजै । मैगल[5] मनूआ सहज पतीजै ॥
पृथ्मै द्वार कीआ मुख मीता । अप का द्वार लंबिका[6] कीता ॥
तेज का द्वार कीआ है छछू[7] । बाय का द्वार नासिका रछू ॥
आकाश का द्वार श्रवण हहि राखे । नानक गुर किरपा ते लाखे ॥ १० ॥

पंच तत्त के तत्त बनाए । करि किरपा सतगुरू जनाए ॥
पृथ्मै तत्त धरिआ है पिण्ड । अप का तत्त कीआ जब बिन्दु ॥
तेज का तत्त अगनि[8] है करी । बाय का तत्त प्रान देह धरी ॥
आकाश का तत्त लोहू है कीना । नानक तत्त चीनिआ जब तत[9] लीना ॥ ११ ॥

पञ्च तत्त के देउ कहै जे कोई । उवाका नाउँ बतावै तिसकी गति होई ॥
पृथ्मे का देवता ब्रह्मा छमा रूपी । आकाश का देवता चंद्रमा शीत रूपी ॥

---

(१) वायू नीली भी और हरे रंग की भी है वास्तव में तो यह हरे रंग की ही है परंतु इसमें आकाश के गुण का अंश प्रविष्ट होता है जिसके मिलने से नीला रंग इसमें भान हो आता है । गुरू साहब ने उसकी प्रथम अवस्था ही बतलाई है । (२) काला । (३) सभ प्रतियों में मौला शब्द है परंतु मौला के अर्थ प्रकर्ण से संबंध नहीं खाते इस कारण जल का स्वाद दर्शाया जाता है । इसका स्वाद खारा होता है जो मधुरता इसमें अनुभव होती है सो पृथ्वी की है नहीं तो जल का प्रणाम खारी न होवे, जो जैसी वस्तु होती है उसका प्रणाम पूर्व का साही हुआ करता है परंतु जल का प्रणाम अंत में खारा होता है जिससे अनुमान होता है कि ऐसा सत्य ही है । और मल भी सभ किसी का निवित करता है जो कि खारी वस्तु का ही धर्म है । (४) फेफड़ा । (५) हाथी । (६) तालू । (७) चछू , नेत्र । (८) जठरागनि । (९) सभ स्थूल सूक्ष्म आदि तत्तों का तत्त रूप परम तत्व ।

तेज का देवता सूर्य तमरूपी[1] । बायका देवता महादेउ नादरूपी ॥
आप का देवता निरंजन अतीत रूपी ॥
एते तत्त की एती जानी । नानक गुरमुख मथि सहजि बखानी ॥१२॥
पंच तत्त के पचीस गुन राखे । गुर किरपा ते किनै बिरलै लाखे ॥
जाँ कौ अगम आपि जानाया । अगम निगम सभ जनहि दिखाया ॥
अगम निगम की सभै सुनाई । नानक इह मति प्रगटी आई ॥१३॥
अस्ती[2] मास तुच लोम है नारी । लच्छ चौरासी है उवा की वारी ॥
सगल पृथ्मी पंच तत्त ते कीनी । ब्रह्म ज्ञानी ध्यान धरि चीनी ॥
सवा घड़ा रक्त जब धरी । नौ सै नारि की पुतली करी ॥
सप्त दीप नौ खंड बिचि धारै । नानक बिरलै किनै बीचारै ॥१४॥
आप के गुण कहहु हो स्वामी । रहै निआरा अंतरिजामी ॥
नामु दानु इस्नानु न तजै । इत सरंजामि[3] गोबिंद कौ भजै ॥
ब्रह्मज्ञान भखै[4] दिन राती । आपे ही अपनी जुगति पछाती ॥
आपेही अपने करम सुनाए । नानक आपे गुण बीचारि दिखाए ॥१५॥
तेज के गुन पंच हहिं भाई । छुधा निद्रा तृषा इस बाई ॥
आलस क्रोध आय बसहि शरीरा । तेज के गुन पंचि सबीरा[5] ॥
तेज सबीरा कीआ पचरंग । पञ्च क्रोध बसहि इक संग ॥
ब्रह्मज्ञान ते पञ्च गुण साधे । नानक पूरै गुरू अराधे ॥१६॥
बाय के गुण कथंत देवा । कौन जुगति पाईयै ओइ भेवा ॥
चलन धावन पसरन निरोधन । ना ठहिरावन पञ्च तत्ति बिरोधन ॥
पञ्च गुण बाय के सुनाए । निशदिन चलहि बहनि सुभाए ॥
बाय के गुन सुनहु रे मीता । नानक हरि प्रभ अचरज कीता ॥१७॥
अकाश के गुण कहु हो नाथा । लोभ मोह इच्छ अस्ताथा ॥

---

(१) सूर्य प्रकाश रूप अंधकार का निवर्तक है पर गुरू महाराज उसे तम (अंधकार) रूप कथन करते हैं सो यथार्थ है उसके मंडल में दृष्टी स्थिर करके देखने से श्याम ही दिखाई देता है और जो अधिक धूप को तापे उसका शरीर काला पड़ जाता है, जिससे सूर्य तम रूप सिद्ध है। इसकी उत्पत्ति धुंधूकार से है सो जो जिसका कार्य होता है उसके कारण के धर्म अवश्य उसमें होते हैं। (२) अस्थि। (३) संजम, साधन। (४) भोजन करता रहे, भाव दिन रात उसी से ही अपना काल क्षेप करे। एक प्रति में पाठ "भाखै" भी है जिसका अर्थ यह होगा कि ब्रह्मज्ञान दिन रात कथन करता रहे। (५) समीर नाम पौन का है ॥

लज्या भाय ले जम सम ताही। अकाश के गुन पञ्चि वरताहीं ॥
ब्रह्मज्ञान सो भाखित पञ्चि। ब्रह्मज्ञान मथि इन ते बांचि ॥
अकाश के गुण पञ्च है कथै। नानक गुर किरपा ते प्रान जब मथै ॥१८॥
पञ्च तत्त के गुन पञ्चीसा। विचारि विचारि मथि कीये अद्रीसा ॥
तत्त तत्त की जुगति बताई। जब सतगुर साखी अगमु दिखाई ॥
सतगुर मिलिऐ सभ मिति जानी। नानक सतगुर कौ कुरबानी ॥१९॥
कै गुन पृथ्मी कीनी भाई। कै गुन आप तेज कै बाई ॥
कै गुन अकाश करि कीआ बनाय। पंच गुन के गुन कहहु सुनाय ॥
एक गुन पृथ्मी दुइ गुन आप। तिगुन तेज चौगुनि वाय आकाश ॥
पञ्च गुनाँ के गुन कहै बीचारि। नानक हरि प्रभु कीए स्वारि ॥२०॥
अगै चले चलित्र अनन्ता। पञ्चि गुनाँ का कीआ मथंता ॥
अपके गुन कहहु हो भाई। धावै तेज सोवत है बाई ॥
मैथुन भोग करंत आकाश। इंगुल पिंगुल पौन निवास ॥
द्वादश ऊँगलि सास उलटै बैठत बाय। तीस उँगलि सास उलटै धावति[1] बाय ॥
चौसठि उँगलि सास उलटै। मैथुन भोग करंति बाय ॥
एकिस सास सहस्र छाती। सहस आय सभ एका राती ॥
एक दिन कई बाय सास उसास टूटै। नानक पञ्चि तत्त ते किन बिधि छूटै ॥२१॥
प्रथ्मै प्रान पुरुष जब खेलै। तब पहिलाँ कौन तत्त बटोलै ॥
टोलै अकाश गरजे बाय। चमकै तेज साचि महि पाय ॥
भरमै पृथ्मी शोषै आकाश। माताकीमलबुंद पिता की, दिष्टि में बचामनूआसास[2]
बोलै ध्यान करि ब्रह्म ज्ञान। नानक गुर मिलिआ सभ ब्रह्म पछानु ॥२२॥
पञ्च तत्त जानै जोगिंद्रा। कायाँ की मति नहीं आवै क्या पाई अहि मुंद्रा ॥
एते तत्त इस मन कै माहिं। एकु न चीनहि भरमि पचाहि ॥
अगमु नगरी अगमु थान। कवन वीचारु कथै क्या ज्ञान ॥
प्रान पिंड के अगनत राह। नानक लेत गने सभ साह ॥२३॥

---

(१) सोवति पाठ भी है। (२) माता के खून और पिता के वीर्य रूप जल दृष्टि में बचा रहा मन रूप होकर स्वास के मानिन्द चलायमान रहता है।

सप्त समुंद इस गढ़ महिं कीने। कोट मधे किनै बिरलै चीने ॥
कीआ गड़ाड़ अंत किछु नाहीं। सप्त समुंद उलटि इतु पाहीं ॥
अगम सरि किछु मिति नहीं पाय। सप्त समुंद जिनि लीए छपाय ॥
कौन कौन सागर किह थाँई[1]। बिचार देइ कोइ इस गढ़ माही ॥
कहु नानक एहु देहु बेअंत। जाँका किछु न पाइयै अंत ॥२४॥
लवण समुन्द जब एहु मनु जाई। होय लीन लै अनहद लाई ॥
लिव लागी लंविक सभ बूझी। लवणि समुन्द जाय लीला सूझी ॥
लालु लीआ ले लाली जानी। राड़ि[2] मिटी अनगति हैरानी ॥
अनगति की गति हरिजन पाई। नानक इस गढ़ महिं बिश्रंत समाई ॥२५॥
इचु समुन्द मनु कौ ले दीया। इचु समुन्द इस गढ़ महि कीआ ॥
अम्मृत रस दीआ है जाँकौ। इचु नाम रखिआ है ताँकौ ॥
भया असान अउख[3] सभ खोआ। आँखि बेखि[4] का महाँ रस होआ ॥
कहु नानक प्रभु बेपरवाहु। इस तन का एको पतिशाहु ॥२६॥
सुरा समुन्द कीआ मन माँहि। अगम सुरति[5] गही उह राहि ॥
अगम निगम सभ मन महिं राखी। गुर किरपा ते जानी साची ॥
सुरति शब्द बिचि निर्मल हंसु। उहाँ जाय प्रगटी निर्मल अंशु ॥
सुरति शब्द सभ तिस सर माहिं। इहु घट चीना सभ घटही माहिं ॥
सुरा समुन्द देखि मनु भीना। नानक इहु घट शोधि पतीना[6] ॥२७॥
सरपि बिरतु समुन्द्र चतुर्थ कीआ। प्रान पुरुष[7] करि तन महिं दीआ ॥
सरपि महिं आवै सरपि महिं जाय। इहु मनु सरपि मँहि रहिआ समाय ॥
सरपि[8] निकसै तब दीपक बुझै। तब इस तन कौ किछूअ न सुझै ॥

---

(१) किस २ जगह। (२) झगड़ा लड़ाई। (३) कठिनाई। (४) आँख से देखे का। (५) अगम की खबर। (६ परचा पाया। (७) प्राण रूप होकर जो अंतर्यामी की शक्ति प्राणी मात्र में सभ की स्थिति का कारण हो रही है उसे प्राण पुरुष या सूत्रात्मा कहा जाता है। पूर्ण पुरुष को भी ठेठ भाषा में प्राण पुरुष कह दिया जाता है। (८) जब सुरति बाहर से सिमट कर एकाग्र हो चुकती है परंतु अभी ऊँचे मंडिलों में चढ़ने नहीं लगती उस समय इसको रोम २ में विशेष रसमई स्निग्धता (सिमटाव) का रस साक्षात् प्राप्त होता है जिसे नाम का रस या एकाग्रता का आनंद—कुछ कह लेवें। उसका साक्षात्कार विशेष प्रकार की क्रांति का जनक तथा दिमाग़ी बिचार को बढ़ाने वाला होता है इस कारण उसे सर्पि रूप से गुरू साहेब ने कथन किया है। इसी रस का लेश संसार में सब को परेशान कर रहा है। यद्यपि यह पूर्ण अवस्था के सामने अत्यंत अल्प मात्र है तथापि उत्पत्ति स्थिति संघार का बोजा इसी में ही रहता है। बस—जान—यही ही शरीर में समझ सकते हैं ॥

सरप समुन्द सरपि जाय रहता । तब ते रहिआ बकता कहता ॥
कहु नानक एहु अगम बीचारु । सरपि घृत समुन्द का उर वार न पारु ॥२८॥
दधि समुन्द कीआ है अंतरि । अम्मृत स्वादु कीआ गुर मन्तरि ॥
बिन गुर संत उवा का स्वादु न आवै । गुर किरपा ते प्रगट दिखावै ॥
दधि को तप ले दही जमावै । सुरति शब्द का जावनु पावै ॥
ज्ञान मधाना अहि निशि कथै । दधि समुन्द कौ सहजी मथै ॥
रोल विरोल तत्त मथि लीआ । नानक इस मनु महि एहु सागर कीआ ॥२९॥
क्षीर समुन्द कीआ या माहिं । मनु कीआ बसेरा सहजी ता माहिं ॥
ता महिं सहजि छावनी छाई । क्षीर समुन्दि खरी मिति पाई ॥
खोटा खोर खरा जब भया । क्षीर समुन्द का मारग लह्या ॥
सभ तन मारि खाक होय रहै । तौ नानक क्षीर समुन्द कौ लहै ॥३०॥
जल समुन्द महि शीतल रहै । आन जला कछु निमिष न गहै ॥
सदा शीतल जल माहिं समाना । जल ते निकसि जलि कीआ पिआना ॥
शीतल शांति आई जल सागरि । तब मन जाय मिलिआ बैरागरि ॥
अगम[1] ते अगमु अगमु कौ धाया । जब इहु मन शीतल समुंद मँहि न्हाया ॥
सप्त समुन्द कीए जीअ माँहीं । नानक सभ किछु अंतरि आही ॥३१॥
सप्त समुंद की सभ मिति काढ़ी[2] । तन को चीनि सुरति तन वाढ़ी ॥
रोम रोम करि सभ तन सोधिआ । इहु मन पूरे गुर परबोधिआ ॥
पूरे गुर बिन सुधि[3] न होय । (पूरे गुर सूझसि सभ कोय) ॥
साढे तै[4] कर देह बुलाई । सप्त समुन्द कथे या माहीं ॥
मथि मथि देह चीन इह कीनी । नानक गुर किरपा ते इह विधि चीनी ॥३२॥

---

(१) इस जगह तीन अगम मंडल दिखलाये हैं। योगी जन त्रिकुटी तक बस रह जाता है, वाचक ज्ञानी आत्म ज्ञान कथन करने तक, पर जो अगम अनुभव की ठौर है और त्रिकुटी मंडल से ऊपर है इन दोनों की समर्थता से परे है। बहुत से सहज योगाभ्यासी भी यहीं कल्यान के भागी हो आगे चलने से रह जाते हैं, उनके लिये सच खंड दूसरा अगम अस्थान हो जाता है परंतु जो सच्चा अनुरागी है और आगे चल कर मालिक के दर्शन पाता है तो वहीं पर रह जाता है और प्रचार आदि में प्रवृत्त हो, और यत्न छोड़ बैठता है, उसके लिये आदि पुरुष के साथ अभेद हो जाना अगम हो जाता है। इस प्रकार क्रमपूर्वक जो कोई इन तीनों अगमों को उलंघन कर लेवे वोही पूर्ण शीतलता के समुद्र में जल तरंगवत डुबकी मारता है। (२) निकाली अर्थात् प्रगट करदी है। (३) सोझी, खबर। (४) साढ़े तीन हाथ प्रमाण।

आगे दीप चलै है भाई। जो चीनै तिन इह मति पाई॥
जंबू दीप जबि मनु ठहिराय। जंपै लहरि तबि जोग कमाय॥
दीप दीप की सभ मिति आवै। जंपै लहरि तेज मिटि जावै॥
जो जानै इह सुरति निरारी। सोई सूर जिस खूलै तारी॥
जंबू दीप गया जब मनूआ। पंच जीति गए सभ अनूआ॥
आन त्याग एक लपटाना। नानक इहु मन जंबू दीप समाना॥३३॥

पलच्छ दीपि पलकै मनु जाय। तजै पराई सहजि सुभाय॥
सहजि सुभाय निंद सभ तजै। पलकि पलकि हरि सहजी भजै॥
सहजि सहजि हरिके गुन गावै। पलच्छ दीपि मनु जाय समावै॥
पलकि पलकि मनु हरि सिऊँ जोरै। ज्ञान डंड[1] सभ भाँडे फोरै॥
पायकू[2] जारै दुर्मति छानि। इहु घर जारिआ तब जनु पतीआन॥
भया निरारा जब छपरी[3] जारी। नानक पलच्छ दीप मनि तारी॥३४॥

सिलमल दीप सैल मनु करै। रहै उदास मनु मैलि न धरै॥
कबि उत्तरि[4] कबि पच्छम धावै। सिलमल दीप मनु जाय समावै॥
अनेक ध्यान करै मन माहिं। तब मन सिलमल जाय समाहि॥
खंड ब्रह्मण्ड दीप सति भरमै। आवत जात न कितहूँ बिलमै॥
ऐसा दीप कीआ मन माहिं। जित मनु जाहि अहिनिशि भरमाहि॥
इत सैल बिगूता[5] नह कितै ठहरावै। तब मनु सिलमल जाय समावै॥३५॥

---

(१) जब पलच्छ दीप के घाट पर मन पहुँचता है उस समय पल पल में सुरति हरि विषे जोड़ता है अर्थात् हरएक में जिस आदि पुरुष की ज्योति बिराजित है उस विषे गुरुदेवोपदिष्ट ज्ञान युक्ति अभ्यास से सुरति का ऐसा तार बाँधता है कि पिंड ब्रह्मण्ड के अंतर वर्ती संपूर्ण मंडलों से सुरति दूध से मक्खन की भाँति न्यारी हो जाती है, जिसे जीवत मर जाना भी कहा जाता है जब इस प्रकार मन माया की उपाधी रूप पटलों से सुरति निर्मल तथा न्यारी हो जाती है उस समय (२) ज्योति रूप प्रचंड अग्नि सदृश प्रकाश होने से इसका भ्रम दूर हो जाता है अर्थात् परिचा प्राप्त होने से दृढ़ प्रतीत बंध जाती है। (३) इस भाँति जब न्यारा हो जाता है तो छपरी शरीर रूपी छन्न भस्म हो जाती है अर्थात् इसका ज्ञान भीतरि बाहरि से बिस्मर्ण हो जाता है। (४) परन्तु जब वहाँ पलच्छ दीप का पूर्ण प्रकाश अनुभव करके सुरति शाल्मली दीप में प्रविष्ट होता है उस समय कभी तो ज्योति के घाट पर ही स्थिर रहती है और कभी उससे दाईं ओर सरक आती है ऐसे बारंबार सरकने में एक अद्भुत रसदायक तार बँधा करती है जैसा कि जाल बुनने के समय मकड़ी छत्त पर से कभी तार के सहारे दीवार पर जाती है कभी छत्त पर, परंतु सुरति का यह तार चढ़ाई के कारण पूरी शांति का हेतु नहीं होता बल्कि तार टूटने की साधन है। (५) क्योंकि इस सैल से बिगोया हुआ (भरमाया हुआ) स्थिर नहीं रह सक्ता और स्थिरता बिना पूर्ण रस कैसा।

कुशू दीप जब इहु मन जाय। एक प्रधान पश्च कुहि[1] खाय ॥
एको अमर[2] फिरावै नगरी। पिछल त्यागै राचै अगरी[3] ॥
आगल डोबै पाछल तारै। जब मन कुशू दीप महिं वरै ॥
इह मनु आया पदवी नीची। कुशू जाय दिष्टानी ऊँची ॥
ऊँच नीच ते रहै निरारा। तब कुशू दीप जाय कीआ पसारा ॥
कुशू दीप मनु सहज समावै। तौ नानक अगम निगम कौ पावै ॥३६॥

कुरंच दीप जब मनूआ बहै। रंचक हरि जस अंतरि गहै ॥
रंचक भाउ प्रीति करि धावै। कोट जोजन जम निकटि न आवै ॥
चौरासी का मारग तोरै। जे रंचक प्रीति नाम सिउँ जोरै ॥
नरक सुरग ते तब मन बचै। जे रञ्चक प्रीति नाम सिऊँ रचै ॥
राई रंचक जब मन आवै। तब इस मन कौ दुख न संतावै ॥
अह निशि पकड़ै एक अधार। नानक तब कुरञ्च दीप की पकड़ सार ॥३७॥

शाक दीप कौ जब मन जानै। सभ महि एको साक पछानै ॥
एकसि न धावत सभि एका। शाक दीप नही करे बिबेका ॥
एक पौन एकही माटी। सभ पुतरी एकस तनि ठाटी ॥
थाटनहारा एको साँई। एकही रीति एक ते आई ॥
सभ महिं एको एकु पछानै। जब इहु मन शाक दीप महिं आनै ॥
शाक दीप जाय शक्ति गवाई। नानक किआ कथीअै किछु कीम[4] न पाई ॥३८॥

पुहकरि दीप पुहमनु[5] बूझै। डाल पत्र फल अंतरि सूझै ॥
तरवर निरखत इहु मनु मगनाना। मूल फूल फल अंतरि जाना ॥
फल चाखत मनु रहिआ अघाय। तब पुहप दीप की सोझी पाय ॥

---

(१) हाँ इतना मात्र अवश्य होता है कि कुशू दीप का अगला घाट खुल जाता है जहाँ पर कि काम आदि पंच को कोस (मार) कर खा जाता है; (२) एक की ही दुहाई घट रूप नगरी में फिर जाती है, शब्द की घनघोर से पिछली चलायमान रूप तार को सुरति त्याग देती है। (३) और अगली स्थिर दशा को प्राप्त हो जाती है—अगली अर्थात् जो पहिली दशा थी वोह डुबाने वाली भाव नीचे गेरनेवाली होती है और पिछला कुशू दीप अंतरवर्ती अनुभव तारनेवाला अर्थात् ऊपरली चढ़ाई का कारण है। (४) क़ीमत, क़दर। (५) इस स्थान पर एक ऐसा अलौकिक वृक्ष दृष्ट आता है जिसमें रत्नों के फलों के गुच्छे और हीरे मोती के फूल लगे हुए महा प्रदीप्ती का झलका मारते हैं। कभी फलों के आकार में सूर्य और फूलों की जगह रत्न मणीआं लगी दिखाई देती हैं, पारिजात कल्पतरु उसकी एक शाप की भी समता नहीं कर सकता।

मन पुहकर महिं रहिआ समाय। नानक ताँ कै बलि बलि जाय ॥३९॥
सप्त दीप मन माहिं जनाए। बिअंत धनी मिति निमिष न पाए ॥
सप्त दीप सभ मन महिं बाँधे। गुर प्रसादि किनै बिरलै लाधे[1] ॥
तिन लाधे जिस किरपा भई। सप्त दीप की तब मिति पई ॥
सभ मिति जानी सतगुरू जनाई। नानक अगम पिंड की तब मिति पाई ॥४०॥
दीप दीप की सभ मिति जानी। तब मन महिं उपजि रही हैरानी ॥
होय हैरान रहिआ घट देखिआ। अगम पिंड क्या लिखीऐ लेखा ॥
इस देही का क्या बीचारउ। हाड़ नारि क्या रोम समारउ ॥
नौं दरवाजे दशवाँ द्वार। नानक इस प्रानपिंड का अगमु बीचार ॥४१॥
सप्त परबत इस मन महिं कीने। महाँ बिषम महिं जाहि न चीने ॥
उनके नाम बतावै कोई। तिनकी धूड़ि[2] मुक्ति गति होई ॥
कौन कौन परबत अस थापे। नानक गुर किरपा ते जापे ॥४२॥
प्रथमे परबत हिमंचल धरिआ। है भिहोसी[3] जिनि सभु किछु करिआ ॥
होवनहार हिकमत इह कीनी। माटी की क्या पुतरी थीनी ॥
तिस महि अगम बस्तु बनाई। तूँ बिअंत धनी मिति तिलु नहीं पाई ॥
घट महिं परबत सहजि बनाई। नानक कुदरति कही न जाई ॥४३॥
हेमकुंट कीआ है दूजा। घट बिअंत मुख कीआ कूजा ॥
हेमकुंट जाकाँ नाम धरिआ। दूजा परबत घट मैं कर धरिआ ॥
हेमकुंट की बिषड़ी[4] घाटी। निरालंब होय हरि प्रभ थाटी ॥
आपि थाटु[5] कीआ निरंकार। इस पुतरी का वड़ा बिस्थार ॥
बिअंत नगरी अनंत बाजारा। नानक धन्य नगरी जित हरि रहै निरारा ॥४४॥
निखधु परबत कीआ इस माहीं। होय निखधु जब उतघरि जाही ॥
जा गढ़ु जाय निखधु मनु होता। हाथ पछोड़ि[6] गुरू बिन ओह रोता ॥
पाहि समुन्दा की जब गति जानी। तब मनु होय रह्या हैरानी ॥
निखधु समान नाहीं किछु जानै। नानक बिन गुर क्यों समुन्द पछानै ॥४५॥

---

(१) लाभे अर्थात् प्राप्त किये। (२) चरण रज। (३) अब भी मौजूद है और आगे भी रहेगा। (४) विषम घाटी, कठिन मार्ग। (५) रचना, पसारा। (६) हाथ छुड़ा कर, गुरुदेव के आश्रे से रहित हुआ अथवा पश्चात्ताप की दशा में जैसे आदमी सिर को धुनता ऐसे हाथ मारता हुआ।

सुमेर परबत इस मन महिं राखा। सुमति सुभाउ गुर मत्ति पछाता ॥
शीतल शांति सुमति मनि आई। सहजि सुभाय सोधि मिति पाई ॥
सनक सनंद सिउँ मनु मानिआ। तब सुमेर अंतर महिं जानिआ ॥
सुमेर परबत जब अंतरि डीठा। नानक हरि का कीआ जनि लागा मीठा ॥४६॥
नील परबत ले मन महिं धरिआ। विन गुर मंत किसै हथि न चरिआ ॥
अनजानत कैसे को पेखै। नील जाय मनु होआ अलेखै ॥
नीली नजरि न साधू पहिचानै। नरकि जाय नहीं मनु सचि आनै ॥
सचि शब्दि की नहीं मिति आवै। तब नानक इहु मनु नीलि समावै ॥४७॥
सुअंति परबत मनु सहजि समाना। सुअंति परबत घट माहिं दिखाना ॥
सुअंत नखत्र सहज सुख मिलिआ। तब मनु स्वाँती सहजी हिलिया ॥
हिल मिल सुआँती माहिं समाना। सेत फटक का मरमु पछाना ॥
तब मन सुआँती छावनी छाई। आठ पहर अगनत धुनि सुनाई ॥
सुअंतरि परबत इहु मनु आया। नानक मनका मथन सभ पाया ॥४८॥
शृङ्गी परबत इस मन महि कीना। श्री[1] गुरु सत्त शब्दु जबि दीना ॥
सत्ति सत्ति सचि मन महि आया। तब मनु शृङ्गी माहिं समाया ॥
श्री गोपाल[2] मन महि जब जाना। तब मनु श्रीहरि माहिं समाना ॥

---

(१) एक शब्द के कई २ अर्थ होते हैं—श्री नाम लक्ष्मी या माया का ही नहीं किंतु शोभा, प्रदीप्ति, मंगल, कल्याण आदि कई प्रयाय हैं, इस जगह कल्याण सरूप गुरू कहने से सतगुरों का सूचक है। श्री गुरू और सतगुरू कहि देना एकही बात है। (२) गो नाम संसार या इंद्रियों तथा अंधकार का है और पाल नाम पालनेवाले तथा रक्षक का, सो इंद्रियों के अंतरि (शरीर में) वोह श्री आत्मा अर्थात् अविनाशी आत्मा रूप होकर (भाव पिंड में स्थित होकर) पिंड की पालना करता हुआ श्री गोपाल है—इसको मन में जान लेना आत्म ज्ञान कहलाता है। संसार नाम ब्रह्मांड कथन में आजाता है उसका पालक धनी ईश्वर, परमात्मा, ब्रह्म है सो भी परम प्रकाशमान होने से श्री गोपाल है। ऐसे मन में जान लेना ब्रह्म ज्ञान है। अंधकार नाम धुंधूकार अवस्था का है जो ब्रह्मांडी रचना से पूर्व की हालत होती है (हालत नहीं परंतु कथन में हालत है) सो उस धुंधूकार की स्थिती का कारण उसका निज रूप गोपाल है उसकी श्री प्रदीप्ती को जान लेना श्री गोपाल का जानना है—सो आत्म ज्ञान से ब्रह्म ज्ञान और ब्रह्म ज्ञान से उसकी ऊपरली अवस्था का ज्ञान एकही पद में वर्णन करके इसका फल गुरू महाराज कहते हैं कि श्री हरी में समा जाता है। सो हरएक में समाया हुआ हरी पुरी २ में शयन करने वाला पुरुष श्री सरूप, मंगलीक सरूप, कल्यान सरूप, प्रकाश सरूप, सत्त सरूप है—इस निमित्त श्री हरि जो सच खंड का मालिक सत्तपुरुष पूर्वोक्त ज्ञान द्वारे जब ज्यों का त्यों जान लीआ तो फिर उसमें जाननेहारा या इसका ज्ञाता जल में जलवत समा जाता है। यह गुरू साहब के गंभीर कथन का अभिप्राय है।

सारंग होय सारंग कौ मिलै। जाय न बिरथा सफलिउ फलै ॥
जब भृङ्गी महिं जाय समाया। नानक असथिरु तबि फिरनु मिटाया ॥४६॥
सप्त परवत की सब बिधि लाधी। एकु पछाना दुर्मति बाधी ॥
दूजा त्यागि एकु रङ्गु लाया। मरनु पछाता मरमु सभु पाया ॥
सत्ति सत्ति जब मनु महि जानिआ। सप्त परवत का मरमु पछानिआ ॥
मनु तनु सोधिआ सभ इसकै माहिं। नानक गुर किरपा ते नदरी आहि ॥
गुर किरपा ते देहु सभ मथिआ। नानक ऐसा अचरज कथिया ॥५०॥

आगै खंड खंड का कीआ बनाउ। इस देही महिं बिस्रंत समाउ ॥
खंड खंड की जुगति पछानै। सगल खंड की आखि बखानै ॥
खंड खंड के सूर[1] बतावै। ताँकौ अगम दिष्टि होय आवै ॥
अगम निगम की जोति प्रगासी। ताँकौ मिलिआ गुर अबिनाशी ॥
गुरू मिले का इही परतापु। जाँकौ दृष्टि परै सभु आपु ॥
आपु चीनि सभु देहु बीचारिआ। कहु नानक गुरु अनुग्रहु धारिआ ॥५१॥
प्रथमे खंड इला परवत कीआ। ता महिं एकु अवरु नहीं बीआ[2] ॥
एकुही आपि अवरु नहीं दूजा। तहाँ पाप पुन्न नहिं बरतु न पूजा ॥
इस मन महिं इह करी समाई। नौ खंड की तहाँ बनत बनाई ॥
इला परवत खंड की आहै पहिला। ऊहाँ जाय मनु होवै अहिला ॥
अहिलि मलंगु[3] होय उत जाय। पौण अहारी पीवै न खाय ॥
खान पीअन ते रहै निरारा। इला परवत खंड महिं कीआ पसारा ॥
प्रथमे खंडि जाय मनु बसिआ। कहु नानक मनु सहिजी रसिआ ॥५२॥
भेदि खंडि मनु जाय समाना। भेद भरम का घरु बिसराना ॥
भेदाभेद का भेदु पछानै। आन भेद कौ मनु नहीं आनै ॥
भाँदू[4] मन कौ भौ दिखलावै। भेदी कौ ले महलि मिलावै ॥
महलि जाइ मनि सहजु कमाना। जब ते हरि प्रभ मन महिं जाना ॥
आतम चीनि परात्म डीठा। नानक सतगुर ते आत्म पैरीठा[5] ॥५३॥
हरि वर्ष खंड मन माहिं बनाया। हरि हरि वर्षा सदा सवाया ॥

---

(१) स्थानी स्वरूप। (२) दूसरा। (३) अहलि वज्द, सच्चा मस्ताना। (४) भडूआ, भ्रामक, मूर्ख। (५) परमात्मा में प्रविष्ट हो गया, लीन हो गया, पिस कर मिल गया।

भउ पवनु बादरु मनु कीना । सुरति बुंदा गुर ज्ञानु मुखि दीना ॥
बानी किरपा बरषत ही भीजै । जीवत मरै तौ देह न छीजै ॥
देह न छीजै अमरु तब होय । शब्दि सुहागै[1] इहु मनु कोय ॥
हरि हरि बरषा सहजी लाई । सहजे पाकी खरी सवाई ॥
जब मन गाहि लेत खलवारा[2] । छूटी ठाक[3] मूए सिकंदारा[4] ॥
राजे महते सगल बिडारिआ[5] । नानक हरि वर्ष खंड मन सहजि सिधारिआ ॥५४॥
केत्माल खंड कीआ बिचि देही । नेहु न लावै आनि सनेही ॥
करनहार करते नहीं जानै । दूजा भाउ जित कित महिं आनै ॥
एक न बूझै दूजै राता । शीतु न होवै सदही ताता ॥
कित कौ आया करी कमाई । काम क्रोध सिउँ रचि लिव लाई ॥
तब मन की सभ गई कमाई । जब केत्माल महिं करी समाई ॥
बिन प्रभ कितकौ अवर अराधहु । नानक केत्माल जपि छूटहु उपाधहु ॥५५॥
आसर खंडि सभ आस तिआगि । आसा मनसा तजी बैरागि ॥
आसा ना करु काहूँ की मीता । ऐसै आसनि रहत अतीता ॥
आस अंदेशा तमक बिडारी । आसर खंड महिं मारी तारी ॥
करम त्यागि भये निहकरमा । आसर खण्ड जाय बहुर न भरमा ॥
आसर खण्ड की रहत सुनीजै । नानक तब मनु मन्दरु भीजै ॥५६॥
अदोति खण्ड महिं आदि समाना । आदि पुरुष सुन्न शिषरि समाना ॥
निर्मल सिक्ख सुनीजै साधू । अदोत जाय हरि नामु अराधू ॥
नामु अराधि इहु घट बिरोलहु । तब नानक गढ़ महिं निरञ्जन टोलहु ॥५७॥

---

(१) जैसे धरती को हल से खोद कर ऊपर से सुहागा (हेंगा) फेर देते हैं जिससे उसकी उंचाई निचाई निवृत्त हो जाती है, इसी प्रकार नाम स्मर्ण प्रताप से अंतःकरण रूप धरती को शोध करके भजन अर्थात् सत नाम के ध्यान रूप सुहागे से अहंता ममता रूप उंचाई निचाई से साफ कर देवे। परंतु इस मन को कोई (विरला जीवही) इस प्रकार सुहागता है। (२) जब खेती पक कर काटी जाती है तो प्रथम ढेर (खलवाड़े) लगाये जाते हैं उप्रंत उसका कण पांव आदि के तले कुरेंद कर झाड़ लिया जाता है इसी प्रकार जब इस जीव की सहज खेती उग पक जाती है तो संपूर्ण शारीरिक मानसिक बंधनों से सुरति न्यारी हो जाया करती है। न्यारी हुई से फिर अनुभव रूप कण झड़ आता अर्थात् प्रगट होता है। बस जब अनुभव खुला। (३) इसको कोई विघ्न नहीं डाल सकता। (४) सिकदार नाम सरदार का है परंतु यहाँ यह भाव है कि संपूर्ण काम क्रोध आदिक तथा काल की सेना रूप काल समेत मर जाते हैं। (५) और (धोबी के कपड़े को तरह) पटका मारे जाते हैं।

सलीअत[1] खण्ड सिलक[2] सभ खोई। शीतल देह साध की होई॥
माया सिलक मनि सहजि त्यागी। अनदिनु सलक[3] नामै सिउँ लागी॥
सिलकत[4] सिलकत हरि प्रभु जानै। गुर उपदेशु सहजु मनु जानै॥
सलकत सलकत[5] सलिल समाना। नानक प्रभ जन एक समाना॥५८॥

इत आवन खण्ड जाय इत नहीं आवै। उतरि अवघटि सरवरि न्हावै॥
इत की रहत बिसरै (जब) भाई। एत आवन खण्ड की सभ मिति पाई॥
ऊना कबहूँ न होवै हरिजनु। एत आवन खण्ड बेधिआ जाँका मनु॥
मन तन की सभ जुगति पछानी। नानक खण्ड खण्ड की साख बखानी॥५९॥

प्रित मलक खण्ड पलक नहीं लागै। सुन्नि समाय तब अनदिनु[6] जागै॥
पलक पलक धुनि ध्यान लगावै। धुनि धरि हरि निरबाणि समावै॥
अठ[7] रव प्रगटै नावाँ गुहजा। जिस नावाँ प्रगटै सो होवै शोहदा॥
नावाँ खण्ड पल प्रीति (हिं) साजै। नानक ताँमैं ब्रह्म बिराजै॥६०॥

नौं खण्ड की सखा सुनीजै। इहु मन सुलतानु हरि खड़गि पतीजै॥
रारा[8] पोलि ममा बषतरु करि। ज्ञान खड़गि मनुआनिआ जाँ घरि॥

---

(१) सिलहट पाठ भी है। (२) बेड़ी, बंधन। (३) डोरी अथवा सरक करके नाम से लगा रहे। (४) इस प्रकार नाम में सिलक यानी जंजीर की तरह जुड़ता जुड़ता। (५) सरकता सरकता। (६) निरंतर, प्रतिदिन। (७) नीचे तथा ऊपरी पिंड में सचखंड परयंत आठ प्रकार का शब्द सुरति की अंतरमुखता से प्रगट होता है जिसको दृष्टांत से जनाया जाता है परंतु आगे का शब्द दृष्टांत से न जताने योग्य होने से वोह नावाँ शब्द गुह्य (स्वअनुभव गम्य) है। इन शब्दों में शिव नाभ के लाने के लिए इनकी साक्षात्कारता का कारण रूप शब्द राम नाम द्वारे आगे नं० ८ में गुरू साहब का उपदेश दर्शाया है सो ऐसे नाम का उपदेश करके सभ का सारभूत होने से "नाना ख्यान पुरान वेद विधि चौतीस अक्षर माहीं। व्यास विचार कह्यो परमार्थ राम नाम सर नाहीं॥" इस बचन अनुसार इसका आराधन कर। (८) रारे अक्षर की शिर पर जंगी टोपी चढ़ावे और मकार की सीने और कमर पर जंगी वास्कट पहिर कर ज्ञान रूपी खड़ग हाथ में लेकर मनु राजा से जंग करके इसे थकाकर जीता पकड़े—इसमें गुरू साहब राम मंत्र के आराधन को युक्ती बयान करते हैं, "रा" को सिर पर से नीचे लावे और नाभी परयंत लाकर "म" में उपसंहार करे उप्रंत "म" के साथ सुरति को ऊपर लेजाकर "रा" में उपसंहार करे पुनः २ इस प्रकार उतरता चढ़ता रहे परंतु हर एक उतराई चढ़ाई का ज्ञानरूपी खड़ग हाथ से न छोड़े तो मन हार कर अपने हथिआर छोड़ शरनागत हो जाता है। यही मन का मारना है, कोई उसका नाश नहीं करना जो नाश करने का यत्न करते हैं, धोखे में हैं; तारेंगे किसको—बेढंगी प्रवृत्ति जीवों की तथा शिवनाभ की देख कर गुरू महाराज ने प्रथम राम नाम का मंत्र ही यथार्थ रीति से उपदेश किया है।

पंच बिदारि पंचीसाँ मारी। नौं करि हितु[1] षट दूरि बिदारी ॥
खण्ड ब्रह्मण्ड निरखि मनु मानिआ। जब नानक सतगुर शब्द पछानिआ ॥६१॥

खंड निबड़े—आगे भउण चले।

प्रथमे भउण की कथा सुनीजै। बकन कहन ते चमा गहीजै ॥
उतरि अवघटि मँजनु करै। अनहद धुनि महिं शब्द उचरै ॥
अकाश बिमल जलु सहजी पीवै। रस सति पीवै सहजि मनु थीवै[2] ॥
चिहन भवन की साख सुनाई। नानक भवन दीप की तब मिति पाई ॥६२॥

दुतीआ भवन बचिहन सुनाया। गगन निवास समाधि समाया ॥
पारसु परसि परमिति जब जानी। अति अगाध उपजी हैरानी ॥
सतगुरु परचै तामस जाली। मुखु[3] काला करि प्रगटै लाली ॥
बचिहनु भवनु का इह बृत्तंतु। नानक अंतु न पाये धनी बिअंतु ॥६३॥

अधर भवन धर धुन नहीं आवै। तन सरवर सभ गुरमति पावै ॥
हिम घर चीने अग्नि बुझावै। शब्द सोधि गुर निज पदु पावै ॥
चीटी रीति निज महलि समावै। अधर धरन कौ मनहिं हितावै ॥
अधर धरनि की सभ बिधि पाई। नानक ताँते सतगुरू सहाई ॥६४॥

निआधर भवन कवन धरि रहता। बकन कहन ते दम करि बहता ॥
हिम घर जानि शीतल मिति पाई। सेवा सुरति बिभूति चराई ॥
दरशनि पति सहज घरु जाना। निर्मल शब्दि जोगि लपटाना ॥
निआधर भवन की कथा सुनीजै। नानक गुर की सीख पतीजै ॥६५॥

निजल भवन नहिं जल निधि पाई। अमत आतमा नहीं शीतलाई ॥
जे अंतरि ज्ञान होवै पदुसारा। तब जानै तीरथ मजन सारा ॥

---

(१) और इसके प्रभाव से जो नौ प्रकार का शब्द सत्यनाम प्रगट होगा उसका हित चित्त में धारे रहो भाव उनका ध्यान रख और षट शास्त्र के मत को दूर फैंक क्योंकि जब सार ले लिया तो फोग से क्या मतलब। गुरू साहब ने राम नाम रूप साधन उपदेश करके नौ का इशारा प्रथम ही कर दिया है कि कहीं इतने में ही बस न हो जावे और सगुरा हो जाना समझ कर आज कल के लोगों की तरह कृत्य २ हो बैठे। दशवें शब्द का अत्यन्त गुप्त होने के कारण गुरू साहब ने ज़िकर ही नहीं किया। (२) होवै। (३) दोनों जहान की ओर से मुँह काला करे तब परमार्थ की लाली पाई जा सकती है जैसे बाहर सतगुरू की प्रीति के परचे से जहान की ओर से बेपरवाही हो जाती है इसी प्रकार मालक के ध्यान में भीतर बाहर का सभ ज्ञान इसी परचे में भूल जावे तब जाकर घट का पट खुलता और झलक दिखाई पड़ती है।

जब जोति जोति कौ सहजि समावै । तब पारस होय परम पदु पावै ॥
निजल भवन की रहत निआरी । नानक सतगुर प्रगट दिखारी ॥६६॥
निशत भवन आपु सभु सोखै । पंच तत्त सतगुर ते पोखै ॥
तपति निवास कीआ मनि भाई । पंचि निवारि अभय[1] मति पाई ॥
शब्द बचन मन कार कमाई । तब ते मिटी फिरन की धाई ॥
लखिआ न जाई अबिगतु नाथु । नानक गुर मिल अकथह काथु ॥६७॥
भवन नितोट[2] तूँ एक अकेला । तुमरै खेलि न कोई खेला ॥
जल ते उपजै दूरि अब रहता । अनडीठी की रहनी कहता ॥
किसकै निकट दूरि किसु कहीऐ । सभ कै मध्य बाहरि सभ महीऐ ॥
दूरि निकट करि एको जानै । इह गति नानक तबहि पछानै ॥६८॥
नितिष भवन तिषा सोषे भाई । अंतरि निधरा[3] धार चुआई ॥
अमिउ पीआ अमरा पदु पाया । मग डोलन का पंथ चुकाया ॥
साखी सुनत साख सभ जानी । गुहज प्रगट गुर किरपा जानी ॥
सभ जप सभ तप सभ चतुराईआँ । नानक गुर किरपा ते पाईआँ ॥६९॥
निधन भवन धुनि नाहिं पछानी । अपर अपार की कछू न जानी ॥
इह जगु बाँधा बहुती आसा । गुरमुखि खोजि तब भया षलासा ॥
अंतरि प्रगटिआ कउल निराला । तिनि जनु मिलिआ निरंजन बाला ॥
तीन गुनाँ ते रहते निआरे । नानक ते जन सागर तारे ॥७०॥
निजत भवन नाना बिधि जानी । बाहरि हउमैं कहै कहानी ॥
जग जीता 'पर' तिरीआ त्यागी । सगल कुटंब तजि गए बैरागी ॥
अंतरि मुक्त पछानी सारी । बाहरि माया लेप दिखारी ॥
निजत भवन की इह मिति भाई । नानक गुर प्रसादी पाई ॥७१॥
निसन भवन सुनि सचि नीशानी । नींद भूख तजि रचिआ बानी ॥

---

(१) अनुभव । (२) चौदह भवनों में से एक का नाम जिसमें सूरत का तोट यानी घाटा नहीं रहता । (३) जब शुन्य मंडिल में सुरति की तार पूरी-पूरी बंधती है तो कार्तिक शरदपून्याँ के चंद्र से भी अधिक शीतल तथा शांततम (निहायतही शांत) तेजो मंडल से इस प्रकार अमृत की बूंदें बर्षती हैं जिस प्रकार हिमकर ऋतु में बर्षा पड़ने उप्रंत निर्मल खिली हुई चाँदनी रात में ओस की धारा (बिन्दु) बर्षती हैं । जिसको अनुभव करके सुरति अमर हो जाती है, इसी अमृत धारा के रस में सुरति पूर्ण मगन हुई आपाभाव से भी रहित हो जाती है । इसी अवस्था के अनुभव को मानसरोवर का स्नान संतों ने कथन किया है जो केवल स्वअनुभव गम्य है ।

रूड़ा[१] कहऊँ न कहिआ जाई। क्या गुन कथऊँ न कथिआ जाई॥
सूख रजाई दुख बहु कीने। बूझै शब्दु उन सभि सुख चीने॥
जिस अंतरि सची सीख निहाल। नानक सो जन निकटि दयाल॥७२॥
निभवन भवन बिशन नाहिं जाना। शब्द चीन मन सचि पत्याना॥
अंतरि सची सीख निधानै। त्रिभवणु बूझै आपु पछानै॥
अनहद राता अनगत[२] धावै। अनडीठै रचिया कबहूँ न आवै॥
शब्द बीचारि जब इहु मन मथिआ। नानक गुर प्रसादि ऐसा पदु कथिआ॥७३॥
निपति भवन पति जति न बीचारी। काया अगनि मनु कीआ अधारी॥
ज्ञान जनेऊ इस्नान सचु धोती। हरि नाम जपि कीरत मनि होती॥
ऐसा ब्रह्म बीचारहु पाँडे। पञ्च मेल के कहीअहि भाँडे॥
तनु चीना तब भवन बीचारे। नानक गुरमति मेल पिआरे॥७४॥
रचन भवन रचि रचना कीना। रचि मचि रहिआ नाथ न चीना॥
अपनै रचनि पाईयै रचु रचिआ। सभ वशि काल नहीं को बचिआ॥
से बंचे जो हरि पद राते। अंतरि शब्द दिढ़हिं जन साचे॥
रचि रचि रचना सहजि बिगासै। नानक प्रान चीने ते शब्द प्रगासै॥७५॥
गुर प्रसादि भवन बीचारे। आतमा चीनि मथि कीए निनारे॥
आतमा चीनि भवन मिति पाई। जब मन बच क्रम गुर साष सुनाई॥
चीनी देहु तत्त बिरोलिआ। नष शिष ते इहु एक टटोलिआ॥
बिन चीने कैसे मिति पाईयै। नानक देह चीनि सगल गति पाईयै॥७६॥
चौदह भवन घट महि दिष्टाने। अहु ठाकुर महि सगल समाने॥
अगमु घटु बहुतु बिस्थार। कहा न जाई उर वार न पार॥
खण्ड दीप भवन इस माहीं। सप्त समुन्द्र मेरु सप्ताहीं॥
अंतु न पाये आतमा दरीआउ। नानक चौदह भवन का कीआ ध्याउ॥७७॥

खण्ड ब्रह्मण्ड पताल दीप, सप्त समुन्द मझारि।
चौदह भवन इस महिं, कीए अवर अठारह भार॥
चारि कुंट इस महिं धरी, पूर्ब पच्छम सार।
उत्तर दच्छिण माहिं इस, चहुँ दिशि का बृत्तंत॥
इहु बिस्थार है प्रान का, क्या को करै मथंत।
अठसठ हाट द्वार दश, नौ नारी पञ्च चोर॥
नानक प्रानी क्या मथै, बिभ्रंत देह अंध घोर॥७८॥

(१) सुंदर। (२) अविगत यानी ईश्वर की ओर।

चारि[1] ब्रह्म इस मनै माहिं, हरि चारे रत्न अमोल।
चारि समाधी चारि पद, मिलि गुर लहै अगोल[2] ॥
चारि ध्यान चारे धुनी, चारे रंग मामूर[3]।
जिस सतगुर किरपा करै, सो होवै चीनि ठरूर[4] ॥
इह विस्थार इस देह का, बिन सतगुर लहिआ न जाय।
नानक जाँकौ गुर मिलै, सोई जन लहै सुभाय ॥७९॥

बारह चौदह माहि इस, नौ छिअ चउ वीहि चारि।
अठ अठारह बीस तीस, इसही माँहि बीचारि ॥
पन्द्रह दश इकीहि सत्त, मन मैं धरै परोय।
नानक जिस कौ गुर मिलै, सो पिंड चीनि सिद्ध होय ॥८०॥

बारह अठ अरु बीस सत्त, पन्द्रह नौ महिं कीन।
चारि बेद षट शास्त्र, संध्या अरु गायीन[5] ॥
कर्म दूनें तेरस बने, दोय डिउढ़े गुनि रासि।
पौणे दोय दूने मथै, तिसु जन होय बिगासु ॥
सभ किछु साढ़े तीन महिं, बिरला लहै बिचारि।
नानक जिस इह सुधि परी, तिस चीने दश द्वारि ॥८१॥

॥ अध्याय सम्पूर्ण ३ ॥

---

(१) एक ब्रह्म त्रिकुटी में, एक शून्य मण्डल में, एक सचखंड में और एक वोह जो सभ में है और फिर सभ से न्यारा उसका स्वरूप कथन चिंतन से अगोचर है। सचखंड परयंत के मालिक को कुछ न कुछ न्यारा रहि के सुरति अनुभव कर सकती और करती है परंतु सभ के अवधीभूत को तो उसमें अभेद हुए बिना कोई कदाचित् अनुभव ही नहीं कर सकता और जो उसमें जल में जलवत मिला वोही होगया वोही सच्चा ब्रह्मज्ञानी है। उपरोक्त चारों में नभमण्डल के धनी निरंजन को भी यदि शामिल किया जावे तो ब्रह्म पांच हो जाते हैं परंतु गुरू साहब उसे ब्रह्मकोटी में अंगीकार नहीं करते। (२) चारों ओर से गोल अर्थात् व्यापक स्वरूप ब्रह्म। (३) भरपूर। (४) शीतल, शांत। (५) गायत्री।

॥ १ ॐ सतगुर प्रसादि ॥

॥ राग आसामहला ॥

॥ सुन्न महल की कथा, निरंकार का ध्यान, गुरुजीबाणी, प्रान पिंड का मथंत, ध्याउ उन्मुनि का ॥

॥ श्लोक ॥

अगम निगम की कथा को मोहि सुनावै आय।
ज्यों कीआ अगास सुन्न ते नाना रंग बनाय॥
अकल निरञ्जन कला करि, कीना धरनि गगन।
नानक रङ्ग बनाइ कै, रहिया होय मगन॥ १॥

॥ पउड़ी ॥

उन्मुनि सुन्न सुन्न सभ कहीऐ। उन्मुनि हर्ष शोग नहिं कहीऐ॥
उन्मुनि आस अँदेशा न ब्यापै। उन्मुनि वरन चिहनु नहीं जाप्तु॥
उन्मुनि कथा कीरतनु नहीं बानी। उन्मुनि रहता सुन्नि ध्यानी॥
उन्मुनि अपना आपुन जानिआ। नानक उन्मुनि सिउँ मनु मानिआ॥ १॥
उन्मुनि मात पिता नहीं कोई। उन्मुनि सुरति सुधि नहीं लोई॥
उन्मुनि माया ममता न होती। उन्मुनि सुन्न देहुरी होती॥
उन्मुनि ज्ञान ध्यान न बीचारे। उन्मुनि मुक्ति बैकुंठ न तारै॥
उन्मुनि भाउ भगति नहीं काई। नानक उन्मुनि सिउँ बनि आई॥ २॥
उन्मुनि सुन्नि नारायण रहिता। उन्मुनि बकन कहन नहीं कहता॥
उन्मुनि आपना आप न जाना। उन्मुनि महलि अगम समाना॥
उन्मुनि होत न मनसा माई। उन्मुनि सखा मीत नहिं भाई॥
उन्मुनि एको एक इकेला। नानक उन्मुनि रहै सुहेला॥ ३॥
उन्मुनि अस्थावर नहीं जङ्गम। उन्मुनि छाया महिलु बिहंगम॥
उन्मुनि रवि की जोति न धारी। उन्मुनि किरण न शशिहिं स्वारी॥
उन्मुनि निश दिन ना उज्यारा। उन्मुनि एकु न कीआ पसारा॥
उन्मुनि खाणी बाणी नहीं जाणै। नानक उन्मुनि रहत निरबाणै॥ ४॥
उन्मुनि पौन पाणी नहीं कीना। उन्मुनि ओप खप[1] न चीना॥
उन्मुनि खण्ड पताल न सागर। उन्मुनि नीर न मच्छ बैरागर॥
उन्मुनि जीअ जंत नहिं कीने। उन्मुनि अपुने आपु न चीने॥
उन्मुनि मुक्ति बैकुंठ न कीए। नानक उन्मुनि महलि समीए॥ ५॥

---

(१) उत्पत्ति, और प्रलय।

उन्मुनि ब्रह्म न बिश्नु महेशु । उन्मुनि त्रैगुन नाहिं प्रवेशु ॥
उन्मुनि जाति जन्म नहीं कोई । उन्मुनि दूख न ममता होई ॥
उन्मुनि जती सती न बीचारी । उन्मुनि सुन्न महलि धुनि तारी ॥
उन्मुनि घूरम[1] तारी लागी । नानक उन्मुनि मगन बैरागी ॥ ६ ॥
उन्मुनि सिद्ध साधिक[2] नहीं ज्ञानी । उन्मुनि जती सती नहीं ध्यानी ॥
उन्मुनि जोगी जङ्गम नहीं बेता । उन्मुनि एक इकेला होता ॥
उन्मुनि नाथ न होता बीआ । उन्मुनि एकु इकेला थीआ ॥
उन्मुनि कथन सुनन नहीं साजे । नानक उन्मुनि सहजि बिराजै ॥ ७ ॥
उन्मुनि शुचि संजम नहिं होती । चंदन तुलसी माला न प्रोती ॥
गऊ गुआल[3] न गोपी काना । उन्मुनि बंसु न नाद बजाना ॥
उन्मुनि पाषंडु प्रेमु न कीना । उन्मुनि एकंकार अलीना[4] ॥
उन्मुनि एकस सिउँ बनि आई । नानक उन्मुनि गति लखी न जाई ॥ ८ ॥
उन्मुनि कोई न किसै ध्यावै । उन्मुनि जिनसि[5] न धरनि समावै ॥
उन्मुनि वरनु भेष न गहीजै । उन्मुनि कहनि कथनि न भीजै ॥
उन्मुनि देहुरा[6] देउ न कोई । उन्मुनि तट तीरथ नहिं लोई ॥
उन्मुनि होम जग नहीं पूजा । नानक उन्मुनि एकु न दूजा ॥ ९ ॥
उन्मुनि शास्त्र बेद न कीने । उन्मुनि पञ्च तत्त नहीं चीने ॥
उन्मुनि नौं बारह नहीं साधे । उन्मुनि बारह बीस न लाधे ॥
उन्मुनि दश अरु अठ न कीए । उन्मुनि बीस सत्त न मथीए ॥
उन्मुनि चौदह चारि न माने । नानक उन्मुनि सहजि समाने ॥१०॥
उन्मुनि जोग नहीं बैरागु । उन्मुनि संजम दृढ़ तन त्यागु ॥
उन्मुनि शब्द कुशब्द न कोई । उन्मुनि उश्न न शीतल होई ॥
उन्मुनि राज तुंग[7] न फकीरा । उन्मुनि महत्त न राज वजीरा ॥
उन्मुनि ऊँच नीच न कहावै । नानक उन्मुनि महलु बुलावै ॥११॥
उन्मुनि अनहद सिउँ मनु लागा । उन्मुनि सुषमनि सोवनि न जागा ॥
उन्मुनि सूक्ष्म नहीं अस्थूला । उन्मुनि डाल शाष नहीं फूला ॥

---

(१) नशे में मस्त, मखमूर। (२) सिद्धि की प्राप्ती का यत्न करने वाला, जग्यासू, साधना में प्रवृत्त। (३) ग्वाल, अहीर, वृजवासी, कृष्ण जी के सखा। (४) एकंकार में भो लीन नहीं होता क्योंकि उस अवस्था में उसके सिवाय दुतिया कुछ है ही नहीं लीन कौन होवे। (५) जिन्स, क़िस्म। (६) किसी देवता या महात्मा की समाधि, देवल। (७) ऊँचा आदमी, हाकिम, महान, धनाढ्य।

उन्मुनि फुल फल कछूअ न जाना । उन्मुनि दश अठ न प्रगटाना ॥
उन्मुनि उणवंजह[1] कोड़ि न बाँधो । नानक उन्मुनि राते कुछ सुधि न लाधी॥१२॥
उन्मुनि सोलह कोड़ि न कीने । उन्मुनि बारह कोड़ि न चीने ॥
उन्मुनि नौ कोड़ि नहीं साजी । उन्मुनि करी न ओप्त[2] सिउँ बाजी ॥
उन्मुनि आठ लाख नहिं कीने । उन्मुनि कुंट[3] चारि नहिं चीने ॥
उन्मुनि पूरब पच्छम न धारे । नानक उत्तर दखिण नाहिं बीचारे ॥१३॥
उन्मुनि ध्यान लागै निरंकार । तब अंडज जेरज न किछू पसार ॥
उन्मुनि ध्यान न सेतज कीने । उन्मुनि ध्यान न उतभुज चीने ॥
उन्मुनि सहज[4] बाणि न बीचारी । उन्मुनि संजम खुली न तारी ॥
सुपाउ बाणि उन्मुनि नहिं मथी । नानक अतीत बाणि उन्मुनि न कथी ॥१४॥
उन्मुनि अगम निगम नहिं धारे । उन्मुनि सखा सिख्ख न स्वारे ॥
उन्मुनि संजम शील न होता । उन्मुनि ध्यान अनाहद सोता ॥
उन्मुनि अनहद बीनै राता । उन्मुनि अनहद शब्द पछाता ॥
उन्मुनि ध्यान राता निरंकारा । नानक उन्मुनि रहत निरारा ॥१५॥
उन्मुनि बाई[5] तेज न हूआ । उन्मुनि एकंकार न दूआ ॥
एको एकु रहतु निरबाण । सुन्न महलु का एही ध्यान ॥
तब एक इकेला कोई आन न कहता । उन्मुनि ध्यान निराल मु रहता ॥
अपने जीअ की आपे जानै । नानक रहता सुन्न ध्यानै ॥१६॥
सुन्न निरंतरि दीजै बंधु । उडै न हंसला पडै न कंधु ॥
सुन्न गुफा घरि छावन[6] छाया । पड़ै न देहु जोनि नहिं आया ॥
अजरावरु अमरापुरि वासा । सुन्न गुफा महिं भया मवासा ॥
उन्मुनि गंठि न खूलै मन की । नानक उन्मुनि सुरति न तन की ॥१७॥
उन्मुनि खूला छुटकी तारी । उन्मुनि खूला जोति पसारी ॥

---

(१) उणचास (४९) । (२) उत्पत्ति । (३) दिशा । (४) पिंड में नीचे के मण्डलों में परापश्यंती मध्यमा वैषरी चार प्रकार की बाणी रहती हैं । ऊपरले मण्डलों में भी चार प्रकार की बाणी स्थान भेद से रहती हैं । सुषमना का घाट जो सहज घाट है वहाँ पर सहज बाणी का निवास है । त्रिकुटी मंडल में संजम बाणी, सुपाउबाणी सुन्न में और आगे अतीत बाणी सतलोक में रहती है । जिस प्रकार नीचे मण्डलों में एक ही बाणी चार स्वरूप धारण करती है ऐसे ही एक मात्र शब्द शब्दी से प्रगट होकर सहज आदि रूपों में प्रकाशित होता है । वास्तव में तो नीचे के चारों रूप भी उसी के ही हैं । (५) बाईस सुन्नों के धनीओं की ओर इशारा है । (६) छन्न छाकर (घर बाँध कर) बैठ ही जाने से भाव है, दृढ़ तर होकर ध्यान धरने से मतलब है ।

उन्मुनि खोलि धारी जब धरना । उन्मुनि खोलि आकाश टिकाना ॥
उन्मुनि खोलि रवि शशि प्रगटाने । उन्मुनि खोलि त्रै कीए समाने ॥
उन्मुनि खोलि कीआ पसारा । नानक एकसते बिस्थारा ॥१८॥
उन्मुनि खूला नेत उघारे । उन्मुनि संजम खोले प्रभ सारे ॥
उन्मुनि की जब छुटकी डोरी । तब चीना देहु मथी सभ खोरी ॥
उन्मुनि खोलि बताई मनसा । तुम देखति मनु बिगसा सरसा ॥
सुआमी पूछत मनसा माई । किछु कीजै आलमु मनु नानक बिगसाई ॥१९॥
आपहु कीनी मनसा माई । आपहु त्रै गुण पूरि समाई ॥
आपहु पञ्च तत्त ले कीआ । आपहु लोह कलम मथि लीआ ॥
आपहु षट छिअ चारि उपाए । आपहु बीस इकीस कराए ॥
आपहु सभ किछु कीआ बनाय । नानक उन गति लषी न जाय ॥२०॥
ओवंकार उत्पति प्रभ कीनी । ओवंकार रचना मथि लीनी ॥
ओवंकार पसार पसारिआ । राजस तामस सातक माया ॥
ब्रह्मा बिश्नु महेश उपाए । तिन की रचना गनी न जाए ॥
अनेक भांति जल थल महिं जीआ । नानक ओवंकार ते सभ किछु थीआ ॥२१॥

अध्याय चौथा सम्पूर्णं ॥ ४ ॥

॥ १ ॐ सतगुरु प्रसादि ॥

॥ ध्याउ परम तत्त का ॥

॥ राग गौड़ी महला १ ॥

॥ श्लोक ॥

जब मन तन प्रान न कछु कीए कीना नाहिं अकारु ।
नानक उन्मुनि रवि रहिआ सुख सागरु निरंकारु ॥

॥ पउड़ी ॥

तन महिं मनूआ जो ठहिरावै । जम्मण मरण भिशत अरु दोजष ताके निकट न आवै ॥
तिस सूझत है पद निरबान । तजै आपु होय रहै समानु ॥
आतम चीनि परमात्म चीनै । ज्ञान मथनु आत्मा समझावै ॥

नानक इह विधि घट्टु मट्टु[1] सोधै। तबही परम तत्त कौ पावै ॥ १ ॥
जैसे बिनु[2] पग पंख चलै उड़ि अंडा। इह विधि इहु मनु चढ़ै ब्रह्मण्डा ॥
गवन बिहंगम कबहूँ न जासी। भोजन बिना तृप्त अघासी ॥
जैसे मन्दर पैसि रवै[3] वरु नारी। उदास रीति नानक यों निआरी ॥ २ ॥
तहाँ पूजु जहाँ बिमल[4] दिवाला। मन मथि सोधि निरंजनु बाला ॥
तजि आत्म[5] परमात्म पछानै। चीनि लहै केवल निरबानै ॥
अहि निशि रीति जो जोग कमावै। नानक सुन्न महलि को संन्न[6] लगावै ॥ ३ ॥
सुन्न महल महिं जाय समावै। रत्न अमोलकु तदि ही पावै ॥
जहँ केवल निरबानु बसेरा। जोग रीति जनु पहुँचै तेरा ॥
होय अनभै जोगी भउ सभ डारै। नानक ततु लहै घरु सोधि बीचारै ॥ ४ ॥

अठसठि तीरथ काया भीतरि, गगन गंगा मुख काशी।
गुर किरपा निरबान रहैगा, खोजि लहै सो उदासी ॥
नित्य अश्वमेध मुख ब्रह्म अहूतै, लिव लागै अबिनाशी।
पद पंकज जब प्रान रचैगा, मन तन माहिं समाई ॥
कहु नानक पग परसि बिलासै, मिले निरंजन राई ॥ ५ ॥

इहु मनु होय रहै जब शुहदा। अनदिनु जपै सदा पदु गुहजा ॥
मीना होय बिमल जल सोधै। सतगुर ज्ञानि आत्म प्रबोधै ॥
करि मनु तरवरु मति पवन हिलाया।
नानक इहु मनु ढाहि परम पदु पाया ॥ ६ ॥

अचल[7] समान दिड़ै इस मनु को। तिस कालु संतावै निमष न तन को ॥

---

(१) घट रूपी मटका अथवा घट रूपी कोठा मंदिर। (२) जैसे अलल पत्नी का अंडा बिना पाँव और पंखों के आसमान से गिरता २ मार्ग में ही पक फूट कर जैसे आया वैसे ही अपने माता पिता के निकट आकाश में जा पहुँचता है ऐसे ही आदि निरंजन के दर्बार से गिरा हुआ मन भी यदि उलट कर उधर ही को चढ़े तो इसका चलना अर्थात् यत्न कभी निष्फल नहीं जाता। (३) जिस प्रकार मंदिर में प्रविष्ट होकर कामनी अपने पती से रमण करती है और सिवाय उसके किसी और की अभिलाषा नहीं करती सर्वथा सभ से उदास रहती है ऐसे ही अभ्यासी की सुरति भी मालिक के ध्यान में मगन सभ की चिंता फिकर से रहित होनी चाहिए। एक चिंता बिना और सभ चिंता त्यागना ही गृह से उदास रहना है। (४) निर्मल देवस्थान नभपुर सहसदल कमल है जिसका समाचार गुर बाणी में यों दिया है :—"नोल अनोल अगनि इक ठांई। जल निवरी गुर बूझ बूझाई ॥" और पता दिया है कि "तूं देखहिं थापि उथापि दरि बीनाईऔ।" (५) आपा भाव छोड़ करि। (६) सेंध। (७) पर्वत के समान मन को सावधान (स्थिर) करे।

चंद सूर[1] का जो मतु लेई। गुर[2] कौ खाय मनु सहजि रवेई॥
जिस ते उपजिआ फिर तिसहि समावै। नानक इह विधि परम पदु पावै॥ ७॥
अगम अगाध नाथ प्रभु जपने। महलि अमहलि[3] मिलै प्रभ अपने॥
तिस सूझत है पद निरबाना। जो छाड़ि आपि होय रहै हैराना॥
उर वार पार की सभ मिति पावै। नानक इह विधि परम पदु पावै[4]॥ ८॥
जैसे मीन जला[5] तजि बिगसै, ऐसे इहु मनु रहता।
मारगु छाड़ि पड़ै मगि बिखड़ै, तब घरु गुहजा लहता॥

(१) उदय अस्त को प्राप्त होना यह सूरज चाँद का मत है। (२) सो संसारी पदार्थों व्यवहारों के साधक पिंडवर्ती यह दोनों नेत्र जब अपने पच्छमी स्थान सुरति कमल पर अस्त कर दिये जावें तो अहंकार रूप गुरू को मन खा जाता है और सहज रस को भोगता है। (३) अमहल रूप महल में अर्थात् सुरति चढ़ती २ धुर मुकाम में जिसे मुकाम नहीं कहा जा सकता वहाँ पर मालिक कुल (उस) अकाल पुरुष से मिल जाती है। (४) "नानक परम ततु तब पावै" ऐसा पाठ भी है। (५) उसके मिलाप अर्थात् चढ़ाई का प्रकार दर्शाते हैं:—जैसे मछली सरोवर निवास को त्यागि के बरषती हुई पानी की धार को पकड़ि आसमान में चढ़ती अधिक प्रसन्न होती है इसी प्रकार सुरति शब्द को धार के सहारे पिंडवर्ती आकाश में चढ़े तो गुप्त ठौर जो इसका निज घर है उसको प्राप्त हो जावे। पिंड को त्यागि ब्रह्मण्ड में चढ़ने का प्रकार कहते हैं—वर्तमान स्थानों में सुरति के ठहिरने से परा पश्यंती मध्यमा तथा सहज बाणी प्रगटा करती है उनकी धार के सहारे ऊपर लाना होता है। हठ योग का सहज योग अर्थात् सुरति शब्द योग में इतना उपयोग नहीं भी और है भी, है तो केवल इतना कि योग के साधन सर्व दशा में जज्ञासुओं में होने जरूरी हैं। उन यम नियम आदि साधनों में संपूर्ण शुभ साधन आ जाते हैं। प्राणायाम को सहज योग में समीचीन (प्रमाणित) नहीं रक्खा गया परंतु इसी की सूरति सुख साध्य हालत में कीड़ी योग की दशा में पलट ली गई है। चक्रों का ज्ञान मात्र केवल ब्रह्मांड मंडल में सुरति को ले जाने के लिए होता है ना कि कुछ उनमें धारणा ध्यानादि से प्रयोजन। जो 'बंक नाड़ि रसाक गुण गाउ' तथा राम नाम का साधारण उपदेश करते समय गुरू महाराज सुरति शब्द योग के योग्य जिस प्रकार का प्राणायाम होता है बर्णन कर चुके, अब धारणा का उपदेश करने अर्थ चक्र ज्ञान कराते हैं:—जहाँ पर कोई चला जा रहा हो प्रथम उसे वहीं पर खड़ा होने को कहा जाया करता है, खड़ा करने उप्रंत धीर्य से यथार्थ बात की जाती है। कलियुग के संसारी जीव बिशेष करके लिंग-प्रायण हैं इस कारन हठ योग की प्रक्रिया का ध्यान ना रख कर भी चक्र ज्ञान उपदेश में प्रथम षटदल कमल में निवास (धारणा) कहा है। यह षटदल कमल लिंग से ऊपरली मांस गुदी को दबाने से जहाँ पर से पीछे को अधिक दबती है ऐन उसके मुकाबिले पर पिछली तरफ है। प्रथम उस जगह सुरति को ले जावे उसके छः पत्र हैं अर्थात् छः कोणी मांसमयी तेज रूपणी पेशी है वह इंद्री कमल है उस जगह से चारि दल कमल के गुदा चक्र में पलटे वहाँ योगियों के योग को आरंभ भूमी है इसलिए समाधी का कारण है

गुहज महलि महिं मनु मगनाना, तब उलटि कवलु बिगसावै।
नानक होय दासन को दासा, तब परम तत्त कौ पावै ॥ ६ ॥
षट दलि कवल निवासा होय। चहुँ कौ फेरि मिलावै सोय ॥
चहुँ कै बीचि समाधी रहै। तिस ते कालु त्रिभकि[1] डरि रहै ॥
एकही रचै आन नहिं धावै। नानक परम तत्त तब पावै ॥१०॥
अष्ट कवल दल भीतरि बसै। तहाँ श्रीरंगु सहजी बिगसै ॥
सतगुर मिलै गुहज घरु पाईऐ। रत्न जन्म बिरथा न गुवाईऐ ॥
गुर प्रसादि अगम घरि जावै। नानक परम तत्त तब पावै ॥११॥
कवलि कुसमदलि[2] भीतरि जाता। दश अंगुलि कै बीचि समाता ॥
तहाँ द्वादशि रहै अभीचु[3]। इस मनु जन्मु न होवै मीचु ॥
खोजि अधातम आगमि[4] धावै। नानक परम तत्त तब पावै ॥१२॥
षोड़श दल जब चेतै प्रानी। मिलि गये श्रीधर अगम पछानी ॥

फिर नाभी के पिछवाड़ चक्र में सुरति को फेरे उसकी आठ पखड़ियाँ हैं यह दायें बायें किंचित भेद से स्थित दो चक्र हैं दूसरे में दस दल हैं वहाँ सुरति के टिकने में दो प्रकार का प्रकाश होता है। वहाँ का स्थान धारणा से खुल जाने पर हृदय कमल में सुरति लावे जो कि द्वादश दल का कमल है—चक्रों का निवास पिंड में पिछवाड़ में ही है अगली ओर केवल उनकी पीठ होने से गढ़ा मात्र शरीर में दिखाई दिया करता है। हृदय में तीन चक्र हैं परन्तु गुरू महाराज ने (जान बूझ कर) स्पष्ट नहीं किये द्वादश दल के दायें बायें उनका स्थान है वहाँ से फिर कंठ में सुरति को पलटे फिर त्रिवेणी घाट में जहाँ पर इड़ा पिंगला का मेल सुषमना के साथ होता है उसको भी छोड़ कर फिर सुरति आगे सुन्न में जा समाती है—सुन्न की निशानियाँ समझा कर ऊर्धगति बंक नाड़ी द्वारा पिछवाड़ में का धुंधूकार मंडल सूचन कराते हुए भवर गुफा जो कि सच खंड की दर्शनी डेवढ़ी है उसमें सुरति का समाना उपदेश किया है—सुन्न मंडल में तत्त्व ज्ञान की प्राप्ती होती है परन्तु भवर गुफा में पहुँच कर इसे विज्ञान की उपलब्धि होती है—इतने सावस्तर पिंड ब्रह्मण्ड भेद कथन से गुरू साहब ने अगली ओर (पूर्व) से सुरति का पिछवाड़ (पश्चिम) की राह ऊपर चढ़ना निरूपण किया है—सुन्न प्रयंत सभ चढ़ाई सीधी पश्चिमी चढाई है। आगे थोड़ा सा व्यंग खाकर धुंधूकार मंडल की सैर (थोड़ी सी बाईं ओर पिछवाड़ में) करके फिर दक्षिण (दाईं ओर) घाट भवर गुफा का प्रवेश है यही प्रदक्षणा का क्रम चार धाम की यात्रा तथा चौपड़ खेलना आदि कहा है—इन्हीं संकेतों से गुरू जी बारंबार अभ्यास करावेंगे। पूर्ण अभ्यास पर निज घर सच खंड की स्थिती बषशते हैं जो आगे आवेगी। गुरू साहेब का उपदेश हठ योग का नहीं है, भूले हैं वह जो ऐसा समझ कर प्राण संगली के आशा की ओर नहीं झुकते जोकि कुंजी सभ गुर-बाणी की है। (१) सहम कर। (२) नाभिकमल गत दोनों चक्रों में से केले के फलवत् चक्र में ठहिरें। (३) थोड़ा सा खिला हुआ। (४) तीन कमल हृदयगत में से आत्मा की ठौर जिसमें है वोह गुरू से खोज कर अगम को चढ़े।

जरा मरन भउ[1] सगल मिटाना। ज्यों जलु जलही माहिं समाना ॥
पुनरपि जन्म बहुरिं नहीं आवै। नानक परम तत्त तब पावै ॥१३॥
तिरबेनी मनु सहजि नहावै। सुरति हाथ करि मनु पतीआवै ॥
बहुरि न फिर फिर मारगि धावै। सनकादिक सिउँ गोष्टि पावै ॥
तिरबेनी[2] छूटै सुन्नि समावै। नानक परम तत्त तब पावै ॥१४॥
गगन गरजि मनु जोहि अनन्ता। तहँ बिजली चमकै घन बरषंता ॥
तहँ भीजहिं संत अमृत की बानी। गगन नगर की जब मिति जानी ॥
गगन गँभीर नगर दृष्टाया। नानक परम तत्त तब पाया ॥१५॥
बंक नालि के अंतरि जाय। पश्चिम दिशि की सोझी पाय ॥
निझरु झरै जलु पीयै अघाय। तौ भउर गुफा के घाटि समाय ॥
होय मकरंदु[3] कमल लपटाना। नानक परम तत्त तब जाना ॥१६॥
सहज समाधि तबहि मनु जाई। जन्म मरन की चूकी धाई[4] ॥
जरा रोग सुपनै नहीं आवै। सहज सुभाय उपाधि[5] मिटावै ॥
उपजिआ प्रेम प्रभू पहिचाता। नानक ताँ ते परम पदु जाता ॥१७॥
खेलै प्रगट होय निहशंका। जूझै सम्मुखि काटि कलंका ॥
दरशन परसै गुर कै भाय। अखेड[6] खेडै भरमु सभ जाय ॥
नित्य उठि चालै बिषमी बाट। तब नानक तोड़ै अवघट घाट ॥१८॥
अवरनु[7] बरनै निहकरम कौ धावै। असाध साधै अबेध बेधावै ॥
गगन[8] ताला गुर कृपा ते तोड़ै। निःभर भरै अजोड़ कौ जोड़ै ॥
होय बहै बिरधी ते बाला। नानक परम तत्त इह चाला ॥१९॥
गरभि न आवै भरम कौ खावै। चींटी होय कै सागर सुखावै ॥
अकाल होय तत्त माहिं बुडावै। नव खंड जीति पतिशाहु कहावै ॥
उन्मुनि स्थान अदल को दलै। नानक परम तत्त तब रलै ॥२०॥

उलटै कमल[9] छिद्र तल धारै, निहशब्द होय गलताना[10]।
मनु[11] पवनै धावत ही जीतै, तउ मनु मनहि समाना ॥

(१) भ्रम भी पाठ है—"जरा मरनु भ्रमु भागि समान।" (२) "त्रिकुटी" पाठ भी है। (३) भौंरा। (४) दौड़। (५) औरों की ओर से जो सुख दुख मई संतापक अवस्था आया करती है। (६) अभ्यास रूपी अखेड रूप खेल। (७) जिस का वर्णन नहीं किया जा सकता ऐसे अकह पद को भी शिष्यों सत्संगियों को उपदेश कर सकता है। (८) भ्रूचक्र में तीसरा तिल घट का जंदरा (ताला) है। (९) ताला तोड़ने की रीति तथा ताला भेद (तीसरा तिल)। (१०) मगन। (११) ताले का स्थान खोलने की जुगती राम नाम उपदेश में कह दी है।

अंतरि गहै सुरति मुक्ताहल[1], हितु करि मिलै गुसाँई ।
त्रिकुटी संधि[2] नासिका तालक, सुष्मनि जाय समाई ॥
इंगुल पिंगुल पश्चिम धावै, रवि शशि अस्तु बिहाणा ।
नानक गुर किरपा ते जान्याँ, इहु मनु सचि समाना[4] ॥२१॥
सरवर[5] सुन्न बने सहँसदल, भवरगुफा मगनाने ।
अति[6] चित्र साल बनी निज महली, हरि जन तहँ उरझाने ॥
लिसमिस[7] दामिनी रिमझिम बरषै, हसि प्रभु मिलै निरारा ।
कहु नानक जब तत्त बीचारिआ, तब प्रगटिआ भानु उजारा ॥२२॥
अगम अगोचर अलष अपारा, परे ते परे अनन्ता ।
सर्व विश्व महिं जाँ की लीला, रवि रहिआ भगवंता ॥
सभ ते दूरि निकटि सभहूँ ते, सभ अंतरि अलिप्त रहै ।
जहँ पदु निरबान बसै तहिं आपे, नानक विरला खोजि लहै ॥२३॥
जाँकी चेरी मुक्ति सुरगु अगवानी, ऐसा जापु जपीजै ।
जाँकी माया दासी नवनिधि सेवाकारी, ऋद्धि सिद्धि चरन लगीजै ॥
कहु नानक अमरा पद राते, चौथे पदहिं पतीजै ॥२४॥
एक घरि चंद सूर्ज कौ आनै, अर्ध उर्ध मिति पावै ।
तसकर की गति सहजे खोवै, अंतरि ब्रह्म टिकावै ॥
जर नाठी[8] माया पछुतानी, नानक सुन्न समावै ॥२५॥
दीपकु जारि धरै बिनु तेलै, भउर देखि लपटाने ।
इह घट भीतरि जोति प्रगासी, देखि लोइ उरझाने ॥
नानक जोति रली संग जोती, ब्रह्म रूप प्रगटाने ॥२६॥
नौं दर मूँदि काया सम राखै, दसवैं शशि घरि सहजि बसै ।
कोट जन्म के अघ सभ काटै, सुष्मनि मंदरि सहजि रसै ॥
कनक मंदिर रत्न की सिहजा, नानक कँवल प्रगासि हसै[9] ॥२७॥

---

(१) मोती—खुलने की निशानी देकर फल कहा है। (२) नासा मूल त्रिकुटी की संधी का ताला है वहाँ पर से सुषमना घाट में समावै। (३) दृष्टि की धारें पिछवाड़ में जहाँ पर सूरज चाँद (नेत्र) अस्त होते हैं पलटे तो सुन्न सरोवर तथा भँवर गुफा में सहसदल कमल के बीच से होता जा मगन होता है। (४) "साचा परम तत्त पछाना" पाठ भी है। (५) साधारण उपदेश चढ़ाई का करके अब निसंकोच गुप्त रहस्य को भी प्रगट करते हुए शिव नाभ को अभ्यास कराते हैं। (६) सुरत कमल सहस दल की निशानी दी है—(योगी हरिजनों का) सुरति का वही निज महल है। (७) झलक मारने वाली। (८) भाग गई। (९) "लसै" पाठ भी है।

मनूआ अनत जान न देई। बीजु मंतर चीनै मति लेई॥
सभ इंद्री को खोजि बीचारै। तसकर पंच शब्दि संघारै।
सहसा जालि करै सभ छोई। नानक तब अनभै मति होई॥२८॥
शिव शाँति सरोवरि संत समाने[1]। फिरत डुरन के गवन मिटाने॥
आवनु जानु बहुरि न होई। शिव संत सरोवरि न्हावे कोई॥
शिव बिरंचि तिसु दरशन आवहिं। नानक इह गति बिरले पावहि॥२६॥
ब्रह्मा बिस्नु महादेउ गोरख, हारे खोजत बाटा।
संतन वास कीआ है निज घरि, बजरक खुले कपाटा॥
नौं दरि मूँद अनाहद रचिआ[2], लख चौरासी काटा।
नानक हरि जनु हरि मिलि एको, जिउँ निमक मिलै विच आटा॥३०॥
ऊहाँ सर्व सुखा निधि अति बिलास[3] है, अनंत थान सभ ठउरा।
जो जन जाय रहै तहँ शिव होय, ज्यों अली अल[4] पर भउरा॥
भया बिदेह गति पति बदलानो, भई जाति कुल अउरा।
नानक जन को गुर दिखलाई, पार ब्रह्म की ठउरा॥३१॥
जिनि अंतरि जाय निरंतरि देखिआ, अति बिलास निरंकारा।
एक रोम ते जाँके उपजै, सुर सिद्ध दश अवतारा॥
हरि निरखत बुद्धि चितु मगनाना, निरालंब गलताना।
नानक देह तजै ज्यों कुंजै[5], मनु निरबान समाना॥३२॥
हरष देखि मनु नहिं बिगसावै, सोग नहीं मुरझावै।
ज्यों संपै[6] त्यों बिपति पछानै, बेगम महिल[7] लडावै॥
कहु नानक जो परम पदि राता, तिहँ जमु निकटि न आवै॥३३॥
जपु तपु[8] संगि नहीं जनु राचै, सत्त सील न कमावै।

---

(१) "सुषाने" पाठ भी है। (२) संलग्न (ररिआ पाठ भी है अर्थ उचारिआ)। (३) कौतुकी रचना, कैफियत। (४) एक वृत्त जाती है जब मौलता है तो उस पर भौंरा बड़े प्रेम से मगन होता है, भौरी भौरे का नाम भी है। (५) सर्प कुंजवत देह के बंधनों से असंग हो जाता है। (६) संपदा। (७) सच खंड। (८) जप तप आदि जितने साधन हैं किसी के साथ प्रीति नहीं करता केवल अनहद शब्द (सत्यनाम) में ही जुड़ा रहिता है। यहाँ पर हठ योग के यम नियम आदि संपूर्ण अंगों में की प्रवृत्ति भी खंडन कर दी है और एक मात्र अनहद में संलग्न होकर शरीर से नियारा बैरागी हो जाने की महिमा जता कर गोरख आदि ने हठ योग द्वारा चिरजीव हो जाने की जो सिद्धी प्राप्त की उसकी तुच्छता दिखलाई है। प्राणसंगली को हठ योग प्रति पादिक कहने वाले किंचित ध्यान देवें कि किस प्रकार हठ योग खंडन हो रहा है।

अनहद राता भया बिरागी, उस्तति निंद न भावै ॥
अनडीठे[1] सिउँ सहजि पतीना, तब ते भया बिदावै[2] ।
कहु नानक जो अमर पदि राता, अैस अभै पद पावै ॥३४॥
आतम चीनि परातम राता, भया बिदेह निरारा ।
भय को त्यागि अभय पद माता, अगम महलि पसारा ॥
अगम निगम महिं सहजि पतीना, मिति की मति सभ जानी ।
कहु नानक जब देहु बीचारिआ, उपजि रही हैरानी ॥३५॥

अध्याय सम्पूर्ण ॥ ५ ॥

॥ १ ॐ सतगुर प्रसादि ॥

॥ राग आसा महला १ ॥

(प्रानपिंड की मिहनत—कलबूत की मिहनत—प्रानपिंड की उत्पत्ति सुन्न ते हुई—निरंकार का पूछना चहुँ जुगती का भेद—ओंकार का ध्यान)

॥ श्लोक ॥

बरनु चिह्नु नहीं बूझीऐ तीनि गुनाँ ते दूरि ।
नानक कित विधि पाईयै सर्व रहिआ भरपूरि ॥

॥ पउड़ी ॥

सुन्नो सुन्न कहै सभ कोय । सुन्नि ध्यान बैठा प्रभु सोय ॥
सुन्न ध्यान जब रहै इकेला । तब कवणु गुरू कवण कहीऐ चेला ॥
आपि गुरू आपेही चेला । धुन्धूकारि[3] प्रभु रहै अकेला ॥
एकंकारु एकु निरबाणु । देखि कुदरति नानक हैराणु ॥ १ ॥

---

(१) अदृष्ट वस्तु, अलख स्वरूप । (२) अहंता ममता का विषय जो कुछ शरीर तथा उससे विभिन्न स्थूल सूक्ष्म प्रपंच है उक्त अलख स्वरूप में सहज भाव से परच करि अर्थात् मगन होकर बेदावा हो जाता है, भाव उस काल में समूल विस्मरण कर देता है । (३) जब जुगती पूर्वक सुरति अपने स्थान पर स्थिर होकर अनुरागवान हुई तथा बाह्य प्रपंच से वैराग्यवती सहसदल त्रिकुटी आदि की अंतरीव रचना (कौतुक) दर्शन से भी उपराम हो जाती है तो शून्य मंडल को उलंघ करि इस धुंधूकार-मई अवस्था का प्रकाश होता है यद्यपि इसका दृष्टांत पूर्ण तो हमारे पास नहीं है तथापि एंजिन गाड़ी में से भाफ (steam) निकालते समय जिस प्रकार का धूम्र निकलता है इस प्रकार की धूम्राकार मंद मंद अत्यंत सूक्ष्म हिलोर मात्र भान (अर्थात अंतरी दृष्टि गोचर) होती

नाँ तदि धरती नाँ आकाश। नाँ तदि चंद सूर परगास॥
नाँ तदि दिवसु न कीनी राति। नाँ तदि ब्रह्मु[1] न कीनी भ्राँति॥
नाँ तदि शिव शक्ती कछु दूजा। नाँ तदि पाप पुन्न नहिं पूजा॥
एकंकार अकेला रहता। नानक तदहुँ न कोई सुनता न कोई कहता॥ २॥
तेरी कुदरति देखि रहिआ हैरानु। तदहुँ तूँ किछु खाता कि रहता निरवानु॥
तदहुँ तूँ किछु पीता कि रहता तिहाया[2]। तूँ आपिही उपजिआ कि किनहिं उपाया॥
तब क्योंकर बैठा क्योंकरि सोता। जब धरनि अकाश कछू नहिं होता।
तब नौं खण्ड कीए न कीआ पसारा। नानक हरि प्रभु रहे निरारा॥ ३॥
ओअंकार ते परे न ध्यानं[3]। ओअंकार ते परे न ज्ञानं॥
ओअंकार ते परे न सेवा। ओअंकार ते परे न देवा॥
ओअंकार ते परे न पूजा। ओअंकार ते परे न दूजा[4]॥
ओअंकार ते परे न मंत्रं। ओअंकार ते परे न तंत्रं[5]॥ ४॥
ओअंकार ते परे न जापं। ओअंकार ते परे न तापं॥
ओअंकार ते परे न दानं[6]। ओअंकार ते परे न इस्नानं[7]॥

है। बस अपनी झलक सुरति को दिखला कर फिर वोह सुरति को अपने में लपेट लिया करती है, इसी का नाम धुंधूकार है। संपूर्ण स्थूल सूक्ष्म रचना का वास्तविक बीज यही है। (१) पिंड ब्रह्मांडवर्ती संपूर्ण ज्ञान के एक ज्ञान मात्र में अभाव हो जाने से पिंड ब्रह्मांडवर्ती व्यापक ब्रह्म की भी उस समय समाई नहीं रहती, और जब संसार ज्ञान का ही समूल अभाव हो गया तो भ्रांती कहाँ रही वोह भी गई, भाव यह कि ज्ञान अज्ञान दोनों हो (उस अवस्था में) अभाव हो जाते हैं। (२) त्रिषातुर, पिआसा। (३) ध्यान तहाँ पर्यन्त ही रहता है जहाँ तक ध्यान गोचर कोई पदार्थ रहे परंतु यावत ध्यान गोचर वस्तु है सो सभ स्थूल हो चाहे सूक्ष्म ॐकार पद (त्रिकुटी) तक ही रहती है, जब उस मंडल में ॐकार का साक्षात होता है तो आगे समाधि अर्थात् शुन्य की स्थिती आरंभ हो जाती है, आगे ध्यान नहीं रहता। इसी कारण ॐकार से परे ध्यान का न होना कहा है। (४) इसका भाव भी यही है। (५) मंत्र जंत्र आदि साधनों के सिवाय ही मानसिक शक्ति से मोहन मारन उचाटन आदि करने का साधन तंत्र कहलाता है परंतु संपूर्ण तंत्र शास्त्रोक्त बीजों का बीज केवल ॐकार ही है और बिना तंत्र शास्त्रोक्त साधनों की साधना के ॐकार मात्र के साधक में समग्र शक्तियाँ स्वभाव भूत ही आन प्रगट होती हैं। इस कारण इससे अधिक और तंत्र नहीं हैं। (६) किसी एक आध वस्तु के देने को दान कहते हैं, और तमाम प्रपंच का मूल कारण ॐकार वेत्ता आचार्य ने यदि बिधिवत किसी अधिकारी को इतना उपदेश दान दिया उसने मानो सभ कुछ ही दान कर दिया। (७) प्रायः बालकों तथा स्त्रियों अरु कमजोर दिल पुरुषों को अशुचताई आदि कारणों से स्वप्न में अथवा एकांतादि स्थान में क्रूर व्यक्ती आदि दर्शन की भ्रांति से भय हुआ करता है जो कि परमात्मा के नाम उच्चारण मात्र से निवित्त हो जाया करता है सो सभ नामों का मूल एक ॐकार ही है इस कारण इसके

ओअंकार ते परे न भोगं[1] । ओअंकार ते परे न जोगं ॥
ओअंकार ते परे न सुखं । ओअंकार ते परे न दुखं[2] ॥ ५ ॥
ओअंकार ते परे न असाधं[3] । ओअंकार ते परे न बिषाधं[4] ॥
ओअंकार सभस का मूलं । ओअंकार सूक्ष्म अस्थूलं ॥
ओअंकार ते सभ किछु भया । ओअंकार सर्व की दया ॥
जिस लभदयं ओंकारं, तिस कृपा गुरु मंत्रवा ।
नानक ओअंकार परे अपरं पर, ओअंकार ते सर्व भया ॥ ६ ॥
ओअंकारु प्रभि आपि उपाया । ओअंकारु करि ब्रह्म कहाया ॥
ओअंकारु करि बिस्न को कीना । ओअंकारु करि महेश जसु लीना ॥
तीनों मूरति एको देवा । तीनों भाँति तीन की सेवा ॥
तीनि गुणाँ करि रचनु रचाया । ब्रह्मा बिस्नु महेश उपाया ॥
एकस ते कीना बिस्थारु । नानक एक अनेक बीचारु ॥ ७ ॥
चतुर जोगं[5] चतुर रूपं[6], चतुर समाधि[7] चतुर पदह[8] ।
चतुर अस्थान[9] चतुर अस्थापन[10], सर्व मध्ये शिव शिवह ॥ ८ ॥
चहुँ समाधि की जो मिति जानै । बिचरि बिचरि उह आखि बषानै ॥
आपो अपने नाउँ[11] बतावै । चहुँ समाधि की तब मिति पावै ॥
रक्त बिंदु ते क्योंकरि पाका । कोई महलु बतावै धा का ॥

उच्चारण मात्र से पवित्रता की प्राप्ती भला फिर सभ नामों से अधिक तर क्यों ना होगी । ज्यों २ नाम जपा जाता है मलीन संसकार अंतःकरण से भी निविर्त्त हो जाते हैं इस कारण भीतर बाह्य की शौचता का मुख्य कारण रूप स्नान एक ॐकार ही है । (१) भोग्य वस्तु रस प्राप्ती के वास्ते ही सभ कोई सेवन करता है, पदार्थ की अभिलाषा में मन विक्षिप्त हुआ दुख का कारण होता है और पदार्थ प्राप्ती पर किंचित्काल के लिए अभिलाषा निवृत्त होने से अपने अंदर रस को अनुभव करता है और अज्ञानवश हुआ भोग में रस मानता है । ॐकार के आराधन में सहजही मन और सुरति सिमट जाते हैं और भारी रस प्राप्त होता है इस कारण ॐकार भोग है । अथवा सर्व भोग रूप संसार ॐकार से उत्पन्न है इसके साक्षात्कार में सर्व की प्राप्ती हो जाती है इसलिये परम भोग रूप है । (२) जगत को ओर से मुंह काला किये बगैर ॐकार की प्राप्ती सहज नहीं होती इस कारण संसारी दृष्टि से वह दुख रूप है । (३) जब तक जीते न मरे अर्थात पिंड से संबंध न टूटे ॐकार प्राप्त नहीं हो सक्ता इस कारण असाध्य है । (४) संसार संशयों की खान, शरीर दुखों की खान है सो सभ कुछ ॐकार से प्रगट हुआ है, सो फल बीज अनुसार ही प्रकट होता है, तांते बिषाद भी यही है । (५) चार जुगती, (६) चार प्रकार का रूप गर्भ में, (७) गर्भ से ले मरण पर्यंत चार समाधी, (८) बारियाँ चार पद, (९) महल चार स्थान, (१०) चार प्रकार की स्थिती—सभ गुरूजी कहेंगे । (११) नाम ।

चारि समाधी बीचि समाना। नानक देखि रहिआ हैराना ॥ ९ ॥
सुन्न मंडल ते कीआ प्रगास। नवखण्ड करि कै कीआ अकाश ॥
आठ खण्ड करि रचना रचाया। नावाँ खण्ड शरीरु बनाया ॥
रवि शशि[1] अठवीं जोति सवारी। नावीं जोति प्रभि राखी निआरी ॥
नावीं जोति महि ब्रह्म समाना। नानक डिठा लाय ध्याना ॥१०॥
पहिला धरति कि पहिल आकाश। पहिला पुहप कि पहिला वास ॥
पहिला राति कि पहिला दिन। पहिला पाप कि पहिला पुन्न ॥
पहिला चंद कि पहिला सूर। पहिला सचु कि पहिला कूरु ॥
पहिला माई कि पहिला बापु। पहिला धरमु की पहिला पापु ॥
पहिले वरु कि पहिले आपु ॥
पहिला गुरू कि पहिला सिख। कहि देवै कोई एहु बिबेक ॥
एहु बिबेक जे को कहि देवै। उआ के चरन नानक जनु सेवै ॥११॥
पहिला धरती फुनि आकाश। पहिला पुहप त पीछे वास ॥
पहिला राति त पीछे दिन। पहिला पापु त पीछे पुन्न ॥
पहिला चंदु त पीछे सूर। पहिला सचु त पीछे कूर ॥
पहिला माय त पीछे बाप। पहिला वरु त पीछे आप ॥
पहिला गुरू त पीछे सिख। नानक दास कहि एहु बिबेक ॥१२॥
नहिं कछु डाली नहिं कछु मूल। नहिं कछु सूक्ष्म नहिं अस्थूल ॥
आछा लोहू आछा मंसु[2]। आछा सरवर आछा हंसु ॥
आछी भूमि करहि संकेत[3]। आछा बीजु पड़े तिहँ खेत ॥
अगनी पड़ै अग्नि ही होय। माटी पड़ै त माटी सोइ ॥
जैसा पड़ै तैसा ही होय। कुसहजि[4] पड़ै न जनमै सोय ॥१३॥
तिसु भूमहिं देही बिंदु जासु। तिस बिंदु की हाड़ नहिं चासु ॥
कायाँ हाड करि दीआ चासु। करि दीना इसको बिसराम[5] ॥

(१) पाँच ज्योतियाँ पिंड गत पूर्वोक्त चक्रों की कंठ चक्र पर्यंत और दो ज्योतियाँ
आँखों की और अष्टम ज्योति दृष्टि का भंडार जिसको "उलटै कमल छिद्र तल धारै"
इसकी व्याख्या में कहि आये हैं। नांवीं ज्योति उससे ऊपर है जो कि सहसदल का
स्थान है उसमें जो ज्योति है सो आदि निरंजन की पूर्ण छाया है, छाया छायावान से
भिन्न नहीं होती छाया द्वारे छायावान शीघ्र जाना जाता है तभी उसे ब्रह्मरूप कहा
है। (२) मांस। (३) स्थापन। (४) ऊसर भूमि आदि अनजोती हुई धरती।
(५) समाधान, निर्णय।

कायाँ गढ़ महिं रहिआ दश मास। अगनि प्रजारै पवन निवास ॥
माता की रक्त पिता की बिंदु। मानस देह रखी बिचि जिंदु ॥
अपनी कुदरति आपे जानै। नानक अचरजु आखि बषानै ॥१४॥
साढ़े उणवंजह कोड़ि उपाई। बारह कोड़ि बीच रलाई ॥
सोलह चौदह का कीआ पंबीर। हिकमति साजि कीआ मामूर[1] ॥
चारि[2] धातु कलबूत बनाया। अठसठि हाट इस बीचि कराया ॥
बहत्तरि नारी नौं दरवाजे। नानक दशवें अनहद बाजे ॥१५॥
जब एकंकारु अकेला रहता। सास मास तब कछू न कहता ॥
होती देह न होते प्राना। बोलनहारा कहाँ समाना ॥
बोलनहारु पवन की न्याईं। निश दिनु बकै नहीं सुधि पाई ॥
क्या देखउ क्या करउ बीचार। नानक साहिब अगम अपारु ॥१६॥
जब तूँ एकंकार अकेला। कीआ प्रगासु कवनु उह बेला ॥
कवनु बापु कवनु महतारी[3]। कवनु नामु क्या जाति तुमारी ॥
सुन्न मंडल ते कीआ उजीआरु। आपु छपाय कीआ पसारु ॥
कीओ पसार होय अनत तरंग। नानक लषे न जाँही रंग ॥१७॥
जब प्रभु मन महिं मनसा धरता। तब बोलु बचन मनसा सिउँ करता ॥
बचन देत हथि[4] छालकु[5] परिआ। तीनि सूरति का आश्रम[6] करिआ ॥
मनसा माई कीआ सपूता[7]। इकु संसारी[8] इकु अउधूता[9] ॥
इकु लाए दीवान दुआरे[10]। नानक आपे भन्नि सवारे ॥१८॥
ब्रह्मे कउ प्रभि आज्ञा दीनी। सात[11] चीज की हिकमत कीनी ॥
आब षाक आतिश लै गाड़ी। पवनु रलाई मनसा बिचि आड़ी[12] ॥
लोह कलम लै साजश कीनी। करि कहगल ब्रह्मे कौ दीनी ॥
घड़ि घड़ि भाँडे ब्रह्मा साजै। कला[13] बनाय बिचि पवणु बिराजै ॥
ब्रह्मे कीना एहु पसारा। आज्ञा कीनी प्रभ निरंकारा ॥
प्रभ आज्ञा ते रचना होई। आब पाक आतिश लै गोई[14] ॥

---

(१) आबाद। (२) धरती, पाणी, अगनी, वायु। (३) माता। (४) हाथ से हाथ मिलाते हुए अथवा बचन करते ही। (५) छाला, विस्फोट, फलूआ, (अंडा से भाव है)। (६) निवास, स्थान। (७) पुत्रवती, जननी। (८) संसार रचनेहारा ब्रह्मा। (९) संघार करता अवधूत, शिव। (१०) अपने दुआरे दरबार में दीवान लगाने वाला विश्नु सभ का पालक। (११) पाँच तत्त्व, मनसा और जीव कला सुरति—इन सात चीजों से कारीगरी करी गई है। (१२) शामिल करी, प्रविष्ट करी। (१३) कलबूत (मेशीन)। (१४) गूँधी।

अपने सूति सभ आपि परोई । नानक करनैहारु न कोई ॥१९॥
प्रथमे तउ समाधि सुनाई । जठर अग्नि की आवी चढ़ाई ॥
ताय ताय तन बहुतु पकाया । जब पाका तब ठनकी सुनाया ॥
आवी ते जब निकसिआ सारा । तबहि षसम लै हाटि उतारा ॥
वस्तु अचरज बीचि लै पाई । नानक प्रथम समाधि सुनाई ॥२०॥
दुतीआ परम समाधि करि राखी । परम तत्तु धरिआ बिचि साखी ॥
पवन परत[1] प्रानन के माहिं । पवन मारग हरि लखे न जाहिं ॥
परम समाधि की जो मिति जानै । परम तत्त को तबहि पछानै ॥
परे ते परे पर मिति जब आवै । तब नानक परम समाधि समावै ॥२१॥
त्रितीए अपर अपार समाधि । आपु चीनि आप ते लाधि ॥
अपर अपार परंपर पिआरे । अपना आप प्रभु आप सवारे ॥
अपना आपु आपि पतीआरा । आपे भन्नि स्वारणहारा ॥
अपर अपार समाधि सुनाई । नानक प्रान नगर सुधि पाई ॥२२॥
चतुर्थ महाँ समाधि जब कीनी । बेअंत धनी मितिं कितहुँ न चीनी ॥
महिमा ऊँच कही नहिं जाय । महाँ समाधि महिं रहिआ समाय ॥
एक घाट[2] दरीआउ हजार । दश दुआर अठसठि बाजार ॥
नउँ नाड़ी बहत्तरि कोठड़ीआँ । नानक चहुँ समाधि की तब मिति पड़ीआ ॥२३॥
प्रथम समाधि की क्या नीशानी । भिन्न भिन्न करि प्रगट बषानी ॥
दाता भुगता नहिं दूख दिखावै । अति उदार निहचउ नहिं धावै ॥
निशि बासर उह निहचउ करै । शब्द सोधि एकाकी फिरै ॥
बाल अवस्था बेगम रहै । नानक प्रथम समाधि विसम होय रहै ॥२४॥
दुतिया समाधि के लच्छण कौन । छमा शाँति शोभा सुख सउन ॥
दया धरमु धीरज संतोषु । नहिं कछु पापु बिघनु नहिं दोषु ॥
ज्ञान ध्यान में रहै चितन । अजपा जपै सदा अनदिनु ॥
सम दृष्टि अति धीर्जवंत । बसै निरंतरि लै गुरमंतु ॥
अठदश सिद्धि चरन लपटानी । नानक दुतिय समाधि बषानी ॥२५॥

(१) पवन को पलट प्राणों में, भाव पवन मन का जीव है, पवन के बिखरे रहने से मन बिखरा रहता है। और पवन का सार प्राण है इस कारण सारी पवन को प्राणों में पलट लो अर्थात् प्राणों की चाल सीधी करके उसमें नाम मिला दो तो उसके सहारे परे से परे जो पारब्रह्म है उसकी हद आन पहुँचेगी, इसके सिवाय पवन मार्ग से अर्थात् "बोलै पवना" जबान से नाम स्मरण करने से हरि नहीं लषा जाता। (२) सुषमना का घाट उससे हजारों रस रक्त प्रवाही नाड़ियाँ लगी हुई हैं जो दरिया हैं।

त्रिती समाधि का एहु वीचारु । महा विग्रंतु अतिहि बिस्थारु ।
अति अवधूती महाँ अलेषु । तिस जाति न पाति बरनु नहिं भेषु ॥
माया न छाया दृष्टि न आवै । जिसको पकरि देखै तिसु तृण ज्यों जलावै ॥
बसै द्रयावीं[1] मड़ीं मसाणीं । अति बिसुध[2] बोलै बिकल[3] बाणी ॥
नासिका तालका त्रिकुटी ध्यानो । लंबिका[4] उलटि पीवै गगन पानी ॥
सुन्न निरंतरि जाय नाद बजावै । नौसै नाड़ि बहत्तर कोठड़ीआँ
एक पल महिं फिरि आवै ॥
रोम रोम खण्ड खण्ड काया वीचारै । राज करै षट[5] चक्र षोड़स[6] आधारै ॥
आदि मध्य बूझै बन्धानु । नानक तृतीय समाधि बषांनु ॥२६॥
चतुर्थि समाधि बसै आपि आपि । तिस जाति बरनु नहिं माय न बापु ॥

---

(१) नदियों के किनारे । (२) बिना सोचे समझे, पूरब अपर बिचार रहित । (३) टूटी फूटी अर्थ ज्ञान रहित । (४) हठ योग रीति से रसना के नीचे की नाड़ी छेदन करके रसना पीछे उलट कर लंबिका के साथ जो कि कंठ में थोड़ा सा मांस लटक रहा है (उसके साथ) लगा दी जाती है उसके रास्ते से अमृत टपकता है (बिना पलटने के भी अमृत रस टपकता है, पलटने का नियम नहीं है) । (५) षट चक्र पीछे टिप्पण में कहे गये, आगे मूल में भी आवेंगे । (६) आधारों का भेद बहुत गुह्य है परन्तु इनके जाने बग़ैर योग का बोध होना असंभव माना गया है इस कारण इनको प्रगट कर देना ज़रूरी प्रतीत होता है—सो यह हैं—१-आधार-पाद अंगुष्ट है, इस पर एकाग्र दृष्टि करने से ज्योति चैतन्य होती है और दृष्टि स्थिर होती है । २-आधार-मूलाधार गुदाचक्र है, इसे पाँव की एड़ी से अचेतन करने से अग्नि दीप्त होती है । ३-गुह्याधार है इसके संकोच विकास के अभ्यास से अपान वायु फिरके, वज्र गर्भ-नाड़ी में प्रवेश कर बिंदू चक्र में जाता है, इससे शुक्र (वीर्य) स्तंभन की सामर्थ्य होती है (नं० ४ का आधार भी इसी में शामिल है) । ५-पश्चिम तान आसन बाँध के गुदा को संकोचन करे, इससे मल मूत्र कृमी का नाश होता है । ६-नाभी मंडल आधार है जिसमें चैतन्य ज्योती का ध्यान करने तथा ओंकार का जप करने से नाद उत्पन्न होता है । ७-हृदयाधार है इसमें प्राण वायु के रोध करने से हृदय कमल खिल आता है । ८- कंठाधार है, इस में हृदय पर ठोढ़ी दृढ़ता से लगा कर ध्यान करे तो इड़ा पिंगला से बहता हुआ वायु स्थिर होवे । ९-क्षुद्र घंटिकाधार—कंठ मूल है इसमें जो दो लिंगाकार (मांस पेशी) लटकती हैं उन तक रसना को पहुँचावे तो ब्रह्मरंध्र में चंद्र मंडल से स्रवता हुआ रस मिलता है । १०-जिह्वा मूलाधार—इसमें खेचरी मुद्रा के प्रकार से जिह्वाग्र के साथ मथन करे तो खेचरी सिद्धी होती है । ११-जिह्वा का अधो भागाधार—जिसमें जिह्वाग्र से मथन करने से दिव्य कविता शक्ति होती है । १२-ऊर्ध्व दंत मूलाधार—जिसमें जिह्वाग्र स्थापन के अभ्यास से रोग शांति होती है । १३-नासिकाग्र आधार—जिसमें दृष्टि स्थिर करने से मन स्थिर होता है । १४-नासिका मूल आधार—जिसमें दृष्टि स्थिर करने से छः माह के निरंतर अभ्यास से ज्योति प्रत्यक्ष होती है । १५-भ्रूमध्याधार—जिसमें दृष्टि अचल करने के अभ्यास से सूर्य किरणों के समान ज्योति प्रत्यक्ष होती है । इसी अभ्यास के दृढ़ होने से सूर्याकाश

अति निरलंब अति निरंबकारी। महा निराश महा राधारी॥
पवणु न शोषै अगनि न जलावै। पानी न डूबै गहिआ न जावै॥
चिदानंद रूप अनूप सरूपं। नित्य असोध करि सत्ति सत्ति धूपं॥
पारब्रह्म जोती इत उत पोती, सर्व गुणीआ सर्व अतीतं।
अधिक ध्यान होय आकाश जल पीतं॥२७॥
महा अकाशी सर्ब निवासी। नानक पारब्रह्म जोति प्रगासी॥
जहाँ कर्म न धर्म न रूप न नामं। अहि निशि जागै त्रिकुटी ध्यानं॥
तब पारब्रह्म की जोति प्रगासं। नानक निज घरि महलि निवासं॥
जब जोति जगै तब शब्द उचारं। जब जोति जगै तब निरखै निरंकारं॥
जब जोति जगै तब होय पसारा। जब जोति सुख सोवै तब होवै अंध्यारा॥
जब जोति जगै तब होय विस्थारु। भी पारब्रह्म जोति उर वारु न पारु॥
परमदेव परमात्मा परमिति पर अस्थापनं।
चतुर समाधी जो बसै नानक ते लक्षण परवानं॥२८॥
आपि उपाय मनसा प्रभु धारी। ख्याल पलूल[1] करि पलक सवारी॥
साढ़े उणवंजह क्रोड़ीं पाक। मन महिं सोधि दृष्टि करि पाक॥
बहत्तरि क्रोड़ीं पवणु उपाया। सोलह क्रोड़ीं जल बिंब उठाया॥
नौं क्रोड़ आतिश है कीनी। नानक कोटि मध्ये किनै विरलै चीनी॥२९॥
नाँ किछु ते किछु करि दिखलाया। रक्त विंदु का देह उपाया॥
उर्ध[2] कमल महिं सिमरणु आधारु। हरि सिउँ राता भगति अचारु॥
इहँ कलि आय कछु अवरु दिखाया। हरि विसरिआ तब लागी माया॥
बहत्तरि घर एको परधानु। नानक लागा सहज ध्यानु॥३०॥
लै माटी कलबूत बनाया। आब खाक आतिश गोवाया॥
बुत्त कीआ कलबूत सवारिआ। हाथ नाक मुख दंत सुधारिआ॥
होंठ बतीसी नासाँ कान। त्रिकुटी बीचि रचिआ मैदान॥
भउँहाँ सेली मस्तक कीआ। नानक करनैहारु न बीआ॥३१॥

में मन का लै होता है। १६-नेत्राधार—जिनके मूल में उँगली से भींचने में वर्त्तुलाकार (गोल) बिन्दु समान, इंद्र धनुष के सदृश, ज्योति प्रगट हुआ करती है—इसके देखने के अभ्यास से (स्थानी) ज्योति का प्रत्यक्ष होता है। और भी दूसरा भेद इनका है परन्तु इन्हीं में आने से नाम भेद की परवाह नहीं की गई।

(१) संकल्प का उत्थान। (२) माता के गर्भ में शिर नीचे पाँव ऊपर होने से बालक का ध्यान स्वाभाविक ही सुरति कमल में लगा रहता है और साथ ही महान दुख के कारण हरि भी याद रहता है।

नेत्र कीए बिचि रंग बनाए। अचरज भाँति के दस्ते पाए ॥
स्याह सपैद अवरु सुरखाई। गिरद कटोरी आँखि बनाई ॥
धीरी बीचि दृष्टि सभ राखी। रसना करी जपनि कौ साखी ॥
घंडी तले बकनालि बनाई। घंट तले कछु स्वाद न पाई ॥
इहु बिस्थार गले ते ऊपरि। नानक जो सोधै तिसु जोति अनूपरि ॥३२॥

दुइ भुज दुइ कर दस नारी नाले[1]। नारि मरद करि एकु बहाले ॥
नारि मरद कौ लीक लगाई। बीनी ऊपरि धरी कलाई ॥
ऊपरि डउले काँधे मेरु। गाटे[2] तले बिग्रंत अँधेरु ॥
मिटै अँधेर दीपकु[3] जब जालै। नानक ज्ञान बीचारै नासु सभालै ॥३३॥
घट ते तले बहत्तरि नारी। बिचि सुष्मना इड़ा पिंगुलारी ॥
जिस सुष्मनि होवै प्रगास। इड़ा पिंगुला सदा निवासु ॥
नाभि कमल ते ऊपरि हाट। तिन के अठसठि दीए कपाट ॥
पेट भँडारु कीआ असगाहु[4]। नानक गुहल नाड़ि प्रान सुख राहु ॥३४॥
नाभि तले इंद्री का वासा। तिसके भीतरि काम मवासा ॥
इंद्री के तले नलाँ का डेरा। अचरज खेल कीआ प्रभु तेरा ॥
सथ्थल गोडे पिन्नी पैराँ। दश नारि मरद का एक बसेरा ॥
करि कलबूत छाति मुख धरिआ। नानक रक्त बिंदु ते अचरज करिआ ॥३५॥

कई जुग्ग कलबूत स्वारिआ। भनि भनि ढाहि ढाहि उसारिआ[5] ॥
जीउ उपाय अंतरि बैठाया। भीतरि बड़ते[6] बहु डरपाया ॥
प्रभु सुवचन कीआ फिरि आवउ। तौ इस गढ़ के बीचि समावउ ॥
अंतरि जाय बहुत लोभाना। नानक कौल देन कौ पछोताना ॥३६॥
इस घट भीतरि अठसठ हाट। बिन कुंजी क्यों खुलहिं कपाट ॥
कवन कुँजी जितु खूलहिं ताले। कवन पुरुष जो वस्तु समाले ॥
अठसठि हाट का करै निबेरा। सोई आदि अंति जनु तेरा ॥
सतगुर मिलहि त खुलहि कपाट। तौ नानक परगट होवहिं हाट ॥३७॥
अठसठ हाट का क्या क्या नाउँ। उह कवन हाट जितु रहै हिआउ[7] ॥

(१) साथ ही। (२) गरदन गाटा नाम ठेठ पंजाबी में गले का है, अर्थात् कंठ के नीचे हृदय से भाव है। (३) नाम सुमिरन तथा गुरू पदिष्ट ज्ञान में विचर कर जब इस जगह हृदय स्थान पर ज्योति प्रगट हो। (४) अथाह। (५) "ढाहि उसारिया" के बदले "साजि स्वारिआ" पाठ भी है। (६) प्रवेश करते। (७) हिरदा परन्तु यहाँ भाव जीव से है।

हीऐ का हाट कोई जनु जानै। जाँको दृष्टि पूर्ण भगवानै ॥
हीआ सोधि होय रहै हैरान। सो अठसठ हाट की देखि पतीआन ॥
अठसठ हाट की जिस मिति आई। नानक जिसकौ आपि दिखाई ॥३८॥

॥ अध्याय सम्पूर्ण ६ ॥

॥ १ ॐ सतगुरु प्रसादि ॥

॥ राग आसा महला १ ॥

गोष्टि सिद्धाँ नालि, गोरख भरथरी साथ ब्रोलणा होआ ॥

॥ श्लोक ॥

जोग जुगति कौ चीनते, तिनके लच्छण कौण।
तजि निद्रा खुध्या तजहि, सुख[1] शोभा निशि सौण ॥
चहुँ का संगी चहुँ मिले, चारे राखे चीति।
कदे न डोलै नानका, जे चहुँ सँगि होवसु प्रीति ॥
दया धर्म संतोष सचु, जे इन सँगि रहै सुचेत।
तिसु जमु जागाती नाँ लगै, नानक रखै चेत ॥ १ ॥

---

(१) सुख सरूप शोभायमान रात्रि में वह सोए (मगन) रहते हैं—अर्थात् जैसे रात्रि में दिन के सर्व कार्यों का अभाव होता है तैसे ही असत् प्रपंच के अभाव पूर्वक भाव रूपी सत्ता का उदय होता है। और शोभा नाम छबि (प्रकाश) का है सो प्रकाश छबि चेतन वस्तु की दमक है, तथा सुख आनंद का नाम है, इस कारण आनन्द सरूपा चिन्मात्र सत्ता में ही नींद भूख को त्याग करि सोए रहते हैं अर्थात् सच्चिदानंद परम धाम में वह मगन रहते हैं, जोकि जोग जुगति को चीनते हैं। भाव अर्थ इसका यह है कि परम असत्य प्रपंच के अत्यंत नाश रूप होने के बारंबार के दृढ़ अभ्यास कारण जब संसार की प्रतीति मूल से ही होनी (भीतर) बंद हो जाती है, तब एक विशेष प्रकार की आत्मिक अवस्था का घट में साक्षात्कार होता है जिसको सत्ता अर्थात् हस्ती कहते हैं। यही रात्रि रूप है क्योंकि रात्रि में भी सर्व कार्य बंद हो जाते हैं और इसके साक्षात् भए भी सर्व प्रपंच का अभाव (नाश)। इस अवस्था का चूंकि कोई विशेष रूप नहीं होता परन्तु केवल निर्विशेष रूप से ही यह (भाव = हस्ती) मात्र स्थित होती है। इस वास्ते इसको सत्ता या सत्तामात्र नाम से ही कहा जा सकता है। जब कभी भी किसी के अकहि अवस्था का साक्षात्कार होता है तो प्रथम इसी सत्ता रूप में ही अनुभव हुआ करता है, और जब इसी रूप सरूप भई सुरत किंचित काल एक रस स्थिर रहती है

॥ पउड़ी ॥

सेतबंद रामेशर कौ चले । आगै गोरख भरथरि खले ॥
गोरख बोलै सुणि हो पुरखा । साध दर्श की अंम्रित वर्षा ॥
प्रभ सुप्रसन्न साध जत्र देखै । जन्मु सकार्थ सो दिन लेखै ॥
बोलह गोरख सति प्रवेश । इस आवत पुरुष कौ करहु आदेश ॥ १ ॥
सुणि[1] अवधू अरदास हमारी । हम कौ नदरि पवै संसारी ॥
भेखु न पाया ग्रहस्थी वेखु । तिस कौ क्योंकरि कहाँ आदेशु ॥
तिसु खिंथा मुंद्रा पत्रु[2] न झोली । सुनि अउधू निरंतरि बोली ॥
तिसु सिङ्गी नादु विभूति न माथै । सुणि सतगुर सचि भरथरि भाखै ॥ २ ॥
सुणि भरथरि इक शिष्या लीजै । इसकी गणत न काई कीजै ॥
सहजे आवै इच्छिआ जाय । धरती देखै सहजि सुभाय ॥
इसकी गति मिति किनी न जानी । अहि निशि जागै रहै ध्यानी ॥
बोलै गोरख सुणि पुरुष उदासी । इसकी गति जाणै अविनाशी ॥ ३ ॥
आदेश[3] हो पुरुष आदेश । आदेश[4] का कवणु उपदेश ॥
उपदेश का कौन गुरू कौन चेला । कौन शब्दु अनाहदु मेला ॥
कउण सुआवै कउण सुजाय । कउण सु सर्वे रहिआ समाय ॥

तो यही अवस्था परम छबि का भंडार रूप हुई दमकने लग जाती है । इस स्वयं प्रकाश मई अनुभव सत्ता के सिवाय उस काल में और सभ का अभाव होता है इसी करके इसको चिन्मात्र कहते हैं । पश्चात् इस सत चिन्मात्रता में इसके भीतर ही भीतर एक और लपेट की झलक उछलती है और बस—उसी को परम आनंद मात्र कहते हैं । यह तीनों हालतें सम काल ही सम रूप में प्रकाशित होती हैं, भिन्न भिन्न नहीं किंतु एक सरूप हैं । इसी को सच्चिदानंद परम धाम का साक्षात्कार कहते हैं । जो जोग जुगति को चीनते हैं नींद भूख को त्याग करि इसी जीवनमुक्त दशा में मगन रहते हैं "जाँ कउ आयो एक रसा । खान पान आन नहीं क्षुध्या ताँके चित्त न बसा ॥" इस श्री गुरु ग्रंथ बचन अनुसार—प्रथम पद के प्रश्न का उत्तर दुतीय पद में दिया है । (१) यह भरथरी नाथ का कथन है गोरख नाथ से—ऐसा ही आगे भी प्रश्न उत्तर में समझ लेना । गोरख ने गुरू साहेब को आते देखकर नमस्कार को कहा परन्तु भरथरी ने विलक्षन भेष गुरू जी का देख कर ऐसा उत्तर दिया है । (२) पात्र, यहाँ कमंडलु से भाव है या खप्पर से । (३) गोरख भरथरी के नमस्कार कहते ही । (४) गोष्ठी आरंभ करने अर्थ गुरू साहेब ने प्रश्न कर दिया है गुरू साहेब के आगमन से प्रथम ही गोरख भरथरी वहाँ मौजूद थे और जो बाहर से आवे प्रश्न का अधिकार उसका है सो इसी मर्यादा के पालन अर्थ गुरू साहेब ने प्रश्न कर दिया है । आदेश नाम योगियों की संप्रदाय में नमस्कार का है और उपदेश के अर्थ में भी कहीं इसे कहा जाता है ।

चोलै नानक अंम्रितु गाथा । तू सुणि भरथरि गोरखनाथा ॥ ४ ॥
आदेश हो पुरुष आदेश । आदेश का सचु उपदेश ॥
उपदेश का निरंतरि गुरू रहत चेला । आपु खोय तब होवै मेला ॥
बोलै गोरख अम्रितु बाणी । सुणिहो नानक इह जोग नीशाणी ॥ ५ ॥
तुही ब्रह्मा कि[1] तुही ब्रह्म ज्ञानी । तुही तपसी तुही सुन्न ध्यानी ॥
तुही अउधू कि तुही ब्रह्मचारी । तुही मोहनी कि तुही कलाधारी ॥
तुही उदासी तुही ग्रिहस्त भोगी । तुही वैश्नो तुही आदि जोगी ॥
ोलै भरथरि अकथ कहाणी । मैं मनि उपजि रही हैराणी ॥ ६ ॥
ोई ब्रह्मा जो ब्रह्म पछाणै । सोई वैश्नो जो विश्नु मति जाणै ॥
ो महेश जो मोनी थीआ । ओही जोगी जिन जगु सभु कीआ ॥
ह्मण्ड खण्ड जिसु सभु पासारा । ओही सभ संगि सभन ते निआरा ॥
ोलै नानक त्रिभवण सारु । अकथ कथा का तत्तु बीचारु ॥ ७ ॥
कतु बिधि पुरुषा तत्तु कौ लहै । कितु बिधि जाता अगहु गहै ॥
वनु भोजनु जित आवै शांति । कवनु शब्दु जित मिटै भ्रांति ॥
वनु रहतु जित उलटि सरु संधै । क्योंकरि पंच दुष्ट कौ बंधै ॥
ोलै गोरख देहु बीचारु । क्योंकरि दुत्तर उतरहुँ पारु ॥ ८ ॥
ुर प्रसादि तत्त कौ बूझै । ज्ञान रत्न तब अंतरि सूझै ॥
न पवने का करे अहारु । तब ज्ञानी के ब्रह्म आचारु ॥
लटे कवलु पषाले काया । पंचे जीति सहजि घरि आया ॥
ोलै नानक सुण हो नाथा । नामु जपत उधरे बहु साथा ॥ ९ ॥
क्योंकरि पुरुषा नामु अराधै । क्योंकरि पंच दुष्ट कौ साधै ॥
क्योंकरि सतगुर की मति लेइ । क्योंकरि मनु साधू कौ देइ ॥
कौण जुगति जोगी का चाला । कवन शब्द ते परचै बाला[2] ॥
बोलै गोरख तत्त सरूप । अलष बचन जोग का रूप ॥१०॥
कवन जुगति ते जोग कमावै । कवन जुगति भ्रमता बशि आवै ॥
कवन जुगति लै त्यागै आसा । कवन जुगति ते मिटै पिआसा ॥
कवन जुगति उपजै हैरानी । नानक कथी अले अकथ कहानी ॥११॥
जत्न जुगति ते जोगु कमावै । सचि जुगति भ्रमता बशि आवै ॥
शील जुगति ते त्यागै आसा । संजम रहै ताँ मिटै पिआसा ॥

(१) अथवा, याकि । (२) मन ।

बोलै गोरख ऐसा जोग। जुगति विहूणा जोगु न होगु ॥१२॥
कवन ध्यान कवन जोगीसर। कवन सत्त राखहु घट भीतरि॥
कवन खिंथा कवन झोली। कवन शब्दु कवन बोली॥
कवन सिङ्गी कवन नादु। बोलै नानक इहु विसमादु ॥१३॥
ध्यान जोग आपि जोगीसर। सचु वस्तु राखहु घट भीतरि॥
अकाल[1] खिंथा निराश झोली। शब्दु अनाहदु गुरमुखि बोली॥
सुणि नानक इह जोग नीसाणी। सिङ्गी सुरति नाद गुर बाणी ॥१४॥
कवन मेषला कवन विसटी[2]। कवन सेली कवनु किसती[3]॥
कवन सूई कवन धागा। कवन पेवँद मेषले लागा॥
कवन जगोटा[4] कवन अधारी। कवन जोगीसरु कवन ब्रह्मचारी॥
सुणिहो भरथरि नानक इउँ कहै। कवन जुगति जितु अस्थिरु रहै ॥१५॥
गगन मेषला धरति विसटी। दया सेली हाथ किसती॥
सुरति की सूई प्रेम का तागा। कवन[5] पेवँद मेषले लागा॥
जापु जगोटा जत्तु अधारी। आदि जोगीसरु सो ब्रह्मचारी॥
सुणि हो नानक भरथरि बाता। गुर प्रसादि अमरु घरु जाता ॥१६॥
कवणु मूलु कवणु वेला[6]। कवणु गुरू कवनु चेला॥
कवनु मुंद्रा कवनु मिरगानी। कवणु फरूआ[7] कवनु पाणी॥
कवणु डिबी कवणु भुगति। पूछै नानक कवणु जुगति ॥१७॥
पवनु मूलु सुन्न वेला। शब्दु गुरू सुरति चेला॥
धर्म कीआ मुंद्रा शील मिरगानी। अकाल फरूआ गगन सर पानी॥
ध्यान डिबी संतोष भुगति। बोलै गोरख नानक इहु जुगति ॥१८॥
अठ अठारह बारह बीस। बंकनाल रस त्यागे तीस॥
तिसु ब्रह्मज्ञानी ब्रह्म की मया। बंकनाल ते बाहर भया॥
सुणि हो भरथरि नानक बोलै। आत्तु चीनै तत्तु विरोलै ॥१६॥

---

(१) अविनाशी वस्तु, सर्व परपंच की आधारभूत सत्ता। (२) विष्टि नाम नर्क में जबरदस्ती ढकेलने का है परन्तु जिस प्रकार दुराचारी नर्क में ढकेले जाने से दंडित किये जाते हैं इसी प्रकार किंचित् मात्र काम के संस्कार से जाग उठने वाली शिश्न इंद्री को जबरदस्ती ढकेल रखने वाली कोपीन है अथवा ताँबे या पीतल का वह चक्र जिससे कितने साधू (नांगे) अपनी इंद्री को बींध कर काम की चेष्टा को रोक रखते हैं उसका नाम विष्टी है। (३) कोई साधू फ़कीर काठ का पात्र किशती (बेड़ी) के आकार का रखते हैं और कोई खप्पर हाथ में रखते हैं। (४) कोपीन। (५) असल तो ग्रन्थ में पाठ यही है परन्तु "पवन" पाठ शुद्ध जान पड़ता है। (६) मर्यादा, हद। (७) फावड़ा।

क्योंकरि खोजी क्योंकरि बादी। क्योंकरि दुबिधा दुर्मति त्यागी ॥
क्योंकरि दुनीआँ दुत्तरि तरीऐ। क्योंकरि बाले जीवत मरीऐ ॥
तेरा कवनु गुरू जिसु दीक्षा दीनी। भरथरि प्रणवै तत्तु परबीनी ॥२०॥
गुरमुखि खोजत राहु बताया। सहज मिले जगजीवनु पाया ॥
दुबिधा दुर्मति त्यागि समाया। सचि नामि ताड़ी चितु लाया ॥
गुरमुखि सोग व्योग प्रजाले। गुरमुखि रत्ता[१] पति गति नालै ॥
गुरमुखि रत्ता दुत्तरु तरीऐ। शब्दि मूए ताँ बहुड़ि न मरीऐ ॥
सुरति शब्द की अकथ कहाणी। सुणि भरथरि नानक इह बाणी ॥२१॥
नउँसर शुभर[२] दशवैं चढ़िआ। गगन मँडल महि बर्षा करिआ ॥
तीन मेट चउथै चउवारै। पञ्च सफा[३] जिणि मनकौ मारै ॥
पारस[४] परसै त्रिभवण थान। गुरमुखि जपीऐ अंतरि नामु ॥
पुरीआ सप्त ऊपरि कउलास। तहाँ जोगी बसै निरंजन दास ॥
नानक गोरख भरथरि मेला। गुर प्रसादी जन्मु सुहेला[५] ॥२२॥
कवण रहत ते चेला जापै[६]। कवण शब्दु ते गुरू पछापै[७] ॥
कवण जुगति लै आसणु लाइ। कवण जुगति लै मनु समझाइ ॥
कवण शब्दु ते कवल परगासा। कवण शब्दु लै बँधै आसा ॥
बोलै नानक सुणि हो पुरुषा। कवण शब्दु अंम्रित की वर्षा ॥२३॥
गुर सेवा ते चेला जापै। सचु शब्दु ते गुरू पछापै ॥
जुगति पछाणै आसण बहै। सतगुर बचनी अस्थिर रहै ॥
नानक गोरख भरथरि मेला। ऐसी जुगति पछाणै चेला ॥
सुणि हो नानक बोलै भरथरि। गुर किरपा ते चेला अस्थिर ॥२४॥
कवण अंचला कवण टोपी। कवण आड़बंद[८] कवण लँगोटी ॥
कवण धुईं कवण बैसंतर[९]। कवण वस्तु ले राखहु अंतरि ॥

---

(१) राता अर्थात् संलग्न गुरमुख प्रतिष्ठा वाली गति के साथ (विज्ञानिक अनुभवीय स्थिती में) स्थित हो जाता है। (२) शुभर नाम गढ़े का है सो नौंसर जो नौं दरवाजे सदैव सरते रहते हैं उनको गढ़ों के समान खाली करके अर्थात उनसे सुरत को खैंच कर विषयों की ओर से उनकी संसरना को निरोध करके। (३) पाँच काम क्रोध आदि की सफा (मजलिस) जीत कर। (४) त्रिकुटी के स्थान पर ब्रह्म सरूप पारस को स्पर्श करे। (५) सुख पूर्वक व्यतीत होने वाला, आसान। (६) जाना जावे। (७) पछाना जावे। (८) आड़ नाम नाली का है जिसमें से पानी बहता हो सो ऐसी नाली शरीर में लिंग इंद्री है—जिस पीतल या ताँवे के चक्र से इस आड़ को जोगी लोग बंद लगाते हैं उसे आड़बन्द कहते हैं, पीछे इसी को ही बिसटी कहा था। (९) अग्नि।

कवण सुमूत्रा कवण सुअस्थिर । बोलै नानक सुणिहो भरथरि ॥२५॥
सचु अंचला हरि सिमरणु टोपी । जतु आड़बन्द शील लँगोटी ॥
क्रोध मूत्रा हरि सिमरणु अस्थिरु । सुणिहो नानक बोलै भरथरि ॥२६॥
नानक बोले सुणि पुरुष अबिनाशी । पिंड पड़ै मिलीऐ अबिनाशी ॥
पिंड पड़ै अस्थिरु मनु आवै । पिंड पड़ै भरमतु ठहिरावै ॥
पिंड पड़ै तब होत सुहेला । पिंड पड़ै बिछुरत होइ मेला ॥
पिंड पवै तब मिटै पिआसा । बहुत जीवण की भरथरि आसा ॥
बोलै नानक त्रिभवण सारु । पिंड पवै तब मुक्ति दुआरु ॥२७॥
कवण रूप का गुरू कथीअले, कवन रहत का चेला ॥
कवण शब्दु लै आसणु बैसै, कवण जुगति का मेला ॥
कवण मंत्र उपदेश द्दढ़ावहु, कवन तिलकु कवन माला ॥
पूछै गोरख तू सुणि नानक, कितु बिधि परचै वाला ॥२८॥
पवण का रूप गुरू कथीअले, चेला कथीअले पाणी ॥
सचु शब्दु लै आसणि बैठे, जोती जोति समाणी ॥
जिसु अंतरि जाय निरंतरि देखिआ, प्रगटी अचरज गाथा[1] ॥
एतु जुगति गुर चेला परचै, तू सुणि गोरखनाथा ॥२९॥
पूछै गोरख तू सुणि नानक, कितु बिधि निद्रा त्यागै ॥
काम शब्द बशि कितु बिधि आवै, क्योंकरि दुबिधा भागै ॥
क्रोध बली को क्योंकरि जीतै, क्योंकरि तजै अहंकारा ॥
सुणि नानक सचु गोरख प्रणवै, किह बिधि तत्तु बीचारा ॥३०॥
सुणि गोरख सचु नानक प्रणवै, एहु सिद्ध का मेला ॥
साध दया ते छुध्या त्यागै, जागतु रहै सुहेला[2] ॥
कामु सबलु बशि सहजे आवै, इतु बिधि दुबिधा त्यागै ॥
सुणि हो गोरख सचु नानक प्रणवै, संत शरणि मनु लागै ॥३१॥
कवन नगरी कवन राजा । कवन गढ़ कोट कवन दरवाजा ॥
कवन लोक ऊहाँ करहिं बसेरा । कवन गुरू कवन कहीऔ चेरा ॥
कवन काजी तहाँ कवन महता[3] । सुणिहो नानक गोरख इउँ कहता ॥३२॥
अमरापुर नगरी तहाँ ब्रह्म राजा । सुन्न गढ़ कोट मेरु दरवाजा ॥
साधू लोक तहाँ करहिं बासेरा । शब्दु गुरू सुरति है चेरा ॥

---

(१) गीत, कथा—अचरज गीत या कथा, भाव अंतरीय शब्द अनहद से है।
(२) सुखी। (३) प्रधान।

सचु महता आपि काजी थीआ। नानक धरम तपावस कीआ ॥३३॥
क्योंकरि अउधू तत्त कौ बूझै। क्योंकरि ज्ञान पदारथु सूझै ॥
क्योंकरि आसा मनसा त्यागै। क्योंकरि दुबिधा दुर्मत भागै ॥
क्योंकरि सतगुर की मति लेइ। नानक सेवक सहजि मिलेइ ॥३४॥
हुकम बूझि कै तत्तु पछानै। गुर किरपा ते सदा सुख मानै ॥
सतगुर की आज्ञा शिर पर सहै। आस अँदेसे[1] ते निआरा रहै ॥
तिसकौ सोग ब्योग न ब्यापै कोइ। बोलै गोरख जे सेवक होइ ॥३५॥
सुणिहो गोरख अकथ कहाणी। क्योंकरि मिटै सु आवण जाणी ॥
क्योंकरि भ्रमते कौ ठहिरावै। बाहरि जाता क्योंकरि ग्रहि ल्यावै ॥
क्योंकरि गुर चरणी चितु धरै। सुणि गोरख क्यों अजर जरै ॥
बोलै नानक अगम बीचारु। क्योंकरि सेवक पावै पारु ॥३६॥
सुणि नानक सेवक की चाला। मंनि हुकम होय रहै निराला ॥
सतगुर चरणी लावै पिआर। आवा गउन मिटसि इक वार ॥
उह गर्भ कुंट महिं बहुड़ि न लेटै। कोटि जोजन जमु कबहुँ न तेटै[2] ॥
उह एक वार[3] मरि जनमै नाहीं। जो गुर सेवक अंकि समाहीं ॥
बोलै भरथरि सेवक की रहता। गुर का हुकमु जो सेवक कहता ॥३७॥
कितु परचे ते पड़ै न कंधु। कितु परचे ते धावत बंधु ॥
कितु परचे उपजै हैरानी। कितु परचे जोग मिति जानी ॥
कवन शब्दु ते मिटै पिआसा[4]। कवण शब्दु ते पूरन आसा ॥

---

(१) अप्राप्त वस्तु की प्राप्ति के संकल्प की तार का नाम आशा है और प्राप्त वस्तु की संभाल का फिकर या उसके नाश का संशय अंदेशा कहलाता है, वास्तव में यह दोनो परम पुरुष के दर्शनों में पटल (कपाट) हैं। (२) ताड़ी लगाकर या घूर कर देखना, टकटकी बांधना। भाव कोडी योजन से भी यम उसकी ओर आंख भर कर नहीं देख सकता। (३) युक्ति अभ्यास की कमाई से जिसकी जीव कला जीते जी ही शरीर से न्यारी होकर परम पिता अकाल पुरुष की गोद में समा जाती है भाव सभ के आदि कारण में अभेद हो जाती है तो एक बार ऐसी मरणी मरकर फिर नहीं जन्मता तात्पर्य यह कि फिर स्वप्न में भी उससे भिन्न नहीं हो सक्ता। अथवा ज्ञानी अज्ञानी सभ का शरीर प्रारब्ध रचित होता है यावत शरीर रहे सुख दुख का भोग सभ के लिए एक सा रक्खा है, भिन्न भेद केवल इतना है कि जो गुर सेवक उस सच्चे मालिक की गोद में समा जाता है प्रारब्ध फल भोग समाप्ती रूप मृत्यु से एक बार मर कर फिर और किसी कर्म फल भोग रूप जन्म को प्राप्त नहीं होता। क्योंकि गुरमुख (ज्ञानी) के कर्म समूल नाश हो जाते हैं। (४) पदार्थों की प्राप्ती से अधिक लालसा रूप तृश्ना।

बोलै नानक सुणिहो भरथरि। कवण शब्दु ते होवै अस्थिर ॥३८॥
खण्डित निद्रा पड़ै न कंधु। अल्प अहारी लै धावतु बंधु ॥
सतगुर परचै उपजै हैरानी। ज्ञान परचै जोग मिति जानी ॥
सतगुर परचै मिटै पियासा। संजम रहै त पूरण आसा ॥
बोलै भरथर सुणि नानक साधा। गुरप्रसादि अमर पदु : लाधा ॥३९॥
कवन नगरी कवन सुलतान। तहँ कवन लोक बसहिं परधान ॥
कवन आसनु कवन घरि डेरा। उह कवनु ध्यानु जित बहुड़ि[1] न फेरा ॥
कवन जुगति जितु जोग कमावै। कवन संजम जितु सहजि घरि आवै ॥
बोलै नानक अगमु अपारु। एस कथा का अगमु बीचारु ॥४०॥
कायाँ नगरी ब्रह्म सुलतान। तीन गुणाँ का तहँ विश्राम ॥
सुन्न घरि आसनु सहजि समावै। बाहरि जाते कौ गुरमुखि घरि लिआवै ॥
बोलै गोरख ब्रह्म ज्ञानु। अलख पुरुष का सुन्न ध्यानु ॥४१॥
सुणि अउधू इउँ जोगहिं पाईऐ। बिनु मनु मूँडे मूँड मुडाईऐ ॥
केश अजाई[2] जाहिं अभागै। जब लग अंतरि ब्रह्म न जागै ॥
किआ सिङ्गी सु त्रिभूति लगाई। काहे कौ शिरि छाई[3] पाई ॥
पत्रु[4] लीआ मंगण कौ भिक्षा। अजहु न आई गुरु की शिक्षा ॥
सुणि भरथर नानक इउँ बोलै। जोगी जुगति लीए इउँ खेलै ॥४२॥
जुगति कमावै सो जोगी होवै। जुगति रहै सो जनमि न रोवै ॥
जुगति बिना जम कंकरु मारै। जुगति बिना नित कालु सँघारै ॥
जोग जुगति की जिसु मिति जानी। जोग दृढ़ै सो ब्रह्म ज्ञानी ॥
जोग जुगति की ऊँची रहता। सुणि नानक इउँ गोरख कहता ॥४३॥
कवण रूप कवण आचार। कवण अरंभ कवण आधार ॥
कहाँ ते आवै कवण घरि जाय। कवण सुसत्रे रहिआ समाय ॥
कवनु गुरू कवनु है चेला। कवनु शब्दु रहरासी मेला ॥
तहँ कवनु जुगति कवनु:तहँ रहता। सुणि गोरख सचु नानक कहता ॥४४॥
सचुसरूप[5] ब्रह्म आचारु। पवनु अरंभ ज्ञान अधारु ॥

(१) फिर, आगे को। (२) व्यर्थ, भंग के भाड़े। (३) छार, राख। (४) पात्र, परंतु इस जगह झोली से भाव है। (५) सचु सरूप विषयक ब्रह्म भाव मई आचार को धारण करता हुआ गुर शब्द के आधार (सहारे) पर पवन से आरंभ करे इस प्रकार कि शब्द के आश्रित पवन नाभि से उत्पन्न होकर हिरदे में से उलंघन करती हुई सुषमना के स्थान पर जाय स्थिर होवे इस भाँति शब्द अभ्यास करते २ त्रिवेणी घाट का लखाव हो आता है। यहाँ परयंत कीटी मार्ग रूप शब्दाभ्यास की

नाभ ते उपजै हिरदे महिं जाइ । सुषमना कै घरि रहै समाय ॥
इड़ा पिंगला सुषमना बूझो । तौ इनि उलटि कला मनि सूझी ॥
बोलै गोरख ब्रह्म ज्ञानु । सुणि नानक इह जोग ध्यानु ॥४५॥
क्योंकरि चन्द्रमा शीतल संगि । क्योंकरि भानु तप्त नित अंगि ॥
क्योंकरि आसा मनसा त्यागै । क्योंकरि सुन्न शब्दि धुनि लागै ॥
क्योंकरि अउधू तत्त को बूझै । क्योंकरि ज्ञान पदार्थ सूझै ॥
चंद सूरज दुइ इकतु घरि आणै । क्योंकरि सुन्न चँदोआ ताणै ॥
बोलै नानक सुणि अउधूता । कवन बस्त्र कवन बिभूता ॥४६॥
चंद्रमा[1] शीतल साधू संगि । तामस रूपी भानु तेजि अंगि ॥

(स्)याता के अनंतर मन में उलटी कला नटबाजी रूप बिहंगम शब्दाभ्यास की सुरत (ज्ञान) आन स्फुरती है यही जोग ध्यान ब्रह्म ज्ञान सरूप है । तात्पर्य यह कि शब्दाभ्यास मात्र से ही यथार्थ ब्रह्म ज्ञान होकर पूर्ण ब्रह्म की प्राप्ती इसे हो जाती है । शब्दाभ्यास का मार्ग यद्यपि अनंत बार गुरु साहब ने स्पष्ट करके भी कहा है तथापि इसकी चाबी केवल भेदी पूर्ण गुरू के ही हाथ दी हुई है ।

(१) मन का अधिष्ठाता चन्द्रमा है । चन्द्रमा की शक्ति ही मन में कार्य करने वाली वस्तु है इस वास्ते इस जगह चन्द्र नाम से ही मन को निरूपण किया है । मन में एक तो मनन रूप कार्य की शक्ति है दूसरी अहङ्कार करने की शक्ति है, सो जिस प्रकार शीतल अंश इसमें चंद्रमा का है उसी प्रकार तामसी (तैजस) अंग इसमें सूर्य का है । एक ही मन में इन दोनों शक्तियों के सर्वदा काल स्फुर्ण होते हुए भी इनमें धरती आकाश का भिन्न भेद रहता है जिससे सर्व जीव दुखी रहते हैं क्योंकि ना केवल शीतलता से कार्य सरता है ना केवल तेज से, दोनों ही इकट्ठे हों तो कृत्यकार्यता पूर्ण हो सकती है परन्तु इनका समकाल इकट्ठे होना आग पानी के एक रूप होने वत अत्यंत अशक्य है सो किस प्रकार इस दुबिधा के एक रूप निज भाव में मन आवे तो इस जीव का कार्य सुधरे । इस प्रश्न के उत्तर में साधू संग में प्रविष्ट मन में शीतलता का साक्षात्कार होता है और तेज अंश में अर्थात् तेज के स्थान में स्थित मन में तामस रूपी जो तेजोमई (प्रकाश रूप) अंश है उसका भान (साक्षात्कार) होता है । तात्पर्य यह कि तेज के स्थान रूप शिव नेत्र में सतसंग के आश्रे स्थिर हुए मन में ऐसी शांती की प्रगटता होती है जो शीतल है पर उसमें जड़ता का लेश नहीं– ऐसा तेज प्रकाशित होता है कि उसमें उष्णता का नाम नहीं । इसी शांतमई प्रकाश की उपलब्धी का नाम इस जगह चाँद सूर्य की इकत्रता रूप मन का निज भाव में स्थिर होना कृतकार्यता की कुञ्जी है । सतसंग से यहाँ भीतरी सतसंग भावित है–क्योंकि ऐसी स्थिती में बाह्य सतसंग सम काल नहीं किया जा सकता और सतगुर सरूप का ध्यान या सत शब्द का अनुसंधान– भीतरीय सतसंग है (साधू नाम भले का है–भला संत सतसंग ही है, और सभ संग नाश होने वाले होने से भले संग नहीं, सतगुर रूप शब्द ही सत है इसलिए उसी का संग भला संग – सतसंग है) सार अर्थ यह शब्द अनुसंधान पूर्वक शिवनेत्र में स्थित होना ही गुरुओं की कृपा से तत्त्व ज्ञान की कुंजी है । शब्द अनुसंधान की रीति पृष्ठ ८४ के टिप्पण नं० २ में निरूपण की गई है ।

गुर प्रसादि तत्त कौ जाणै । चारि पदार्थ तब मनु मानै ॥
सुणि नानक इउँ गोरख बोलै । जोगी जुगति लीए इउँ खेलै ॥४७॥
कवन वरन कवन वेष । कवन मंत्र कवन उपदेश ॥
कवन गुरू जिसकी इह शिक्षा । अंति होइ[1] भारु न खइऐ भिक्षा ॥
बोलै भरथर सुणि नानक बाता । कवन वरन ते अंतरि जाता ॥४८॥
असंख वरन निरंतर वेस । आदि मंत्र शब्द उपदेश ॥
ज्ञान बचन अंम्रित की बाणी । कामधेनु लै भिक्षा खाणी ॥
सतगुर[2] का वरन लए आहारु । सुणि भरथर इह ब्रह्म अचारु ॥४९॥
सुणि नानक इउँ गोरख कहै । कितु बिधि आवागवण ते रहै ॥
क्यों अमरापुरि पावै बासा । कितु बिधि चूकै जम की त्रासा ॥
क्योंकरि सहजि कला[3] मनु आणै । क्योंकरि सुन्न चँदोआ ताणै ॥
सुनि नानक इउँ गोरख कहता । कितु विधि सुन्न जाय इह रहता ॥५०॥
जत्न रहै ताँ जोग कमावै । गुर बचनी अमता बशि आवै ॥
खंडित निंद्रा अल्प अहारी । झाती[4] पावै अनभै बारी ॥
नऊँ दर सोधै ताँ पावै भवँणु[5] । इह विधि मिटै सु आवागवणु ॥
आस अँदेशा त्यागि समावै । जम दुख मिटै अनभउ पदु पावै ॥
बोलै नानक सुण हो गोरखा । इतु विधि मिटै सु जम की बिर्था[6] ॥५१॥
कै सै[7] नाड़ी कै सै संधी । तहँ कवण पुरुष बसै निज बन्धी ॥
कवन मंडल कवन है बारी । केते पुरुष केती हैं नारी ॥
एक[8] नारि बत्तीस हैं मरदा । उआ नारी महिं भेदु न परदा ॥
पिंड ब्रह्मण्ड का देहु बीचारु । बोलै गोरख तत्तु अपारु ॥५२॥
नौं सै नाड़ी सोलह सै संधी । तहाँ पवणु पुरुष बसै निज बन्धी ॥
चारि महल चारि हैं बारी । बत्तीस पुरुष एक है नारी ॥

(१) अन्यति भारू होय भिक्षा न खइये —ऐसा इस पद का अन्वय है। अर्थ यह कि दूसरे पर भारू होकर भिक्षा ना खाय, भाव क्या कि किसी दूसरे पुरुष तथा पदार्थ आदि के सिर पर अपने जीवन का निरभार ना समझे। किंतु एक अकाल पुरुष वाहगुरू की ओट को सम्हारे रक्खे, यही सर्व कामनाओं की पूर्णता को धारने वाला कामधेनु सरूप है। (२) सतनाम रूप गुरु मंत्र। (३) कला नाम विद्या का भी है सो यहाँ सहज विद्या से भाव सहज योग युक्ति है जिसका निरूपण पृष्ठ ८४ के टिप्पण २ व पृष्ठ ८५ के टिप्पण १ में हो चुका है। (४) दृष्टि डालना, ध्यान देना। (५) ठिकाना, घर। (६) बेदन, पीड़ा। (७) कितने सौ। (८) एक नारि रसना और बत्तीस पुरुष दाँत हैं।

नानक कहै सुणहु तुम ज्ञानी। परम तत्त की कथा बषानी ॥५३॥
शब्द[1] के धारे सगले खण्ड। शब्द के धारे कोटि ब्रह्मण्ड॥
शब्द के धारे पाणी पउण। शब्द के धारे त्रिभुवण भउण॥
शब्द के धारे सूरज चंद। शब्द के धारे रत्न समुंद॥
शब्द के धारे धरती आकाश। नानक शब्द रत्न की राशि ॥५४॥
आस अँदेशे ते शब्दु निआरा। तीन लोक शब्दु पासारा॥
शब्दु अदिष्ट मुष्ट नहीं आवै। सप्त दीप शब्द धुनि गावै॥
शब्दु अनाहदु निरंजन का वेषु। आदि मंत्र शब्द उपदेशु॥
चउदह ब्रह्मंड शब्द की धर्मशाला[2]। नानक सोहं शब्द दइआला ॥५५॥
सोहं शब्दु सदा धुनि गाजै। जागतु[3] सोवै नित शब्दु बिराजै॥
तीन[4] अवस्था के सँगि रहै। जागत सोवत सोहं कहै॥
शब्द महरम नहीं किसे सिञाता[5]। नाँ किसे देखिआ नाँ किसे पछाता॥
बोलै नानक अकथ कहाणी। मन महिं उपजि रही हैराणी ॥५६॥

(१) संसार भर में चाहे सर्व पदार्थ सन्मुख भी धरे पड़े हों—किसी भी कार्य की सिद्धि उनसे नहीं हो सकती जब तक उनके नाम की जानकारी न होवे—जैसा कि देखने को हमारे सन्मुख दमकता हुआ हीरा पड़ा है परन्तु हम उससे परिचित नहीं हैं वह किंचित भी हमारे दरिद्र को निवारण नहीं कर सकता, हाँ यों ही कि हमें उसका नाम कोई बतला देवे तत्काल उससे धनी बन जावेंगे—ऐसा ही सर्व संसार में कार्य साधकता नाम के ही अधीन सिद्ध है, सो नाम ही शब्द है, इस कारण शब्द के ही आसरे खंड ब्रह्मण्ड का स्थित रहना गुरू साहेब कथन करते हैं। (२) सभ को धारण करने वाली अर्थात् आसरा देने वाली जगह का नाम धर्मशाला है—सो सर्व के साधारण निवास योग्य धर्मशालावत चौदह लोक ही शब्द की निवास भूमी है। टिप्पण १ पृष्ठ १२१ में सर्व प्रपंच की सत्ता शब्द के अधीन दर्शाई अरु अब सर्व प्रपंच में नाम को पूर्ण दिखलाया है, जिस प्रकार आकाश के आसरे घट और घट के आसरे घट (अंतरवर्ती) आकाश की स्थिति अथवा जल में तरंग तरंगों में जल की स्थिति होती है इसी प्रकार शब्द में सभ की और सभ में शब्द की ओत प्रोतता दोनों वचनों में निश्चय कराई है। (३) श्वास प्रश्वास में हंस मंत्र रूप अजपा जाप का रात्रि दिन में होता रहना पीछे यथावत दिखलाया जा चुका है। जागते सोते उसकी धुनि नहीं टूटती एक तार बंधी रहती है। (४) जाग्रत स्वप्न सुषुप्ती इन तीनों अवस्थाओं में एक संग अर्थात् एक सार यह शब्द होता रहता है, इन तीन अवस्था रूप जगत की ओर ते सोते हुए अर्थात् तुरिया तुरियातीत के मंडलों में भी सोहं शब्द गाजता रहता है। भेद केवल इतना होता है कि तीन अवस्था में श्वास के अधीन रहता है और वायु मंडल को नीचे छोड़ने वाली अमन अवस्था में सहज रूप से इसकी धुनि का अनुभव होता है। (५) पहचाना।

बाल अवस्था दूध सँगि प्रीति। रुदन करै बिन दूध सुचीति ॥
ले माता सुत कंठ लगावै। दूध हेति बालकु बिललावै ॥
माँगै दूध अवरु नहीं जानै। अहारु होइ रँग रलीआ मानै ॥
सवा बर्ष दूध है आदि[1]। नानक लगा अन्न कै सुआदि ॥५७॥
जोबन अवस्था है फिरि माता। सुत कुटंब मन महिं हित राता ॥
माया के संगि रहित बिरागी। जोबन माते बाजी हारी ॥
पर ग्रिह जाय न राखै शील। काम क्रोध सँगि सदा कुचील ॥
जोबन सँगि फिरै अहंकारी। नानक जोबन बाजी हारी ॥५८॥
बिर्ध अवस्था काम चित धारै। रत जन्मु कौड़ी[2] पै हारै ॥
काम सुआद बहु जोनी भवै[3]। गर्धप श्वान काग ज्यों लवै[4] ॥
पर त्रिय सँगि लगावै प्रीति। जमपुर जाय दूख की रीति ॥
कहु नानक इहु बिर्ध सुभाउ। मरि मरि जनमै जोनी पाउ ॥५९॥
तीन अवस्था के गुन लागे। बालक लोभ दूध नहीं त्यागे ॥
जोबन ते जो कामु नहीं साधिआ। बिर्धि क्रोध नहीं नामु अराधिआ ॥
तीन गुनाँ के लछण फीके। अंतकाल बैरी है जी के ॥
सुणि गोरख सचु नानक आखै। इस टोली[5] ते सतगुरु राखै ॥६०॥
काम कौ जीतै सो बलवंतु। क्रोध साधै सो अनभउ संतु ॥
लोभ कौ त्यागै रहत का शूरा। मोह बशि करै सोई जनु पूरा ॥
पंच दुष्ट कौ बशि करि बाँधै। उलटि बान गगन कौ साधै ॥
धूप छाँव[6] सभ सम करि सहै। सुणि नानक इउँ गोरख कहै ॥६१॥
सुणि पुरुषा पूछउँ इक बाता। किह मुखि आवत किह मुखि जाता ॥
कवन अस्थानु जितु करै बसेरा। कवन हाटु जितु सहजे फेरा ॥

(१) भोजन, अहार। (२) कौड़ी के समान कीमत वाले तुच्छ विषय भोगों के बदले। (३) भ्रमता या घूमता रहता है। (४) मंडलाता रहे, एक से दूसरी दूसरी से तीसरी आदि योनियों में ही भटकता फिरे जैसे काग एक दीवार से दूसरी पर। (५) काम आदि का यूथ, गरोह, जमाअत। (६) सेत श्याम (सहस दल कमल से भाव है)। यहाँ धूप छाँव के सहवे से बाहरी धूप छाँव को सभ प्रकार से सहने का भाव तितिक्षा पर कदापि नहीं और न सुख दुख रूप धूप छाँव से यहाँ कुछ मतलब है क्योंकि तितिक्षा का तो यहाँ कोई प्रसङ्ग ही नहीं है किंतु इसके पूर्व की दोनों पंक्तियों के साथ स्थानिक भेद की आवश्यकता थी जो इस पंक्ति में पूरी की गई है "नील अनील अगनि इकठाई। जल निवरी गुरु बूझ बुझाई।" इस गुरू ग्रंथ साहब के गुरु बचन अनुसार सहसदल की स्थिति का ही सूचन कराना प्रमाणित है।

तिसका बरनु कवन संगि हेतु। सुरष सब्जु क्था कहीअ सेत ॥
पूछै भरथरि आदि सरूप। इस पुरुष का बरनु किसु रूप ॥६२॥
उत्तर[1] मुखि आय दखण मुखि गवणु। नाभ कवल ग्रिहु सोधै भवणु ॥
त्रैसत[2] अंगुल अंदरि नैसानु। बाहरि द्वादश रची चौगानु ॥
ब्रह्मंड खण्ड महिं डेरा करै। शब्दि पछाणि लै भउजलु तरै ॥
सप्त दीप पलक महिं जाय। कहु नानक ताकी बूझ न पाय ॥६३॥
चारि पदार्थ जिसु हथि आए। साधू चरनी जो चितु लाए ॥
उह कौन ठौर जुगति कितु राखै। जिसनो आपि विखालै[3] सो जनु लाखै ॥
नाम पदार्थ जिह्वा लीना। काम रत्न इंद्री कौ दीना ॥
अर्थ पदार्थु जग की रासि। मुक्ति पदार्थ साधू पासि ॥६४॥
काम जीतै सो जनु परवाणु। क्रोध त्यागै सो पुरुष प्रधानु ॥
जिह्वा बंधि रत्न[4] वशि करै। गुर प्रसादी अजरु जरै ॥
काम रत्न जब माथे आवै। तब माथे महिं चमक दिखावै ॥
नानक कहै सुणहु जन ज्ञानी। नाम रत्न की जिसु मिति जानी ॥६५॥
बाँवे[5] अंग पुरुष के दीनी। इन मूढ़े अपनी करि लीनी ॥
चले न संगि पाछे ही रहै। अनिक जतन करि अपनी करै ॥
कोटि उपाय करि पाछे छोड़ै। चलती बारी हाथ पछोड़ै[6] ॥
कहु नानक इहु रत्नु निआरा। जो सत थापहि करहि हमारा ॥६६॥
चार पदार्थ भये इकत्र। मोच पदार्थ चहुँ का छत्र ॥

---

(१) शरीर में जीव के प्रवेश विषयक प्रश्न के उत्तर में कहते हैं कि उत्तर अर्थात् उपरले मुख (दशम द्वार मार्ग) से जीव शरीर में आता है और दक्षिण नाम नीचे की ओर नदी के प्रवाहवत् जाता है—नाभि कमल को अपना घर मंदिर बनाता है। (२) दश अंगुल पवन को अंदर खैंचने और बारह अंगुल (पवन को) बाहर फेंकने में चौगान का खेल खेलता रहता है, इसी को अपना घोड़ा बना कर कभी ऊपर ब्रह्मण्ड में जा टिकता है और कभी नीचले षट चक्र रूप खंडों में आन डेरा करता है—ऐसे सदैव भ्रमण करता रहता है—जब पूर्व उक्त रीति से हंस शब्द को पहचान लेवे तो संसार सागर तर जाता है। (३) दिखलावे। (४) जिसकी रसना नाना प्रकार के रस स्वाद आदि भोग पदार्थों में चलायमान रहती है वह अवश्य विषय भोगों का शिकार होता है, इस कारण जो काम रत्न को बश में करना चाहता है उसके लिये आवश्यक है कि जिह्वा को बाँध देवे, भाव यह कि प्राण रक्षा मात्र तथा आश्रम अनुसारी प्रवाह पतित कार्यों के निर्वाह मात्र के वास्ते ही आहार्य पदार्थों का सेवन करे नाँकि स्वाद आदि की चाह में। (५) स्त्री अथवा माया, दौलत। (६) पश्चात्ताप के समयवत् हाथ मारना, इधर उधर हैरानी से हाथ को हिलाना जुलाना।

चार पदार्थ साध कौ दीने । चारि रत्न साधू वशि कीने ॥
नामु मुक्ति लै काम कौ त्यागै । अर्थ रत्न पर साधा आगै ॥
कहु नानक चहुँ का वरतंतु । कोटि मधे कोई बूझै संतु ॥६७॥
नामु रत्न जिसु जन हथि चढ़िआ । उह गर्भ कुंट महिं बहुड़ि न पड़िआ ॥
नाम की महिमा सुनहु जन भाई । नाम की शोभा वेद सुनाई ॥
नाम का महरम संत को होवै । उह पड़ै न जोनी बहुड़ि न रोवै ॥
नानक कहै सुनहु रे मीता । नाम का महरमु कोई हरिजन कीता ॥६८॥

सुणि नानक इउँ गोरख पूछै कवन रूप की बाणी ।
कवन जुगति का शब्दु कथीअले अंतरि सुन्न ध्यानी ॥
कवन मंत्र उपदेशु कवन है कवन पुरुष का ध्यानी ।
बोलै गोरख तू सुणि नानक कवन जुगति का ज्ञानी ॥६९॥
सुणि हो गोरख नानक बोलै कवन पुरुष की बानी ।
इआ रूप ते शब्दु उपन्ना अतरि सुन्न ध्यानी ॥
आदि मंत्र उपदेशु शब्दु है सुनि सुनि धरहि ध्यानं ।
बोलै नानक सुणिहो अउधू सतगुर वचन ज्ञानं ॥७०॥

कोटि बिशन कीने अवतार । कोटि ब्रह्म करहि जैकार ॥
कोटि महेश नित बन्दन करहि । कोटि इंद्र छत्र शिर धरहि ॥
कोटि देवते धरहि ध्यानु । कोटि जोगी जंगम भगवानु ॥
कोटि ऋषीशर शब्द कौ ध्यावहि । तउ नानक शब्द का भेदु न पावहि ॥७१॥
क्योंकरि सरु[1] अकाश कौ संधै । क्योंकरि पञ्च दुष्ट कौ बँधै ॥
क्योंकरि नीरु[2] चढ़ै फिरि ऊँचै । क्योंकरि मनूआ महलि[3] पहूँचै ॥
क्योंकरि पुरुषा अजरु जरै । चंचल मिरग क्योंकरि बशि करै ॥
क्योंकरि निज घरि पावै वासु । सुणि नानक क्यों कवल बिगासु ॥७२॥
गुर का शब्दु बान हथि गहै । मिरगी मिरगु[4] साध घरि बहै ॥
पंच दुष्ट जीतै गुर ज्ञान । तहँ शब्दु अनाहदु सुन्न ध्यानु ॥

---

(१) बाण–सुरत रूप कानी के साथ शब्दरूपी फल जोड़े हुए से भाव है । (२) प्राण-अपान रूपी पवन जो जल प्रवाहवत् सदैव चलायमान रहता है (शरीर में) पाणी कहा जाता है जैसा कि "पाणी प्राण पवन पति बाँधे" इस श्री गुरु ग्रंथ साहब गत गुर प्रमाण से सिद्ध है । नीर नाम नेत्र ज्योति का भी है जैसा कि पीछे युक्ति तथा गुर प्रमाण से दर्शाया जा चुका है । इस जगह नेत्र ज्योति से ही भाव है । (३) महल नाम मुकाम का है परन्तु यहाँ मन के पास अपने मुकाम में पहुँचने के विषय में प्रश्न है सो मन का मुकाम सहस्र दल है । पहिले पद से संबंध भी इसी का है । (४) इन्द्रियाँ तथा मन ।

चंचल मनु कौ अस्थिरु राखै । गुरमुखि सचु रसायणु चाखै ॥
पूछै नानक सहज सुभाय । गुरमुखि मारग देहु बताय ॥७३॥
चहु[1] का संगी चहुँ संगि हेतु । चारे राखै अस्थिरु खेतु ॥
मिरगु[2] अंगूरी देइ न खाणि । चारे पुरुष अमर जरि जाणि ॥
बोलै गोरख देहु बीचार । कहु नानक से कवण हैं चारि ॥७४॥
दया धर्म धीर्य संतोष । सचु संगि प्रीति न लागै दोष ॥
दया करै अरु धर्म कमावै । सतु संतोखु आत्मे लिआवै ॥
अपना अंगु चारि नहीं त्यागहि । जे मनु दे चउहाँ कौ लागहि ॥
बोलै नानक चहुँ की रीति । जेकरि मनि आवै परतीति ॥७५॥
मूसा[3] मञ्जारी कौ बंधै । क्योंकरि बाणु गगन कौ सधै ॥
क्योंकरि नगरी[4] फिरै ढँढोरा । क्यों वशि आवहिं नगर के चोरा ॥
सुणि पुरषा क्यों अजरु जरै । असुरा सिध क्यों उलटी तरै ॥
बोलै गोरख तत्तु ज्ञानु । क्योंकरि दशवें धरै ध्यानु ॥७६॥
सुन का महरमु को विरला होवै । सुषमन जागै सहजे सोवै ॥
साध संगति मिल अजरु जरै । गुर प्रसादी उलटी तरै ॥
गुरमुखि नगरी फिरै ढँढोरा । ताँ वशि आवहिं नगर के चोरा ॥
बोलै नानक सुणि गोरख साखी । इउँ मूसे मञ्जारी वशि राखी ॥७७॥
क्योंकरि पुरुषा शशीअर[5] सुर फूटै । क्योंकरि आवागवन ते छूटै ॥
क्योंकरि दुबिधा दुर्मति तोड़ै । क्योंकरि सहजि[6] कला मन जोड़ै ॥
क्योंकरि चलते कौ ग्रिह राखै । क्योंकरि सचु रसायणु चाखै ॥

---

(१) चारों का नाम आगे मूल में हैं। (२) दया धर्म धीर्य सत्त संतोष प्रीति आदि आत्मिक गुण रूप अंगूरी को ना खाने देवे। भाव इन गुणों के सहज सुभाव भीतर प्रगट हो आने पर मन इन्द्रियों से चौकस रहै। बंदर बंदरियों के सहज सुभाव कदाचित नहीं पलट सकते, चाहे वह जंगल बासी हों चाहे वह हमारे अपने पाले हुए हमारे अधीन बरतने वाले। चुकसाई सदैव आवश्यक है। (३) मूसना नाम चोराने या ठगने का है सो जिसने माया मोह में अपने आपको ठगाया हुआ है ऐसा मूसा हुआ मूसा यहाँ जीव है। सो जीव नित्य मिआऊँ मिआऊँ (मैं-मैं) करते रहने वाली हउमैं रूप मोहनहारी माया को किस प्रकार बाँधे ? (४) इस पिंड रूप नगरी में किस प्रकार सत्य नाम की दुहाई फिरे भाव किस प्रकार घट के भीतर अनहद शब्द खुले। (५) सहसदल कमल का विकास कैसे हो, सेत श्याम पद का कैसे साक्षात्कार हो, इड़ा पिंगला की संधि कैसे फूट कर आगे का मार्ग मिले यह रहस्य है। (६) सहज जोग युक्ति, सहज बाणी से भी भाव है क्योंकि सहज विद्या सहज बाणी ही है।

बोलै गोरख अंम्रित गाथा । क्योंकरि पार उतारहु साथा[1] ॥७८॥
शब्दि परचि शशीअर सुर फूटै । ज्ञान परचि आवागवन ते छूटै ॥
गुर ते दुबिधा दुर्मति तोड़ै । एक निमिष चित हरि सिउँ जोड़ै ॥
बोलै नानक अंम्रित बाणी । जोग जुगति की इह नीशाणी ॥७९॥
षट दर्शन की रहत बषाणी । बैरागी जोगी जंगम ज्ञानी ॥
तपसी जैनी अरु ब्रह्मचारी । मोनी उदासी डंडाधारी ॥
वेद बषाणी[2] मिश्र[3] पाँधे । सचु न पावहि बिनु मनु साधे ॥
संन्यासी मनि त्यागै आसा । प्रणवत नानक दासनदासा ॥८०॥
सदा हजूरी सतगुर[4] चरणी । संत टहल सतगुर की शरणी ॥
मन की दुबिधा दूर त्यागी । शब्दु बीचारहिं से बड़भागी ॥
अठसठ मजनु अंतरि धारै । नानक से बैरागी जगत ते निआरे ॥८१॥
जोगी जुगति करे बन्धेजु । राजस सातक त्यागे तेजु ॥
चौथे पद महिं जाय समावै । सो जोगी क्योंकरि घर पावै ॥
घर दर महली होय सुहेला । गगन सुन्न का परसै मेला ॥
पंजे[4] सत्ते[5] करे अहारु । नानक जोगी त्रिभवन सारु ॥८२॥

---

(१) शिष्य संप्रदाय रूप अपने संगी अथवा मन इंद्रियाँ आदि जो जीव के साथ ही पूर्ण ज्ञान प्राप्ती परयंत रहते हैं। (२) वेदपाठी। (३) ब्राह्मण वंश में उत्पन्न होकर भी जो ब्रह्माचार से शून्य नाम धारिक ब्राह्मण होते हैं उन्हें मिश्र कहते हैं और जो ब्रह्मज्ञान से तो शून्य होते हैं परंतु बाह्य ब्राह्मणिक आचार संयुक्त होते हुए तीज त्योहारादि के अनुसारी लोक तथा कुलाचार के प्रवर्तक होते है पाँधे कहलाते हैं। (४) सहस्रदल में सुरत को स्थिर रखने वाला सदैव काल मालिक का हजूरी सेवक होता है—यही भीतरीय (सच्ची) संत सेवा और यही सतगुर की सच्ची शरण का धारण है। (४-५) पाँच धुनें शब्द की हैं:—१ काकली=सूक्ष्म शब्द ध्वनि; २ कला=मीठा और अस्फुट ध्वनि; ३ मन्द्र=गंभीर शब्द ध्वनि; ४ तार=अति उच्च शब्द ध्वनि; ५ एक ताल=बाजे गाने आदि के एक संग ताल स्वर की ध्वनि। यह पंच शब्द ध्वनि हैं। सात स्वर यह हैं:—१ निषाद, २ ऋषभ, ३ गान्धार, ४ षड्ज, ५ मध्यम, ६ धैवत, ७ पंचम। १ मोर के शब्द में षड्ज स्वर बोलता है; २ बैल ऋषभ शब्द को बोलता है; ३ भेड़ बकरी गान्धार स्वर में बोलते हैं; ४ क्रौंच पक्षी मध्यम स्वर को बोलता है; ५ घोड़ा धैवत स्वर को बोलता है; ६ कोयल बसंत ऋतु में पंचम स्वर में बोलती है; ७ हस्ती निषाद स्वर को बोलता है। यह सातों स्वर और पाँच धुनें जो बाह्य गायन आदि में गायक लोग गाते हैं वास्तव में बाहर प्रतिबिंब मात्र ही इनका प्रचार है वास्तविक सुर ताल जो बाह्य प्रतिबिंब का बिंब रूप मूलभूत है वह सब के भीतर घट में गुप्त रूप से सदैव होते रहते हैं और सुरत की एकतार अंतर मुखता में उनका स्पष्ट भान होता है। अंतर घट में उनके भिन्न २ दरजे हैं; उनके अनुसार न्यारी २ ध्वनी श्रवण में आया करती है। द्रिष्टांत

जंगम जग्य करै मन माहीं । जाय बिहंगम बिनशै नाहीं ॥
जुग जुग जीवै अस्थिरु रहै । सतगुर की आज्ञा शिर पर सहै ॥
जतु सतु संजम सुरति का बेता । गगन मँडल में राखै चेता ॥
सदा सुचेत चढ़ै अकाश । नानक जंगम पूर्ण आस ॥८३॥
तपसी तामस[1] त्यागि समावै । सुन्न महलि चढ़ि ताड़ी लावै ॥
गुर प्रसादी जुग जुग जीवै । अमरु होय तब अस्थिरु थीवै ॥
खेचर[2] डीठ उलटि सरु बंधै । पंच दुष्ट कौ वशि करि बंधै ॥
सतगुर मिलिश्रै तमकि[3] मिटि जाई । नानक तपसी कौ मिली बड़ाई ॥८४॥
जैनी जीश्र दया मन माहीं । तीरथ मजनु करणि न जाई ॥
संजम जुगति सदा इउँ रहते । नहीं सुहेल[4] सदा दुख सहते ॥
कर्म धर्म ते रहत निश्रारे । नानक जैनी फिरहि बेचारे ॥८५॥
ब्रह्मचारी सो ब्रह्म पछानै । इत उत सुखीश्रा रलीश्रा मानै ॥
ब्रह्म कौ समझै सो बसै सुमेर । उह बहुड़ि न आवै भउजल फेरि ॥
...गल ब्रह्म समझै मन माहीं । ब्रह्म बिना दूसर किछु नाहीं ॥

...यँ समझो :—सुषमना नाड़ी तम्बूरे का साज़ है जैसे तम्बूरा के पेट पर हाथीदांत का ...ना हुआ सूक्ष्म तारों को उभारे रखने वाला एक अड्डा होता है ऐसेही नाभि के नीचे ...वेत बरन वाली तेजोमई कुंडलनी शक्ति है (वा सर्वनाड़ियों का आधार भूत धरणी ...ला उक्त अड्डा है)— मूलाधार से संयुक्त सूक्ष्म नाड़ियाँ सुषमना के साथ गुथी हुई ब्रह्म ...ध्र परयंत पहुँची हुई हैं ब्रह्म रंध्र इस आभ्यांत्रिक तम्बूरे का ऊपरला सिरा है। इस ...परले सिरे के उतर दक्षिण भागों में ब्रह्मांडी चक्र रूप खूँटियाँ लगी हैं जिनका संबंध ...नीचे के पिंडी मंडल गत चक्र रूप (अड्डे के) घरों के साथ है। जिस २ घर की तार ...सुरति के हाथ से हिलाई जाती है वही २ स्वर ताल भीतर गूंजने लग जाता है। बाह्य ...राग में मन को खैंच करि एकाग्र करने की शक्ति सभ के अनुभव सिद्ध है। अब जो ...तरीय शब्द की महिमा से अज्ञात इसे निंदित समझते हैं किंचित अनुमान करके ...खें कि यह किस प्रकार का मोहनी राग घट में होता होगा जिसका कि अहार करना ...श्रीगुरू महाराज आज्ञा दे रहे हैं। यही असली अहार यही सच्चा भोजन है जो कि ...जीवन का आधार है। बिना उस्ताद (पूरे गुरू) के यह तम्बूरा नहीं बज सकता बल्कि ...कोई यत्न (अपने आप) करे भी तो तारें टूट जाने का भय होता है। भेद बजाने का ...प्रगट कर दिया जाता है फिर भी भेदी से पूछ कर ही कीलिश्रां श्रोड़नी चाहिये :— "नउँ दर बंदि दसों दर खुलै अनहद शब्द बजावनिश्रा"—"अनहद वाणी थान ...निराला। तां की धुनि मोहे गोपाला ॥" यह श्रीगुरू ग्रंथ साहब के संक्षिप्त बचन हैं भेद ...शब्द खोलने, शब्द का स्थान तथा महात्म इन में सभ कुछ है। संसकारी के लिये ...बहुत कुछ है, असंसकारी को खोज करनी उचित है। (१) हंकार, क्रोध। (२) आसमान ...में बिचरने वाली दृष्टी, दिव्य चक्षु, शिव नेत्र। (३) वृत्तिका क्रोधाकारा परिणाम, क्रोध से नीचली हालत होती है, (क्षोभरूपा)। (४) सुखी।

सगल घटा महिं ब्रह्म पछानु। नानक जुग जुग परम निधान ॥८६॥
मोनी मन का मारै मानु। त्रिकुटी[1] घाट करै इस्नानु ॥
अठसठ मजनु हिरदै धारै। सो मोनी जगत ते निआरे ॥
सगल जुगति लै मन महिं राखै। गुरु मिलि सचु रसायण चाखै ॥
मन ते चंचल चाल मिटावै। दूजा त्यागि एक घरि आवै ॥
मोनी :के घरि सदा अनंदु। नानक चीनै परमानंदु ॥८७॥
सो उदासी जो उद्यान[2] महिं रहता। दुख सुख समसरि शिर पर सहता ॥
हर्ष सोग ते रहै निरारा। उदास कर्म का बड़ा पसारा ॥
दे परदछणा चढ़ै अकाशि। सोलह[3] बारह एकै रासि ॥
सो अमरु भया तिस शिर नहीं काल। नानक उदासी चीन दयाल ॥८८॥
पंडित पाठ पढ़ै अहंकारी। सुशब्दु न चीनै हउँ मनि धारी ॥
दुबिधा सुणहिं न करहिं ज्ञानी। शब्दि छोड़ि लागे अभिमानी ॥
बादु बिबादु मन माहिं बसाना। नटूए की गति देखि भुलाना ॥
कहु नानक किछु समझै नाहीं। पाठ पढ़ै पढ़ि भूले जाहीं ॥८९॥
सो संन्यासी जो सुन्न महिं बासा। तामस त्रिश्ना लोभ ग्रासा ॥
हउमैं निंदा भरमि भुलाना। करि भगवे बसतरि अंत पछुताना ॥
रहिआ पास भरवंत[4] निआरा। पंच न सोधे लदिआ[5] हंकारा ॥
नानक इह मति किसे न पाई। आपु छोड़ि हरि की शरनाई ॥९०॥
सुणि हो अउधू शब्द का भेदु। सदा अनंद नाहीं किछु खेदु ॥
शब्दु पढ़हु सिमरहु धर चीतु। शब्दु पढ़े मुख रसन पवीत ॥
सुणि करि शब्दु देखहु बीचारि। नानक शब्दु लँघाए पारि ॥९१॥
गोरख भरथरी होए हरषवंत। मिले भगत भेटे गुर मंत ॥
धन्य पुरुष जिन दीक्षा दीनी। धन्य मत्ति बुद्धि परबीनी ॥
धन्य अस्थानु जितु करहि बसेरा। धन्य गुरू धन्य तूँ चेरा ॥

---

(१) त्रिबेणी घाट "तीन नदी तहि त्रिकुटी माहि। अहिनिश कशमल धोवै नाहि" इस श्रीगुरू बचन अनुसार। (२) जंगल, बियाबान। (३) इड़ा पिंगला। (४) 'भगवंत" पाठ भी है=भगवंत तो पास ही है परंतु अज्ञात वश्य ते यह अपने आपको न्यारा ही समझ कर भ्रमता रहता है अथवा भाव यह कि संसारी लोगों तथा पदार्थों की चिन्ता करते चित्त से तो वह सभ के पास ही (सभ में फँसा हुआ) रहता है परंतु बाहर से वह अलग होकर भ्रमण करता रहता है। (५) और काम आदि पंच को साधा नहीं अथवा सत्त पद के हेतु पंच शब्द को शोधा (खोजा) नहीं परंतु वृथा हंकार से लादा गया है—तात्पर्य क्या कि केवल भेष मात्र के धारण मात्र से ही अपने आपको कृतकृत्य मानकर फूल बैठा है।

धन्य गुरू जिस का तुझै उपदेशु । सुणि नानक सिद्ध कहि चले अदेशु ॥६२॥
सुणहु सिद्धहु सचु नानक प्रणवै उपज रही हैरानी ॥
उह अगम अगोचर अलष अपारे ताकी गति किनै न जानी ॥
उह अपर[१] अपरंपर परे ते परे तिसु दर्शन किसे न देखिआ ॥
उह पूरन पूरि रहिआ सभ अंतरि तिस कौ रूपु न रेखिआ ॥
सभ मैं लोच रही मन माहीं उह परगट किनै न देखिआ ॥
सुणि अउधू नानक इउँ बोलै हमरै इही अधारो ॥
हम जिस कौ मिलते तिस कौ कहते सचु नामु करतारो ॥६३॥

॥ १ ॐ सतगुर प्रसादि ॥

जद बाबे सिद्धां नाल गोष्ट कीती दिल दा गुमर (जोश) कढकै श्री बावेजी की उस्तत कीतीओने, आदेश २ करकै सभै उडारियाँ लैके चले गए। तां बाबा ते मरदाना दोवैं जगत दे जीआंदा उधार करदे होए रामेश्वर दा दर्शन करन चले। तां बाबा देखै जो शिवरात्रि दूजी आई है महांदेव का मेला भर रहिआसी तितसमैं श्री बावाजी श्री महादेव का दर्शन करके बाहर एकांत बैठे। तिथेही श्री गोरखनाथ ते भरथरी दोवैं आय निकले। आन आदेश २ कीतो ने तां बाबे आखिआ आदि पुरुष को आदेश आईए नाथजी बैठो बड़ी किरपा कीतीजे। तां नाथ जी बोले—तपाजी! सभे सिद्ध जिधर तिधर रम गए ते साडे चित विच फेर एहा आही जो तपाजी का फेर दर्शन करिए सो तुसाडा दर्शन होया। तपाजी तुसीं परम पुरुष हो, सानूं तां निश्चा है, होर सिद्धां का सुभाउ आप जाणदे ही हो। किसे का सतगुणी है। कोई रजोगुणी है ते तुसीं

---

(१) शरीर इंद्रियों से परे मन है, मन से परे बुद्धि, बुद्धि से परे आत्मा, आत्मा से परे परमात्मा, परमात्मा से परे कुछ नहीं अबाच पद है। जाग्रत अवस्था में शरीर इंद्रियाँ प्रधान होती हैं स्वप्न में यह सभही नहीं, मन ही प्रधान है। सुषुप्ति में अपनी रचना समेत मन का अभाव और अव्यक्त सरूपा बुद्धि प्रधान होती है। जब अंतर मुखता के अभ्यास में सूक्ष्म हंकार रूपा बुद्धि भी छूट कर सर्प कुंजवत न्यारी होकर चेतन सत्ता भासने लग जाती है तब सभ से परे वही आत्मा है; वह भी सतगुरुपदिष्ट युक्ति से अपने आप में उलट कर मगन होकर आप मात्र रह जाता है—वह परम आत्मा है। उस आपाभाव से रहित आप मात्रपना से भी जो और गाढ़ घन अनानंद मात्र भाव है वह अबाच पद धुरधाम है जिसके परे बस और कुछ नहीं। इसी को ही अपना आधार श्रीगुरू महाराज ने बतलाया है; और सभ को इसी सत्य नाम के प्रचार का अपना सुभाव कहा है—हमने (परे ते परे, ते परे, ते परे उसके परे कुछ नहीं अपर वस्तु है) इन नीचे से ऊपर की सभ कोटियों की व्याख्या अल्प अविकाशता के कारण जान बूझ कर नहीं की। सर्व संमत संक्षिप्त शब्दों में संसकारी बुद्धिमानों के लिये बहुत कुछ है। इतर अधिकारी "जो खोजे सो पावे।"

गुर परमेशर हो। स.नूं तां एह निश्चा होया है जो तुसीं हमारे गुरू नाथजी हो, तुसाडे वचन मोहणी हैं, सभ सिद्धांदा मन मोहिआ गया है। ते साडे चित चाहना वधदी जांदी है। जो श्री तपाजी दे वचन होर भी सुणाए ते होर इथे वचन अम्रित पीजीए। जैसे अम्रित पीदे बस नहीं होंदी त्यों तुसाडे बचन सुणदे चाहना सुनणे दी वधदी जांदी है तित महल बाबे बिसमाद दे घर सिद्ध गोष्ट कीती।

॥ राग रामकली महला १ ॥

जोग मारग—सिद्ध गोष्टि[1]।

सुण हो जोगी जोग की चाला।
गुरमुखि जोगु कमावहु जोगी, ज्यों जल भीतरि कवल निराला ॥६४॥

॥ रहाउ ॥

आसणु सोधि निरालमु बहे। पञ्च तत्तु काया महिं दहे ॥
अरचे[2] के घरि परचे जाय। त्रिकुटी फूटी[3] सुन्नि समाय ॥
ससीअरु[4] फूटा कवल विगासु। त्रिकुटी फूटी निज घरि वासु ॥

---

(१) सिद्धों और गुरु साहब की गोष्टि कई बार हुई है। तुलसी साहब ने कहीं बाहर गोरखजी की गोष्टि होना इस बात पर खंडन किया है कि उनका परस्पर सम्वत नहीं मिलता, यह एक साधारण बात है—सिद्ध, योग बल से चिरजीविता को प्राप्त हैं, कल्प परयंत उनकी आयू बढ़ सकती है इससे अधिक युगों की चौकड़ी परयंत भी योगीजन अपनी आयू बढ़ा सकते हैं। और योग में यह भी शक्ति है कि इच्छा पूर्वक शरीर धारण कर सकता है जैसा कि सिद्ध तीर्थों के परबों आदि के समय शरीर धार कर अपने आपको पहुँचाया करते थे—उनको योग शक्ति तथा जिरजीविता का अभिमान और मान बड़ाई की कामना थी। जहाँ २ पर वह इस अपनी इच्छा पूर्ण करने को पहुँचते थे गुरु साहब भी (परमयोगी) 'जिनका विशेष उद्देश केवल गरब गंजन करने तथा जीवों को सीधे रास्ते पर लाने का था' वहाँ पर पहुँचकर उनके साथ चरचा करते और (उनको) परास्त किया करते थे जब तक उनका मद पूर्णतः निवित नहीं हो लिया और वोह एक करतार के सच्चे उपासक नहीं हो गये तब तक उन्होंने उनका पीछा नहीं छोड़ा। (सिद्ध अब भी हैं और कदाचित किसी को सिद्धि का चमत्कार दिखला कर तिरोधान हो जाते हैं) उन गोष्टिओं में से एक यह भी है जिसका समाचार इसी अध्याय की १४९-१५० नंबर की पौड़ी में आवेगा। (२-४) अरचा सोलां प्रकार की होती हैं और चन्द्रमा की सोलां कला होती हैं सो अरचा का घर चन्द्रमा के घर से भावित है। दूसरे अरचा अपने घर में तब आती है अर्थात् तब इसकी पूर्ण सिद्धि होती है जब कि इष्ट वस्तु आँखों में बस जावे—सो अरचा का घर दृष्टि का भंडार है जिससे गुरु साहब का अभिप्राय सहसदल कमल को कहने का है इस मंडिल में चन्द्र का साक्षातकार भी हुआ करता है इस कारण इसे शून्य मंडिलवत् चंद्र का घर भी गुरु महाराज अक्सर कहा करते हैं (और यहाँ तो गुरु महाराज ने सच्चाई को गुप्त रखने अर्थ चंद्र का घर भी नहीं कहा क्योंकि सिद्ध बड़े चालाक थे और जब तक

नाभ कवलु पवनु अरंभु । मूल पवनु नाभ अस्थंभु ॥
पश्चि तत्तु करि कीए विडाणु[1] । जोति जगाइ पति मति गति दानु ॥
घट मट पाए देह सवारी । सचो जोति त्रिभवण प्रभि धारी ॥९५॥
गुर के शब्दि प्रतीति मनु रचे । त्रिगुण चंचलु त्यागे चरचे[2] ॥
चोरी चंचलु करे त्यागु । कर्मु मणो सचु मस्तकि भागु ॥
ऐसा जोगु जुगति पछाणु । पञ्च मारि होवहिं परवाणु ॥
बंक नाड़ि रसु भेदु न पाय । भणति नानक जे निज घरि जाय ॥९६॥
इड़ा पिंगुला सुखमना तन बुधि । तीन[3] तरे सहंसा की सुधि ॥
त्रिगुण त्यागि चोथा पदु जाणे । नौं घरि ढूँढ़ि दशवें घरि आणे ॥
ऐसा जोगी जुगति निराला । दयावंतु पूर्ण किरपाला ॥
रहै बिहंगम कतहूँ न जाय । सुणि अवधू सचु जोगु कमाय ॥
ओऊ उनमो अपर अपारे । आदि पुरुष अपरंपर धारे ॥९७॥
अकथ कथा का कया बीचारु । आरे जाणै अपर अपारु ॥
गुर कै शब्दि रते मन माहीं । सचु जोगी सारु निज घरु जाही ॥९८॥
गुर प्रसादि परम पदु पावै । नानक जाँको आप मिलावै ॥
लालु गुलालु शब्दि गुर गूड़ा । गुर की भगति करे जन रूड़ा ॥
रूड़ी बाणी मन को ठहरावै । गुर का शब्दु प्रापति अघावै ॥
ऊँची[4] पवड़ी चढ़ै निरारा । गुरमुखि जोगी पावै पदु सारा ॥
ओपति परलो निमष मझारि । नानक जपीए शब्दि पिआरि ॥९९॥
निरंजन जोति शब्द सिरि शोरु । एकोही आपि दूजा नहीं होरु ॥
ता का न अंतु, न पारावारु । अगम अगाधि विअंतु अपारु ॥
गुरमुखि जोगी जोगु कमाउ । सिफ़ती रत्ता आतम राउ ॥
दशंतु आपि सहजि घरि पाइ । निर्मलु बाणी नादु बजाइ ॥१००॥

श्रद्धा आस्तिक भावना किसी को न हो उसके आगे भेद का प्रगट करना भी दोष रूप है इसलिये गुप्त रीति काव्य के अलंकार को यहाँ ग्रहण करली है। भरथरी को तो गुरू साहब के चरणों में श्रद्धा भी थी इसलिये उपदेश के ढंग को भी साथ २ वर्त्ता है) इस उक्त अरचे के घर में जब जाकर परचा सुरति का हो जावे तो त्रिकुटी के मंडल में प्रवेश हो जाता है और जब वहाँ के परचे से उसी प्रकार त्रिकुटी भेदन हो जाती है तो सुन्न मंडल में जाकर प्रवेश होता है। जब चाँद फूटा सहसदल के मंडल को सुरत ने बेधन किया त्रिकुटी में जा पहुँची। त्रिकुटी के फूटने पर निज घर (सुन्न मंडल में) समाती है।
(१) आश्चर्य कौतुक। (२) बादविवाद के झगड़े। (३) तीनों को सहसदल का सुख लेकर तेप अर्थात् साधे, वा सहसदल में ध्यान का धूनी तपावे। (४) इस प्रकार इसी ऊँची पौड़ी पर शरीर से न्यारा हो चढ़े तो सार पद परम पद को प्राप्त हो जाता है।

सुणि भरथर नानक एह बाणि। जित पावहिं पदु सो निरबाणि ॥
सचु निरंतरि रहे समाइ। कालु न ग्रसे पिंड न पाइ ॥
गुर मिल जोती जोति समाइ ॥

नानक भरथरि गोष्टि होई। मनु मानिआ नानक सचु सोई ॥१०१॥
रत्न पदार्थ ब्रह्म ज्ञानु। ज्ञान ध्यानु गुर शब्दु पछानु ॥
गुर के शब्दि रत्ता जनु तेरा। उरवारु पारु सभ उसही केरा ॥
तंतु मंतु पखंडु न छाया। आदि पुरुष गुर पुरुष मिलाया ॥१०२॥
कंचन[1] कोट रीसाल अनूप। आपे दीपक आपे धूप ॥
सचकोट कंचनु रीसाल[2]। हीरा रत्न माणकु विचि लाल ॥
हीरा लाल ज्वेहर सुभरु। माणक मोती भरिआ सरसरु[3] ॥
गुर शब्दी अचरजु डिठा सोइ। नानक कीमति कहणु न होइ ॥१०३॥
कंचन कोट सचे रीसाले। दर्शनु पाया लाल गुलाले ॥
लालु गुलालु सच गहर गंभीरे। सचु ठकुराई सचे मीरे[4] ॥
अमरापुरि[5] नगरी सचु अस्थान। तहँ जरा न मरन न आवन जानु ॥
तहँ नानक जुग जुग परम निधानु ॥१०४॥
अगम अपार अंतु कछु नाहीं। एह बेअंत न कीमति पाही ॥
अंतु न पाईऐ सदा बिअंतु। ता का अंतु न जाणै जंतु ॥
अगम अगाध बिअंत अतोला। नानक मुलि न पाईऐ गुणीं अमोला ॥१०५॥
असंख ब्रह्मे तिस केरी सेवा। बिशन महेश न पावैं भेवा ॥
सनकादिक जनकादिक देवा। जत्त किन्नर अरु पिशाच परेवा ॥
लता वली अरु सुर नर गंध्रिप। नानक अंतु न पावहि संम्रिथ[6] ॥१०६॥
एह तत्तु बीचार संत जन बोले। घरि दरि[7] सोत्री नाहीं डोले ॥
अकथ कथा की अकथ कहानी। अगम पुरुष अगम है बानी ॥

---

(१) सहसदल की कैफियत दिखलाते हैं:—स्वरण का सुन्दर कोट है, उपमा से रहित। (२) सुंदर। (३) सहस्रदल को गुरूजी सत्सर तथा नाभ कमल भी कहा करते हैं क्योंकि नभ मंडल में है। (४) पातिशाह। (५) स्वर्गापुरी (अमरापुर से वास्तव में तो सच खंड भावित होता है परंतु सचखंड निवासी आदि निरंजन की छाया ही यह निरंजनी जोति और उसका स्थान है इस कारण इसे भी अमरापुरी अर्थात देवलोक गुरूजी अक्सर कह दिया करते हैं। (१०३वीं पौड़ी से १०८ वीं परयंत सभ इसी अमरापुरी का वृत्तांत सुना रहे हैं)। (६) समरथ—बड़े २ शक्ति वाले भी उस कर्तार का अंत नहीं पा सकते। (७ इस घर के दरवाजा त्रितीय तिल से सुरती न डोले तो इस अकथ कथा का मरम पा जावेगा।

अंम्रित मथि मथि काढ़िआ तंतु[1] । बोले नानक अगमु बिअंतु ॥१०७॥
नाभ कवल[2] तहँ सतगुरु समुँदु । धरहर तिप्ते बरषे इंदु[3] ॥
धरहर बरषे सर भरे, सहजि उपजे कउलु ।
गगन द्वारै घरि चढ़ै, बिगसै ऊधौ कउल ॥
दे प्रदछिणा चढ़े गगनंतरि । अंम्रितु पीवै सहजि निरन्तरि ॥
दरसनु परसे गुरु प्रसादि । अस्थिरु जोगी आदि जुगादि ॥१०८॥
त्रैसत[4] उंगलि वाई खेलु । मनि सचु अहार करि (तासों) मेलु ॥
बोले खेले अस्थिर जाणु । तत्त सरूप निरञ्जन प्राणु ॥
आत्म राम सगल परवाणु ॥
सहजे सिवरण साच सरूपु । आदि अनील[5] अनाहदि धूपु ॥
अैसा जोगी जुगति पतीणा । निज महली अपने घरि लीणा ॥१०९॥
पूरबि चढ़े फिरि देखे दछणु । पच्छमि आवै गुरु का लछणु ॥
पच्छमि ते फिरि चढ़े सुमेरि । आवै परदछण के फेरि ॥
दह दिशि खोजि ढूँढ़ि फिर आवै । नानक सुन्न समाधि समावै ॥
अैसा जोगु कमायै जोगी । बहुड़ि न जन्मु न होयै रोगी ॥११०॥
जप तप संजमु सुरति बिचछणु । जोग मारगु का एहो लछणु ॥
बिषम[6] जोग अगम को पाए । सतगुरु भेटे नामु ध्याए ॥
अगमु निगमु जो जाणे वाचि । गुर प्रसादि काल को बाचि[7] ॥
माया मोह न ब्यापे सोगु । नानक प्रणवै अैसा जोगु ॥१११॥
क्योंकरि खोजी क्योंकरि बादी । क्योंकरि दुबधा दुर्मति त्यागी ॥
क्योंकरि दुभधा दुत्तरु तरिआ । क्योंकरि बाले जीवतु मरिआ ॥
कवन गुरू जिसु दीखिआ[8] दीनि । भरथरि प्रणवे तत्तु प्रबीन ॥११२॥

---

(१) अमृत को मथि २ कर हमने यह तत्त माखन निकाला है। (२) नाभ कमल में सत्सर नामक समुद्र है उसमें से यदि चंद्रमा प्रगट होकर वर्षा करे तो (३) धरती (सुरति) तृप्त हो जाती है। अब उस औंधे कमल को विकासित कर, अमृत वर्षा के लिए ऊपर प्रदछिणा क्रम से चढ़ने अर्थ फिर भरथरी को भी पूर्वोक्त साधन ही बतलाते हैं। (४) नाभी से जो श्वास हृदय परयंत उठता है ३+७=१० उंगल में उस पौण का खेल है, उसके साथ मिल कर मन सचु का अहार करे (नाम जपे)। (५) नीलिमा से रहित निर्मल जोति सरूप। (६) श्वास के साथ इस प्रकार चढ़ कर अगम स्वरूप को प्राप्त होना विषम योग मारग है। (७) जो विषम योग द्वारे अगम के निगम अर्थात् वेद (सत्य नाम) को पढ़ जाणे, गुरों की कृपा से काल कौन है जो उसको वंच (छल) सके। अथवा गुरुओं की कृपा से काल को बाचीओं (जवाड़ों) में लेकर पीस डाले। (८) दीक्षा।

गुरुमुखि खोजत राहु दसाया[1] । सहज मिले जग जीवनु पाया ।
दुविधा दुर्मति त्यागि समाया ॥
गुरमुख सोग विजोग प्रजाले । गुरमुख गति पति पाई नाले ॥
गुरमुखि दुनीआ दुत्तर तरिआ । शब्दि मूए फिरि बहुड़ि न मरिआ ॥११३॥
शब्द गुरू सचु दोनी दीना । सतगुर पूरे सचु पीना ॥
गुरमुखि खोजी सचु पछाणे । मनमुखि वादी तत्तु न जाणे ॥
चीने तत्तु गुर शब्दी मेला । शब्द गुरू सुरति धुनि चेला ॥
अंतरि रत्नु ज्ञान प्रचंडु । अंतरि नामु निधानु अखण्डु ॥
सुणिहो भरथरि नानक बोले । सचु निरन्तरि तत्तु विरोले ॥११४॥
नउँसर[2] सुभर दशवे चढ़िआ । गगन मँडल महिं वर्षा भरिआ ॥
तीनि[3] मेटि चउथे चउवारे । पञ्च सफा[4] जिणि मनु को मारे ॥
गगन मंडल महिं धरे ध्यानु । पारसु परसे त्रिभवणि[5] थानु ॥
पुरीआं[6] सप्त उपरि कवलासु । तहँ जोगी बैसे निरञ्जन दासु ॥११५॥
आठ अठारह बारह बीसा । बंकि नाड़ि त्यागी है तीसा ॥
बंक नाड़ि ते बाहरि भइया । सो ब्रह्म ज्ञानी ब्रह्म की मइया ॥
सुणिहो भरथरि नानक बोले । आत्म चीने तत्तु विरोले ॥
ऊरम[7] धूरम लागी ताड़ी । नानक जोगी जुगति बिचारी ॥११६॥
आसा पासा[8] मनसा खाय । पर दर्ब[9] न हेरे न पर घरि जाय ॥
चोरी चंचल चित्तु न रावै[10] । गुर प्रसादी सहजि समावै ॥
अैसा जोगी जोगु पछाता । सचै शब्दि अनाहद राता ॥
सहजे रहे निमाणी[11] सूता[12] । नानक कहै सोई अवधूता ॥११७॥

---

(१) दर्शाया, समझाया। (२) नौंसर सुभर अर्थात नौं दरवाजे गढ़िओंवत् छूछे करके अर्थात् इनमें से सुरत को खैंच कर दशवें द्वार में चढ़े। (३) तीसरा तिल, सहसदल, त्रिकुटी इन तीनों को मेट कर अर्थात् इनसे सुरत को खैंच करि चौथा चौबारा सुन्न मंडल है वहाँ पर जा पहुँचे। (४) पाँचों काम आदि की सफा (पंचायत) को जीत करि मन को मारे। (५) त्रिकुटी। (६) छः चक्र पिंड के, सप्तम त्रिकुटी का स्थान यह सप्त पुरिआँ हैं इनके ऊपरि कवलासु (कैलास) शिव का स्थान सुन्न मंडल है तहाँ पर स्थिति करे। (७) ऊरम धूरम आकाश पृथ्वी का नाम है इनके मध्य संधि में ताड़ी लागी, वा ऊरम नाम प्रकाश धूरम नाम अंधकार सो प्रकाश अंधकार से भाव श्याम सेत का है अरु श्याम सेत सहसदल का नाम है वहाँ ताड़ी लागी बस यही योग की युक्ति है। (८) आसा पासा (फाँसी) है और मनसा खाने वाला। (९) पराया धन। (१०) करै। (११) मान से रहित हुआ जीव जैसे दीन हुआ गिरा रहता है इसी प्रकार दीन अधीन भई। (१२) सुरति सहज घाट में पड़ी ही रहे।

जती सती सतवंता साड़ा। पश्चि इंद्री मारि निवाड़ा[1] ॥
सासु दानु गुरमुखि इसनानी। ब्रह्म का वेता ब्रह्म ज्ञानी ॥
बोले साचु न राई मिथ्या। सतगुर की इह आदि प्रीचा।
इह आदि पुरुष सतगुर की शिष्या ॥
जोग के लच्छन सुणिअहु पूता। नानक कहै सोई अवधूता ॥११८॥
चंचल चाय न पासे[2] खेले। कामनि दामनि गैइआ गुरु मेले ॥
चंचल नारि[3] न जाय अषाड़े। गगनंतरि धनुष सहजि महि हाड़े ॥
है इकंत शब्दु निरवाण। दरगहि पैझै पति परवाण ॥
ऐसे संजम रहे गुरु पूता। नानक कहै सोई अवधूता ॥११९॥
कनक कामनी सिउँ नाहीं गातु[4]। पर दरबु न हिरे न पर त्रिया रातु ॥
जिह्वया मुखहुँ न बोले असत्तु। हिरदै[5] नामु अनाहद मत्तु ॥
मनु माणकु मन ते पती आना। मन ते मनु मानिआ गुरमति समाना[6] ॥
गुरकी पखरि सचि शब्दि सिञाती। अविचल नगरी सचु जोग पछाती ॥
जोग मारग की ऐसी चाला। प्रणवति नानक सुणि हो बाला ॥१२०॥
शंभू की नगरीआ अपरम्पार थाऊँ। सुन्न ते उपजी अचरजु बिसमाऊ ॥
अरभउ जोगी नगरी महिं बसै। सचु भोजन तिप्ते अंम्रित रसै ॥
सुणि हो भरथरि ऐसा जोगु। मूँड मुँडाए जोगु न होगु ॥१२१॥
नानक बोले सची बाणी। सुणि हो भरथरि अकथ कहाणी ॥
किहा भया जे पिंड न पड़िआ[7]। जे जुग चारे भरमतु[8] फिरिआ ॥
जे अवरद सूणी[9] अवधि लिखाई। अंति कालि पिंड पड़ेगा भाई ॥१२२॥

(गोरख वाच)

कवनु रूप कवनु बिस्थारु। कवनु अरंभु कवनु अकारु ॥
कितु घरि बसै कवन अचारु ॥

---

(१) निवारे। (२) चंचल नाम लक्ष्मी का है सो उसकी उमंग ना धारे और पासे शतरंज चौंपड़ ना खेले। (३) चंचल नारि (वेश्या) के अखाड़े (तमाशे) में ना जावै (यद्यपि सिद्ध गोष्टी का प्रसंग है तथापि शिवनाभ को मुख्य रक्खा हुआ है) इस कारण ही राजनीति के (धार्मिक) ढंग पर भी उपदेश चल पड़ते हैं। (४) अंग नां लगावे। (५) हिरदे से भाव शून्य मंडल का है—शिर सच खंड, हिरदा सुन्न मण्डल और चरण सहसदल कवल पीछे कह आये हैं। (६) गुरमति के सम आया अर्थात गुरमति अनुसार बरतिया। (७) चिरजीवी हो गया। (८) चौकड़ी परयंत भी जो भरमता फिरा। (९) भला इससे भी और दशगुना (दश चौकड़ी युग) आयू बढ़ा लेवे तो क्या होगा आखिरकार तो एक दिन अवश्य शरीर छूटना ही है।

कवन सु राजा कवन सु महता। कवन पुरुष पुरुष पति होता॥
कवन सु बोले कवन सु पेषै। कवन सु जोति निरंजन देषै॥
कहाँ ते आवै कहाँ ते जाय। पिंड पड़े जीउ कहाँ समाय॥
एस कथा का देहु बीचारु। बोले गोरख ततु बीचारु॥१२३॥

(गुरू नानक वाच)

सचु रूपु पवनु बिस्थारु। पवनु अरम्भु शब्दु आकारु॥
गुरमति सची सचु आचार॥
गुरमुखि निज घरि महली बैसै। अमरु भया फिरि कालु न ग्रासै॥
मनु राजा पवना होय महता। निरञ्जन पुरुष पुरुष पति होता॥
बोले पवन अगनि भड़वाउ। सचु पेखे जोति निरञ्जन राउ॥
हुकमे आवै हुकमे जाय। पड़े पिंडु जीउ सचि समाय॥
अगम कथा एह कथी न जाय। सतगुर पूरे दीई बुझाय॥
नानक बोले सची गाथा। सुणि हो भरथरि गोरख नाथा॥१२४॥
जतु पाहारा धीर्य सुनिआर। अहरनु मति वेद हथ्यार॥
गुरमुखि सचु सची धर्मशाल। सचु कारीगरु सचु भंडसाल॥
भाँडे भाउ अंमृत तितु ढालि। घड़ीऐ शब्दि सची टँकसालि॥
अंम्रित दृष्टि सदा निहाल। नानक नदरी नदरि निहालु॥१२५॥
घरही रतन ज्वेहर लाजा। दर्शनु पेखति भये निहाला॥
आदि पुरुष केवल गुरज्ञान। अगम अतीतु निरञ्जन प्रान॥१२६॥
नवनिधि नामु अंम्रित भरपूरि। सतगुर पूरे भेटिआ सूरि॥
सुणि हो भरथरि नानक बोले। सहज सुभाय[1] (सु) तत विरोले॥१२७॥
सचु जोग मनि बसिआ आइ। रूड़ी बाणी आतम रीझाइ॥
जोगी मरै न आवै जाय॥
दर्शनु पाया गुर प्रसादि। अस्थिरु जोगी आदि जुगादि॥
नानक बोले तत्तु बीचारु। जोग जुगति सचि करणी सारु॥१२८॥
सुन्न समाधि अनाहद राते। सतगुर पूरे चरन पराते[2]॥
निधि गुण गाइ वेख हुजूरि। नानक गुरमति सचु सपूरि॥१२९॥
आठ पहिर हरि रङ्ग चलूला। गुर के शब्दि अभूल न भूला॥
सूर्य किरणि ज्यों जोति उजाला। हरि सिमरणु हरिजन की माला॥
आठ पहरि हरि नालि ध्यानु। ब्रह्म ज्ञानी का ब्रह्म ज्ञानु॥१३०॥

(१) "निरंतरि" पाठ भी है। (२) पछाते।

अंम्रित द्रिष्टि समसरि सभ देखे । सभ ते नीचु, न किस ही लेखे ॥
सगल की रेनु सगल की धूरि । सगल का प्रीतम नाँ किसहूँ ते दूरि ॥
सगल भवन का सषा सहाई । नानक राम नाम लिउ लाई ॥१३१॥

पंचि तीनि नउँ चारि समावै । धरनि गगन कल धारि रहावै ॥
जलि आकाशी सुन्न समावै ॥
जोगी शब्दु बजाए बीणा । गुर कै शब्दि अनाहद लीणा ॥
नानक साचे साचि पतीणा ॥१३२॥

अकथ कथा अगमु बीचारु । त्रिकुटी फूटी मुक्ति द्वार ॥
अंम्रित पीवै निर्मल धार । गुरमुखि देखै दशवाँ द्वार ॥
सहज सुभाय हरि हरि गुण गावै । नाभ कवल सतसर घरि समावै ॥१३३॥

शब्दु सुरति की साखी बूझै । मरमु दशाँ पंचाँ का सूझै ॥
दशवैं द्वारे चोवै[1] भाठी । तीरथ परसै त्रै सै साठी ॥
गगनंतरि गगन गवनि करि फिरे । जाय त्रिबेणी मजनु करे ॥
सहजि निरंतरि धरे ध्यानु । नानक ऐसा ब्रह्म ज्ञानु ॥१३४॥

उलटे कवल[2] जोति प्रगासु । हरि गुण गावै सहजि बिगासु ॥
सहजे सिफती धनुष चढ़ाए । गुर के शब्दि अनाहदु वाए ॥
शब्दु सुरति की साखी पड़िआ । नानक गरभि कुंडि नहीं गलिआ ॥१३५॥

राजसु निगमु कौ गुरमुखि बूझै । गुरमुख जाणै सभ कछु सूझै ॥
गुरमुखि रणु आतम गढ़ु जीते । पंच मारि सुखि सहजि समीपे ॥
गुरमुखि पावै दरगह मनी । उर वार पार का होवै धनी ॥
ऊँचा गढ़ु निज महिल विज[3] मंदरि । नानक गुरमुखि पावै अंदरि ॥१३६॥

गुरमुखि साचु महल्लीं वासु । गुरमुखि साचु सब्दु गुण तासु ॥
गुरमुखि अंभै अंभि[4] मिलाय । गुरमुखि मन्ने हुकम रजाय ॥
गुरमुखि घरि दरि पति परवाणु । गुरमुखि साचु शब्दु नीशानु ॥
गुरमुखि कंचन कायाँ सूची । गुरमुखि पौड़ी ऊँचो ऊँची ॥
गुरमुखि सचु शब्दु निस्तारा । नानक गुरमुखि पार उतारा ॥१३७॥

तपु तपु संजमु सुरति बिचचखु । सतगुर साधि भजा एह लखण ॥

(१) चुवै, टपकै । (२) सुरति को अपने कमल की ओर उलटे तो जोति का प्रकाश होता है । (३) दृढ़, सुन्दर । (४) जल में जलवत् अर्थात् परम जोति में सुरत रूपी जोति या शब्द की धार में सुरत की धार को मिलावै ।

अम्रित दृष्टि वर्षे तहँ बर्षा। पूरी (गति) मति पूरा पुरुषा॥
जोग मारग का एहो लच्छण। नानक जोगी जुगति विचच्छण॥१३८॥
अगम्र निगमु आगमु बीचारे। त्रिकुटी फूटी विमल[1] मझारे॥
मिले प्रीतम राम पिआरे। लशकरीआँ घर सँमलि सारे॥
सरवरि खोजि पाय नाम्रु मणीआ[2]। ताँ की किसे न कीमति गणीआ॥
वखरु[3] साचु करे वापारु। नानक पाए मुक्ति द्वारु॥१३९॥
कर्त्ता भुगता करने जोगु। करन करावनुहारु सभु होगु॥
आदि निरंजनु त्रिभवणु धनी। ता की उपमा केतक गणी॥
निर्गुण सर्गुण त्रिहुगुण ते दूरि। नानक अलिप्तु रहिआ भरपूरि॥१४०॥

धरहर वुठा[4] सरवर भरे, सरभरि कवलु उपन्न।
भउर जि आवैं आस करि, तिस विचि हंस इवन्नु[5]॥
विनु शब्दे भरमायै, भउर निरासा जाय।
विष की वाड़ी वेधिआ, जमपुरि चोटाँ खाय॥
भउर भवंता भालीए, भरमि भुला उद्यान।
विषु रसु चाखी भवरड़े[6], मन मुखि अंधि अज्ञान॥१४१॥
धरहरि वसे सरु भरे, हंस निरालमु लाल।
माणक मोती विकणे[7], गुरमुखि खोजि निहाल॥
सो हंसला न होय, सरवर हंस न तालु।
चढ़िआ नजर सराफ की, मोती मनु है सालु[8]॥
सरवरि हंस पछाणिआ, चुणि मुक्ताहलु खाय।
हुकमी बंदा दरि खड़ा, मन्ने हुकम रजाय॥१४२॥
उडरि हंसा गवनु कर, गुरमुखि पङ्ख सवारि।

---

(१) मलीनता से रहित सुन्न सरोवर—सहसदल कमल और त्रिकुटी में माया मल होती है परंतु सुन्न में माया का बल क्षीण हो जाता है इस कारण उसे विमल कहा है। (२) माणिक, रत्न। (३) सच्ची पूंजी, रास, पदार्थ। (४) जब सुरति सहसदल कमल में उलटती है तो कभी पूरे टिकाऊ में मेघ वर्षता जान पड़ता है उसी अवस्था की ओर ध्यान करके गुरु साहब इशारा करते हैं—धरहर मेघ का नाम है जो धरती को हरा कर देवे। (५) सरीखे—उसमें पहुँच कर इस प्रकार हो जाते हैं जैसे हंस; भाव यह कि जो जीव-रूपी भंवरे अभ्यास क्रम से अंतरमुख उलटते हैं उनकी हंस गति हो जाती है अर्थात विवेकी दशा को प्राप्त हो जाते हैं। (६) जीव-रूपी भँवरे ने। (७) खराब हो रहे हैं, त्यागे जा रहे हैं—भाव उनकी नाक़दरी हो रही है। अै! गुरमुखि उनकी खोज कर और देख। (८) सार।

घरु दरु संमल[1] हंसु ले, जाय मिलीए राम मुरारि ॥
देशि पराये हंसुला, भया उडीणा आथि ।
हंस उडारी संमली, जाय मिलीए संग साथि ॥
हंस सु मानसरोवरी, छपड़ि आया वासु ।
संगति काग कुपंखि की, किउँ छूटे तिन पासु ॥
हंस उडारी संमली, गुरमुखि मनूवा वारि ।
सचु खटोली[2] प्रेम की, अति अनूप अपार ॥
उडे से पुरुष निरंजनी, नानक जन्मु स्वारि ॥१४३॥
भारा भरिआ डूबसी, पउसी पारि सहूलु[3] ।
धरहरि बसे सर भरे, सहजि निपजै कउलु ॥
उन्मनि की बरषा करे, सहजि मनाए सउण ।
पञ्चे मारे मनु जिणे, सगली सिष्टि का भउण ॥
अमर अजूनी थिरु धनी, काल कर्म सिरि नाहिं ।
नानक अजरा वरु अमरु है, ना आवै ना जाय ॥१४४॥
गुरमुखि कवलु बिगासीए, सहजि करे प्रगासु ।
गुर के शब्दु रहसीए, चूके मोह पिआसु ॥
चउपड़ बाजी जिणि चले, घरि आय पतिवंत ।
अमरु अजाची प्रभु मिले, साचे सब्दि सुहंत ॥
गढ़ दोही पातिशाह की, वजहु[4] होया बषशीश ।
गुरमुखि प्रीतमु गलि मिले, नानक बीस इकीस ॥१४५॥
गुरमुखि सचु करे वापारु । गुरमुखि पाये महलि द्वारु ॥
गुरमुखि दाना गुरमुखि बीना । गुरमुखि शब्दे शब्दि है भीना ॥
अगमु निगमु सभ गुरमुखि जाण । नानक शब्दु सचु नीशाण ॥१४६॥
गुरमुखि परखे पारखु हीरा । गुर का शब्दु सुने मनु धीरा ॥
गुरमुखि मनु माणक परखाये । गुरमुखि कहीं न आवै जाये ॥
गुरमुखि असथिरु कदे न मरै । नानक गुरमुखि गुरू गुरु करै ॥१४७॥
गुरमुखि पवित्र परम पदु पाय । गुरमुखि पति सेती घरि पैधा जाय ॥
गुरमुखि जाय बसे निज महली । रवे अनाहदि सचि सिफति सुहेली ॥
सची गोष्टि सुणिहो भरथरि । बोले नानक अंत निरंतरि ॥१४८॥

---

(१) संभाल कर—घर के दरवाजे की होश कर। (२) छोटी सी पलंगड़ी। (३) हलके पार पड़ेंगे। (४) दरमाहा, तनख़ाह।

एह सची गोष्टि गुरमुखि होई। गुरमुखि विरला चीनै कोई ॥
सच खण्ड की वाणी अखण्ड। गुरमुखि जपहि खण्ड ब्रह्मण्ड ॥
सेतिबंधि रामेशर होई। प्रणवत नानकु तारे सोई ॥१४९॥
सेत बंधि रामेशर मेला। गोरख भरथरि इकु गुर[1] इकु चेला ॥
गोरख बोले सहजि सुभाय। हम भूले तू राहु दसाय ॥१५०॥
नानक बोले सची बाणी। सुणिहो गोरख निरंजन प्राणी ॥
गुरमुखि सचा जोगु कमाउ। निज घरि महली पावहिं थाउँ ॥
सतगुर पूरे की दीक्षा लेहि। अमरापुरि नगरी बसहि घर थेहि ॥१५१॥
तीन चार चउपड़ चउ महिले। पंज सत्त गुण ज्ञान अमुले ॥
नव -घर ढूंढे दसवैं द्वारि। तहिं अंम्रित पीवहि शब्दि अघार ॥
तहँ अनहद बाजे धुनि आकारा। नानक जोती जोति पिआरा ॥१५२॥
संतगुर पूरा बेपरवाहु। दह दिशि मेटि दसाए राहु ॥
सच बिभूति दर्श घरि आउ। ऐसा जोगी जोगु कमाउ ॥
पूरे भागि गुर सुणि उपदेश। सतगुर सेवि मिटे सभ भेष ॥
नानक बोले ब्रह्म बीचारु। ऐसा जोग जुगति सचु सारु ॥१५३॥
बेद कतेबा सोधि कुराणु। पण्डित पोथी पूछा पुराणु ॥
नउँ खण्ड धरती सगली फिररि। जोग न पावहि भरमि भ्रमि मरहि ॥
सतगुर पूरे शरनी आउ। लख चौराशीह जूनि न पाउ ॥
साध संगति महिं बासा पाय। आठ पहर हरि नामु ध्याय ॥
सचु जोग अटलु ध्याय अस्थानु। नानक प्रणवै सद कुरबानु ॥१५४॥
सुणि रे भरथरि गोरखनाथा। नाम बिना डूबे बहु साथा ॥
साधिक सिद्ध गुरू बहु चेले। गुर शब्दु विना दुखीए दुहेले[2] ॥
अंम्रित बाणी नानक बोले। सहजि निरंतरि तत्तु विरोले ॥१५५॥
कहाँ सुगगन दया का भउणु। कहाँ सु निज घरि जहाँ सुखि सउणु[3] ॥
गुरमुखि खोजि करे बीचारु। ऐसा ज्ञान निरंजनु सार ॥
पारस परसै दशवैं द्वारा। अंम्रितु पीवै निझर धारा ॥
सतिसरि न्हावणु पूरा होय। दुर्मति मैलु न लागै कोय ॥१५६॥
गुर के शब्दि गगनंतरि वासु। नामु जपे निज महली वासु ॥
भय ते निर्भय होय समाय। भय मानीए निर्भउ मेरी माय ॥

(१) एक गुरू साहब थे और दूसरा उनके साथ एक चेला मरदाना नामी था।
(२) अकेले, तङ्ग। (३) सोवना।

भय ते निर्भय पति परवाणु। भय ते निर्भउ दरि नीशाण ॥१५७॥
त्रिकुटी संधि त्रिबीणी रहै। नाभ कवल सतिसरि घरि बहै॥
अदलु करे राजा पक्ष्वाइण। परचे गुरमुखि परम पराइण॥
आप बीचारे परखे हीरा। ऐसा पूरख गुणी गहीरा॥
ऐसा शाहु सराफू सुभाय। सची दरगहि महलि बुलाय ॥१५८॥
आठ पहर हरि रङ्ग गुलालु। सहज ध्यानी सदा निहालु॥
रहे निमाणा सभ की रेणा[1]। रहे अलेप ज्यों जल कौलेणा[2]॥
दर्शन तिस का अपर अपारु। नानक साधू आपि निरङ्कारुं ॥१५६॥
संसार सागर ते रहे निराला। ज्यों जल भीतरि कवलु निराला॥
सूर्य किरण ज्यों जोति उजाला॥
मन वच करम मति का दृढ़ साचा। अंतरि प्रीति राम रसि माता॥
अंम्रित दृष्टि सचा दैयाला। दैयावंतु सचा किरपाला॥
हरि गुण गावै सदा विगासा। नानक[3] इह विधि कवल प्रगासा ॥१६०॥
अकलु पुरुप केवल गुरज्ञान। गुरमुखि बाणी परम निधानु॥
अनंद रूप को सदा जैकारु। आदि अंत त्रिभवणु सचु सारु॥
सत्ति सरूप अघाय भोगु। नानक आदि जुगादि जुगु जुगु होगु ॥१६१॥
प्रथमे[4] मानसरिवरि करे इस्नानु। दुतीये दत्तिण धरे ध्यानु॥
दत्तिण ते जा पछम चढ़ै। तउ हाट पटण की सोझ पड़ै॥
परदत्तण ते चढ़े गगनंतरि। तहँ नानक बैसै तपति निरन्तरि ॥१६२॥
नाभ कवल पवन अंकार। मन बुद्धि इंद्री मुक्ति द्वार॥
ब्रह्म कमंडलु अंम्रितसर पूरा। गगन अकाशि बजाए तूरा॥
इंदु बिंदु सुफने नहीं देखि। ताँ नानक पाया अलप अलेख ॥१६३॥

---

(१) रेनु, धूल। (२) कमल। (३) "नानक सिफति रत्ता गुण तासा" भी पाठ है। (४) हठ अभ्यासी योगी हद त्रिकुटी तक समाधि करते हैं। गोरख की यहाँ तक पहुँच थी इस कारण गुरू साहब उसे सुन्न सरोवर का उपदेश प्रथम ही करते हैं। सहसदल कमल से बाईं ओर सरकाते हुए सुन्न परयन्त चढ़ाई सीधी होती है परंतु आगे मारग विषम हो जाता है, जिसका प्रकार सूचन कराते हैं। सुन्न सरोवर (मान सरोवर) में स्थिती रूा स्नान से परम निर्मल तथा सूक्ष्म हुआ योगी फिर दाईं ओर सुन्न के, सुरत को मोड़े और वहाँ पर की स्थिती की परिपक्वता (पुख्तगी) से अनंतर उसे दाईं ओर की पिछवाड़ में लौटावे, इतने चक्र में योगी की सुरति सुन्न सरोवर के दाईं ओर दत्तिण पश्चिम की मध्य भावी दिशा गत भँवर गुफा में आन पहुँचती है, जहाँ पर से फिर सीधी ऊपर को चढ़ाना होती है जो इस तरह चढ़ती २ वहाँ जा पहुँचती है कि जहाँ पर इसको अपने शहर (सच खड) के हाट की सोझी पड़ जाती है।

अरचे परचे रहे गुर ज्ञानी । अगम निगम की सो विधि जानी ॥
मनसा इकतु परोवै सुति । वशिगति कीते पञ्चे दूत ॥
ऊपरि चढ़े गगनि आकाश । गगनंतरि वैसै तपति निवासि ॥१६४॥
तषत निवासी संत सँगि भाउ । आतम जीते निज घरि जाउ ॥
आदि जुगादी सचि पसाउ । नर निहकेवलु निर्भय भाउ ॥
सचु जोगु निज महली थाउ ॥
अमरु अतीत अलेख परवाणु । नानक नामु सचु नीशाणु ॥१६५॥
अनहद चीने पदु निरवाणु । अगम निगम जो जाणे जाणु ॥
ऐसी जुगति जोगु पछाणु ॥
सतिसरि न्हावण पूरा होय । दुर्मति मैल काटे सभ धोय ॥
ऐसी जुगति जोगु कमाया । गुर परसादी मनु उलटाया ॥१६६॥
चीने आपु शब्दु निरवानु । गगनंतरि तपति लाय दीवाणु[1] ॥
काया अगनि करे निभराति । अस्थिरु कंधु अजरावरु ताकु ॥
मानसरोवरि करे इस्नानु । नानक ऐसा अगम ज्ञानु ॥१६७॥
अगम निगम जाणे जो वाचि । पञ्चे दूत रहाय ठाकि ॥
तिहँ का मारि मिलावै मानु । नानक सचु शब्दु प्रधानु ॥
पञ्चे साधि जना गुरभाई । पञ्चे जीते घरि नवनिधि पाई ॥१६८॥
काया नगर महिं नामु निधान पाया । अस्थिर जोगी फिरि जोनि न आया ॥
सचु जोगु केवल गुर ध्यान । मस्तकि लिखिया नामु निधानु ॥
सच जोगु ज्ञान रत्न पाया । नानक धन्य जोगी जोगु सचु पाया ॥१६९॥
निरवाणु शब्दु अनाहदु बाजा । गगन तपति बैठा सचु राजा ॥
नाभ कवलु सचु सहजु निधाना । शब्दु अनाहदु सुनि मगनाना ॥
सुन्न गुफा महिं लागी तारी । नानक जोग जुगति इह सारी ॥१७०॥
जोगु बैरागु सहज घरि आसणु । आसा भीतरि रहे निरासणु ॥
मुंद्रा संतोष शर्म पति झोली । गुरमुखि जोगी तत्तु विरोली ॥
इन विधि पाया जोगी सचु जोगु । नानक जोगी जुगु जुगु होगु ॥१७१॥
अस्थिर पिंड फिरि पवे न सोया[2] । अस्थिर जोगी जुगु जुगु होया ॥
लख चौरासी गरभि न लेटे । कंटक काल फिरि कदे न त्रटे[3] ॥
नाँ तिसु खिंथा नाँ तिसु वस्तरु । नानक जोगी होया अस्थिरु ॥१७२॥

---

(१) दीवान, कचहरी । (२) "सोया" पाठ भी है । (३) ताड़े, चोट मारे, त्रासे ।

खिथा छमा शब्दु मनि मुंद्रा। नानक सुगति ज्ञान अउधू जोगिंद्रा॥
नाभ कवल जी (अ) अस्थंमु। पवने सहिज करे अरंभु॥
मन पवनै की सुध लहे, ससीअर[1] सूर कौ खाय।
नानक जोगी धन्य है, ऐसा जोग कमाय॥१७३॥
आसण शुद्धु मन सचु सुचीत। गुर के शब्दि सचि रहे अतीत॥
धर्म धीर्ज करि आसणि बहै। गुर की आज्ञा[2] मन महिं सहै॥
आए हर्षु न गए सोगु। नानक पाईऐ सचु ऐसा जोगु॥१७४॥
नाम रत्नु सचु जोगु पाया। अनहदि राता महलि बुलाया॥
अनहद शब्दु गगनंतरि वाजा। बैठा तषति अद्ली[3] सचु राजा॥
सचु जोग[4] प्रान पति पाई। जोग के प्रान अबरीक[5] रखाई॥१७५॥
अनहदु नादु गुर शब्दु बजाए। दशवैं द्वारे रहे समाए॥
शब्दि अनाहदि राता आदि। अस्थिरु जोगी आदि जुगादि॥
अनहदि राता गुणी गहीरु। नानक जोगी गहर गँभीरु॥१७६॥
त्रयदल[6] साधे मड़की छूटे। अनहदि राते त्रिकुटी फूटे॥
तंतु मंतु पाषंड न कोई। अंजनु[7] नामु मनु मानिआ सोई॥
त्रयदल साधि बजाए तूरा। तहँ कार्ज सीधा गुरमुखि पूरा॥
अस्थिरु पिंडु सचु जोगु अखंड। निर्भउ जोगी नहीं जमु डंडु॥१७७॥
त्रेटकु[8] भेष न चेटकु कोई। खिथा चक्र बिभूत न होई॥
गुरमुखि आदि दीआ उपदेशु। सतगुर मिलिऐ उलटिआ वेष॥

---

(१) चांद सूर्य को खैंच के सुरति अपने घाट पर ले जावै—यह भाव है। (२) अभ्यास में दीर्घ काल, निरंतर और सतकार पूर्वक प्रवृत्त रहने की शिक्षा रूप गुरू की आज्ञा को मन में धार कर बरते। भाव अर्थ यह कि जब जज्ञासु को गुरू दीक्षित करते हैं तो उपदेश के अनंतर ऐसी आज्ञा मिलती है कि इस उपदेश का अभ्यास नित्य प्रति प्रेम (अनुराग) सहित चिरकाल परयंत (कम से कम पहर भर) आसन बाँध कर करते रहना—अतएव इसी शिक्षा रूप गुरू की आज्ञा को मन में धार कर बरतता रहे। (३) न्याय करता सत्पुरुष, सच खंड का धनी। (४) सच योग से स्थिती रूपी प्रतिष्ठा को प्राप्त किया (प्राण नाम पराक्रम, बल, शक्ति, स्थाम का है—अमर कोष में)। (५) योग के बल से अविवाहिता जो माया है वह खायली (अबरी-जो विवाही ना हो) अथवा नाभी के तले ९ उंगल परिमाण एक अंबरीक नामा काम की नली है उस को ऐसा अभ्यासी योग बल से अपने बश में रखता है। (६) त्रैदल से भाव तीसरे तिल का है—नेत्रों की शोभा कमलदल (पंखड़ी) की है सो दो यह हुए तीसरा इनकी पिछवाड़ में—ऐसे त्रैदल से तीनों का ग्रहण हो जाता है। (७) वही तीसरा तिल। (८) त्राटक मुद्रा दृष्टि साधन की, इसके आगे क्या है भाव यह कि कुछ भी नहीं है (तुच्छ सी है)।

सचै शब्द अनाहद लीणा। नानक जोगी सहजि पतीणा ॥१७८॥
कन्न पड़ाय न मूँड मुंडाया। घरि २ फिरत न भूकणु[1] वाया ॥
मनु असथिरु गुरु शब्दि सुहेला। पञ्चि मारि ततु लहे इकेला ॥
तत्तु त्रिवीणी खूलै दुआरु। निझर झरे अनहदु धुनिकारि ॥
आदि पुरुष को मिलिआ जाणु। नानक जोगी निरजन[2] प्राण ॥१७९॥
अस्थिरु पिंडु अजरावर भया। जन्मु मरन दुखु तहाँ सभु गया ॥
मिटे कलेशु उतरे संताप। फल कोट प्राप्त गुर प्रताप ॥
सचु जोगु मुंद्रा मन माहीं। नानक अस्थिरु संत सँग समाहीं ॥१८०॥
निराहार[3] सचु जोगु कमाई। जन्म मरन की चूकी धाई ॥
भुगत ज्ञान जोगी कौ आई। जोगी गुरमुखि तिप्ति अघाई ॥
आत्म रामु चीनि पाया जोगु। नानक जोगी जुगु जुगु होगु ॥१८१॥
सतगुर ते जोगी जोगु पाया। अस्थिर जोगी फिरि जूनि न आया ॥
सुन्नि निरंतरि रहिआ समाई। अस्थिरु जोगु न आवै जाई ॥
अजपा जापु जपे जपु जापु। उन्मनी काल को मारे चापि ॥१८२॥
सूर[4] ससी ससि के घरि बहै। नाभ[5] कवल ठहराय मनु रहै ॥
बंक नाड़ि की त्यागे रीति। गुरमुखि लागी सची प्रीति ॥
त्रयदल साधि बहे सिंघासनि। नानक तपति निवासी आसनि ॥१८३॥
गुर का भगतु सदा इक रंगा। उसुरा[6] तरिआ उलटी गंगा ॥
नउसर[7] सुभर दशवैं पूरे। अनहद सुन्नि बजावै तूरे ॥
पतालहुँ नीर चढ़े गगनापुरि। निजघर महलि चढ़े अमरापुरि ॥१८४॥
चंचल चाय न पर घर लाये। मनूआ अस्थिर गुर शब्दि टिकाये ॥
मानसरोवर हंस उजाला। सिफती रत्ता लाल गुलाला ॥
परगृह जाय न देखे चंचलि। गुरमुखि त्यागे माया पचंचलि[8] ॥
नानक पूरे गुर के अंचलि[9] ॥१८५॥

---

(१) कुत्ते की न्याईं भौंकता हुआ नहीं फिरता। (२) निरंजन। (३) सच्चे जोग की कमाई से जीव अभोगी हो जाता है और जन्म मरण की दौड़ उसकी छूट जाती है। (४) दृष्टि की धारों को चंद्र के गृह में स्थित करै। (५) सहस्रदल कमल। (६) अप्रकाश रूप प्रवाह सुरति का असुरा नदी कहाता है जो गुर का भगत है वोह इससे तर गया है उसने निर्मल सुरति रूपी गंगा का उलटा प्रवाह चला दिया है तात्पर्य क्योंकि :— (७) नौं सर नौं दरवाजे, सुरति उनसे खैंच कर, खाली कर दिये हैं और दशवें को सुरति से पूर्ण कर दिया है जिससे सुन्न सहज में पहुँच कर अनहद बाजे को वोह भगत बजाता है। (८) 'अंचल' पाठांतर। (९) पल्ला, अंचला पकड़ करि।

त्रिकुटी संधि त्रिवीणी रहता । नाभ कवल पवनि घरि सहता ॥
अस्थिर पवन नाभ पर रहै । सुंन समावै मन महिं मनु गहै ।
वंकनाड़ि त्रिविधि (सों) त्यागे । नानक आदि जुगादी जागे ॥१८६॥
ऐसा जोगि जुगति परवाणु । सची दरगह सचु नीशाणु ॥
सची दरगहि महलि बुलाया । सिरि खुरि[1] पैधा प्रभि पैनाया ॥
अस्थिरु जोगु न आवै जाई । नानक जोगी सचि समाई ॥१८७॥
सुन्नि समाधि अनाहदि बाणी । सचा राजु रूप अकथ कहाणी ॥
आदि अनील जुगादि अनाहदु । आदि जुगादि जुगोजुग शाहदु ॥
कीमति किनै न पाईआ ता की । कोट ब्रह्मंड रचना जिनि राची ॥
ता का अँतु न पारावार । आपे जाणै सिरजनिहारु ॥१८८॥
अपणी गति मिति आपे जाणे । अपणे रङ्गु शब्दि निरबाणे ॥
आपे एक अनेक अपारा । आपे बहु बिधि करे बिस्थारा ॥
अगम अगाधि बिअंत अतोले । कुदरति कादरु[2] करते मउले ॥१८९॥
नानक जंपैदरि[3] बेनंती । एह अकथ कथा सचु सति सोहंती ॥
अकलु निरञ्जनु लाल गुलाल । आदि निरञ्जनु दीनदयाल ॥
अकल पति[4] बिरष पूरा भगवानु । अमर अजूनी परम निधान ॥
अमर अतीतु केवल गुरु ज्ञान । नानक जुग जुग परम निधान ॥१९०॥

जां बाबे नाल श्री गोरखनाथ ते भरथरी गोष्ट कीती तां समुंद्र की न्याई उछले गदगद होए ते आखन लगे अज साडा जन्म सफल होया है जो श्री बाबे जी का दर्शन होया । जन्म जन्म के संसे दूर भये हैं, तां चरन बंदना करिकै, सिद्ध गोरखनाथजी तथा भरथरी जी उडे तां बाबा जी ओथेही प्रसन्न बदन बैठे रहे । फेर (कुछ काल पश्चात्) बाबे आखिआ मरदानिआ चलु असीं भी चलीए । तां ओथों[5] चले सेत बंध के परे जिथे बड़ा समुंद्र हैसी तिथे तिसदे किनारे उत्ते जाय खड़े होए । तां कीह[6] वेखन जो चौरासी सिद्ध मंडली लगाइ बैठे हन । ते बिच श्री गोरखनाथ जी बैठे हैनि । तां बाबे सिद्धां जोगु आदेसु आदेसु कीता । ते श्री गोरखनाथजी अपने पास बैठाया-तां सिद्ध गोष्ट लगे करन । सिद्ध बोले :—

॥ पउड़ी ॥

ज्ञान एक नगर दस दुआर । कहु सतगुर सत्त सत्त बीचार ।
ज्ञान करी हड़ हड़ भी हसै । पीछै उज्जड़ अगै बसै ॥१॥१९१

---

(१) शिर से पांव के नाखुनों परयंत भगवत ने उसे अपने प्रेम की दात रूप पोशाक से ढक दिया है । (२) समर्थ करतार की कुदरत ही सर्व ओर मौल रही है अर्थात् खिल रही है । (३) जपै है, भाव करै है दरि दरगाह में । (४) कल्पना फुरने से रहित । (५) उस जगह से । (६) क्या देखते हैं कि ।

॥ श्री गुरू वाच ॥

एक नगर तिस दस दुआर । सुणो सिद्धो सत्त सत्त बीचार ॥
आगे उज्जल पीछै वसै ॥१६२॥

तां सिद्धां आखिआ बालिआ तूँ कोई गुरू कर । तां बावे आखिआ मेरे गुरू का वड़ा प्रताप सभनां दे सिर उत्ते[1] है । पर तुसां जो अपणे गुरू पासों बुद्धि सिक्खी है, तिस अनुसार बचन करो । तां सिद्धां कह्या-पयाला तां पीउ । तां बावे कह्या इह कैसा पाणी है । तां सिद्धां कह्या--इह अम्रित है इत पीते लिव लगती है । तां बावे कह्या इसकी उत्पत्ति क्यों करि है ? तां झंगरनाथ बोलिआ—

॥ रागु आसा ॥

भाठी जालो लाहणि माँडो[2] कस[3] को बीच समावै ।
निर्मल धार नली होय चलती तब यहि अंम्रित पावै ॥ १ ॥
सुण नानक तब जोगी होवै ।
द्रिष्ट खुले बंधन सभ काटे सगली दुर्मति खोवै ॥

॥ १ रहाउ ॥

हो मत्वाले मद के माते मगन होय लिव लागी ।
सुरति बंद ना चलती कबहूँ दरबार खड़ा बैरागी ॥ २ ॥
अैसे सहज फिरै मत्वाला दुख सुख दोष निवारे ।
जहाँ देखै तहँ एको सुआमी हिरदे अंतरि धारे ॥ ३ ॥
लाहा पूँजी साथ निबाहो षाली खेप[4] न जावै ।
झंगरनाथ कहै सुण नानक बावे तब तूँ दर्शन पावै ॥४॥ १६३

॥ श्रीगुरु वाच—रागु आसा महला १ ॥

ज्ञान ध्यान की लाहणि माँडी करणी की कस पाई ।
भाउ भाठी प्रेम समाणा ब्रह्म की अगनि जलाई ॥ १ ॥
सिद्धो हम मद के माते नाहीं ।
जो मत्वाले मद के माते क्रिन मत्वालिओं माँहीं ॥

॥ १ रहाउ ॥

सुरति नली भाउ बासन कीआ अंतर धार चुआई ।
दया सुराही सहज पिआला गुरमति पीओ भाई ॥ २ ॥
गुरमुख नाम फिरे मत्वाला एक रङ्ग महिं खेले ।
जहँ देखाँ तहँ एक सरूपी मार्ग पाया चेले ॥ ३ ॥

---

(१) सिर पर । (२) षमीर उठाना, मंड (शीरा) बनाना । (३) छिलका बबूल आदि का । (४) जिन्स, माल ।

निबही खेप हमारी सिद्धो आठ पहर लिव लागी।
नानक दास तहाँ मतवाला जहँ एकंकार बैरागी[1] ॥४॥ १६४

तां बाबा बोलिआ सिद्धो आपने गुरू का शब्द सुनाओ जिस उत्ते मेरी प्रतीत आवैगी तिस कौ भी गुरू करांगा। तां परबत सिद्ध बोलिआ :—

॥ राग राम कली ॥

धन जोबन की करै न आसा। पर त्रिया अंग न लावै पासा॥
नाद बिंद[2] लै घट भीतर करै। तिस की सेवा परबत करै॥
बोलै परबत सत्त सरूप। परम तत्तु महिं रेख न रूप ॥१॥ १६५

॥ सिद्ध ईश्वरनाथो वाच ॥

सो गिरही जो निग्रह[3] करै। जप तप संजम भिक्षा करै॥
पुन्न दान का करै शरीर। सो गिरही गंगा का नीर॥
बोलै ईश्वर सत्त सरूप। परम तत्त महिं रेख न रूप ॥२॥ १६६

॥ श्री गोरखनाथो वाच ॥

सो अवधूती जो धूपै[4] आप। भोजन भिक्षा करै संताप॥
अउहाट पटण महिं भिक्षा करै। सो अवधूती शिव[5] पर चढ़ै॥
बोले गोरख सत्त सरूप। परम तत्त महिं रेष न रूप ॥३॥ १६७

॥ चरपटनाथो वाच ॥

सो पखण्डी जो काया पखालै। कायाँ की अगनि ब्रह्म परजालै॥
सुपने बिंद न देई झरना। तिस पाखण्डी का जरा न मरना॥
बोलै चरपट सत्त सरूप। परम तत्त महिं रेख न रूप ॥४॥ १६८

॥ गोपीचंदो वाच ॥

सो उदासी जो पाले उदासु। अर्द्ध उर्द्ध[6] करे निरञ्जन वासु॥
चंद सूर्ज[7] की पाए गंठि। तिस उदासी का पड़ै न कंध॥
बोले गोपीचंद सत्त सरूप। परम तत्त महिं रेख न रूप ॥५॥ १६९

---

(१) सर्व संबन्ध शून्य, असंगात्मा। (२) नाद की ध्वनि--एक शब्द होता है, एक उसकी ध्वनि होती है। शब्द का सार नाद और नाद का सार बिंद होता है, इसी का नाम तुरिय आत्मा है, इसमें सुरत स्थिर हो जावे तो ब्रह्म पद का साक्षात्कार होता है। यही अपना मत परबत सिद्ध बतलाता है कि शब्द को नाद में और नाद को बिंदु में अर्थात तुरिया आत्मा में घट के भीतर लय करे। जो ऐसे अभ्यास करता है उसा की सेवा मैं करता हूँ, भाव उसको ही मैं पूर्ण पुरुष आत्मवेत्ता मानता हूँ। इसका विशेष निरूपण पहले हो चुका है। (३) संजम। (४) धूप की न्याई जो आपाभाव को धुखाय २ भसम कर डाले। ब्रह्म विचार रूप दिया सलाई से ब्रह्म अग्नि को प्रज्वलित करके देह अभ्यास रूप धूप का धुखाना हुआ करता है। (५) सुन्न मंडल के धनी शिव के ऊपर सचखंड में चढ़ जाता है। (६) पिंड ब्रह्मंड की संधि का स्थान। (७) इड़ा पिंगला का एकीकरण रूप गांठ पावे।

॥ भरथरीनाथो वाच ॥

सो बैरागी जो उलटै[1] ब्रह्म। गगन मंडल महिं रोपै[2] थंभ॥
अहि निशि अंतरि रहै ध्यान। ते बैरागी सत्त समान॥
बोले भरथरि सत्त सरूप। परम तत्त महिं रेष न रूप॥६॥ २००

॥ श्री गुरो वाच॥

क्यों मरै[3] मंदा क्यों जीवै जुगति। कंन्न पड़ाय क्या खाजो[4] भुगति॥
आस्ति[5] नास्ति एको नाउँ। कवण सु अखरु जितु रहै हिआउ[6]॥
धूप छाउँ[7] जो सम करि सहै। तउ नानक आखै गुर को कहै॥
छिअ[8] वरतारे वरते पूता। नाँ संसारी नाँ अवधूता॥
निरंकार जो रहै समाय। काहे भिक्षा मंगन जाय॥
बोलै नानक सत्त सरूप। परम तत्तु महिं रेष न रूप॥६॥ २०१

॥ चरपटनाथो वाच॥

काम त्यागलो लोभ त्यागलो मोहं।
अहंकार त्यागलो चरपट बचन अपारं॥२०२॥

॥ श्री गुरो वाच॥

नाँ त्यागलो[9] कामं नाँ त्यागलो क्रोधं नाँ त्यागलो लोभं मोहं।
गुर प्रसादि सभ रोग ना नानक बचन अपार॥८॥ २०३

॥ चरपटनाथो वाच॥

शिव पकड़[10] लो, शक्ति गवाय लो। मनसा ठहराय लो त्रिशना हिर लो[11]॥
मन को प्रबोध लो दर्शन पाय लो। बिभूत[12] लगाम लो ते बड़भाग लो॥
चरपट बचन सत्ताललो[13]। सुण नानक तपा ते संसार समुद्र पाइलो॥६॥ २०४

(१-२) त्रिकुटी के मंडल पर जो चैतन्य पुंज बिराजत है उसे उलट कर, क्या? कि ऊर्द्ध को सुरत तान कर खंभवत अचल स्थिर कर देवे। (३) मंद आचर्ण में प्रबृत मन। (४) क्या भोजन खावो हो—यह तरकना करि के गुरू साहब कहते हैं। (५) जो कुछ सत असत (प्रगट गुप्त) है उस सभ की सत्ता एक ही प्रसिद्ध बस्तु है—इस बार्ता का निर्णय आगे किया गया है। (६) हिरदा, मन, अंतःकरण। (७) स्वेत श्याम से भाव है; कोई बाहरली धूप छांव का ग्रहण नहीं है क्योंकि तितिक्षा का कोई प्रसंग नहीं, शब्द अभ्यास पर साफ प्रति बंधी तरकना करके गुरू साहब ने स्वयंही उसका निरूपण किया है। (८) पिंडी षट चक्रों का अथवा षट कर्म का हठ योग रूप जो बरतारा है वा छे दर्शनों के वरतारे में जो वरते। (९) जिसमें काम आदि हों वह त्याग लेवे परंतु जब गुरू के प्रसादि से हमारे में यह सभ रोग हैं ही नहीं तो हम इन को क्या त्यागें—यह भाव है। (१०) शक्ति का धनी शिव परमात्मा। (११) त्याग लेवो। (१२) राख, भस्म। (१३) सच सच।

॥ श्री गुरो वाच ॥

शिव नाँ[1] पकरिलो शक्त न गवायलो ।
मनसा[2] न ठहराय लो त्रिश्ना[3] न गवायलो ॥
मन को नाँ परबोध लो दर्श न पायलो ।
तो वड़ भाग हम आप लो ।
सुण चरपटनाथ ससार हम पार पायलो ॥
एकोंकार गुर करबो दूसर नाँ धरबो ।
पंच पचीस हम आगे कार करिबो ॥
तीन चार बिन रसना उचरबो ।
नौं सत्तहं[4] मे वँधवो, चउदहि इकीस हम आगे खड़िबो[5] ॥
पचास पंछत्तरह णा भागवो ।
नानक तपा ऐसे बड़ भागवो ।
सुण हो चरपटनाथ वो ॥११॥ २०५

ताँ फेर घुघूनाथ नूँ गुरू जो बोलाया—छेड़िओसु :—

॥ श्री गुरो वाच ॥

घुघूनाथ चुप्प करि रहिया । क्या जापै[6] उह कैसा भाया ॥
बिन बोले क्या करै बीचारु । घुघूनाथ बोलणुहारु ॥
सेवा पूजा रहत न पाईए । घुघूनाथ बोलिआ चाहीए ॥
दर्शन आछा मर्म न जापै । क्या जानौ कैसा परतापै ॥
कहि नानक सुण घुघूनाथा हमरी अरदास । एक पछाणो तउ बोलो बात ॥१२॥२०६

---

(१) शक्ति नाम आत्म वस्तु का है और शिव नाम परमात्मा का-जब आतमा (शक्ति) परमात्मा (शिव) में लीन हो जाती है तो आतमाकी अपेत्ता से कहा जानेवाला परमात्मा ऐसा नाम कहा नहीं जा सकता । इसी बात को मनमें धार कर इस सापेत्तक शब्द वाले शिव परमात्मा को हम नहीं अंगीकार करते किंतु जिसमें किसी प्रकार से भी नाम को समाई नहीं ऐसे अनामी स्वरूप को हमने आलंबन किया है । इसी कारण हमको शक्ति के गवाने को भी आवश्यकता नहीं क्योंकि वोह तो प्रथम सेही समुद्र के तरंगवत अवाच स्वरूप समुद्र को आश्रे किये बैठा है । यह श्री गुरू महाराज का अभिप्राय है । (२) उन्मन दशा को प्राप्त हमारे में मनसा है हो नहीं तो ठहरावें किसको यह भाव है । (३) सर्व द्वैत परपंच के अत्यंत अभाव दृढ़ बोध के प्रभाव से अर्थात जैसे सुषुप्ति अवस्था में संपूर्ण परपंच का विस्मृति रूप नाश हुआ करता है ऐसे ही प्रलय तथा योग समाधि में नाश हो जाने वाले संसार के बारंबार नाशो होने के चिंतन अभ्यास से इसके वास्तव में नाश रूप होने के (तुरिया, तुरियातीतगत, यथार्थ निश्चय के प्रभाव से जब हमको असत् रूप किसी वस्तु का संकल्प ही नहीं स्फुरता तो त्रिश्ना कहाँ उपजे जिसको त्यागें । (४) नौ और सात = सोलह कला से संयुक्त हों । (५) चौदह लोक और इक्कीस पुरी की अधिष्ठाता शक्तियाँ हमारे आगे खड़ी हैं अर्थात् हमारी दासी हैं । (६) क्या जाणीए ।

॥ घुघूनाथो वाच ॥

घुघू नाथ पायबो, जती न सदायबो।
सिद्धो न नाथबो, बोलबो पकड़ाइबो॥
सिंङी न वायबो, नाउँ न कहायबो।
सुरति[1] न ठहरायबो॥
जद अनहद[2] भरम सुनायबो।
सभ एकंकार खेलबो। शिव शक्ती न मेलबो॥
ध्यान न धरायबो। ऊँच नीच कहायबो।
हिरदे प्रगासबो। एक बातबो[3]॥
घुघू कहे सुण नानक साधबो।
सत्ति परमेश्वर तुम लाधबो[4] ॥१३॥ २०७

ताँ गुरू नानक घुघूनाथ के चरणाँ नूँ दौड़िया।
ते घुघूनाथ कह्या क्यों तपाजी! यहि क्या, दूसरा जाणिया?
ताँ गुरू नानक जी कह्या, नाथ जी एक जाणिआ॥
तो तुम पछानिआ; दूसरा अवर न कोई।
नानक दास समझिआ है आगे[5] घुघूनाथ मैं ओही॥
ताँ दोहाँ आप विच चरन बंदना कीती पर राजी रहे।
ताँ फेर चंबा नाथ बोले नाहीं मगन होय रह्या ॥१४॥ २०८

॥ श्री गुरो वाच॥

भाई बाला अते मरदाना जाह! चंबानाथ बोलता नाहीं।
ताँ मरदाना उतावला[6] होइ कर बोलिआ—
अजी गुरू जी बुलाये! ताँ गुरू नानकजी बचन कीता।
बोलहु चंबानाथ बोलते क्यों नाहीं?
कवन तुमारा मता मस्रत[7] चहो कवन ग्रिह माहीं।
देखी तुमारी सूरति आछी बिन बोलै समझ न काई॥

---

(१) चितकला भटकती ही नहीं इस कारण ठहराता नहीं हूँ भाव योगाभ्यास नहीं करता हूँ। (२) अनहद शब्द भी शब्दी से उत्पन्न होने वाला है जब शब्दी जिसमें शब्द की गम नहीं, ऐसे (शब्द वाले) में हम समाय गए तो शब्द फिर कहाँ रहेगा। फल प्राप्ती में साधन को जरूरत नहीं रहती और उत्पत्ती नाशवान वस्तु भरम मात्र होती है। इस वास्ते अनहद शब्द भी हम भरम समझते हैं। (३) "दुतीयो नास्ति इक रह्यो समाय" वत्। (४) तुम ठीक सत्य परमेश्वर ही प्राप्त हुए हो। (५) सामने जो घुघूनाथ (तुम) हो और आप हम सभ एक वोही एकंकार है। (६) जल्दबाज़, तेज़। (७) मन्सूबा।

बुध सिद्धनाथ सब बोले जती भी बोलनहारे।
नानक कहै सुण चंबा भाई तैं क्यों बोल बिसारे ॥१५॥ २०६

॥ चंबानाथो वाच ॥

बोलनहार बोलबो। तोलनहार तोलबो।
खेलनहार खेलबो। अटकनहार अटकबो ॥
भटकनहार भटकबो। झटकनहार[1] झटकबो।
गावनहार गायबो। सुननहार सुणायबो ॥
चंबानाथ कहायबो। एको एक ध्यायबो।
एकंकार घर महिं ध्यान लायबो ॥१६॥ २१०

॥ श्री गुरो वाच ॥

जननी सोधन्नबो, रहिनी सोधन्नबो।
चलनी[2] सोधन्नबो गुरू सोधन्नबो।
उपदेश सोधन्नबो जेते लच्छण सोधन्नबो, एकंकार कृपा करबो ॥१७॥ २११

॥ चंबानाथो वाच ॥

न चंबा[3] न नानको न गोरखो न साँम[4] को न दसर्थो न राम को।
न बसिष्टो न व्यासबो न सुखदेव न पराशरो ॥
सभ आप आपे खेलता दूजा मेल न मेलता।
प्रणवत चंबा सुण नानक बाला। एकएक सुख पावत दूजा जंजाला ॥१८॥ २१२

चंबे ते गुरू नानक दोनों आपस में चरन बंदना करी। बहुत सुप्रसन्न रहे। घुघनाथ अते चंबानाथ अते मंगल नाथ अते गोपीचंद एह त्रै चारे बहुत पुशी होए लगे। आखण जी हम निहाल हूए। आज हम को अलेष पुरुष का दर्शन हूआ है। तां गुरू नानक जी बोलिआ—नाथ जी तुसाडे दर्शन नूं बहुत हर्षदे आहे। पर भला होया जो देह विच दर्शन होया। असां सत्त प्रतीत आई जो असानूं कर्त्तार निरंकार दा दर्शन होया। जां इतने नाथ पुशी होए तां सुरति सिद्ध अते निरत सिद्ध अते कनक सिद्ध (आदिक) कितने सिद्ध तमके, गुस्से होए। तां मंगलनाथ कह्या सुणो भाई गोपीचंद बाले एहु सिद्ध कैसा अहङ्कार करते हैं। तां गोपीचंद कह्या गुरू नानक जी का तुम देखते हो तमाशा। नानक तपा तौ किछु कमी नाही इन पासते। एह तो तुमारे आगे

---

(१) झड़ने वाला। (२) चाल चलन। (३) जब अंतरमुख हुई सुरति धुर पद में समा जाती है तो यावत दृश्यजात (द्वैतपरपंच) जो है उसके सहित सुरति आपा भाव से रहित हो जाती है। इस निर्विकल्पक (अफुर) दशा के निरंतर अभ्यास से, उत्थान अवस्था में भी, सुषुप्ती (घनीनिद्रा) से तत्काल उठे हुए पुरुष की दृष्टि में सर्व दृश्य (संसार) के अदृश्य भाववत अर्थात अदर्शन सरूप सरीखा सर्व प्रपंच का ही अभाव भान हुआ करता है जिस स्वसंवेद्य रूप विज्ञानक अनुभव को चंबानाथ जी ने प्रसिद्ध २ नाम लेकर प्रगट किया है कि कुछ नहीं सर्व एक मात्र ही है। (४) श्याम = कृष्ण।

निवा[1] है शिव के जोर। तुम मौन हो जावो बोलो नाहीं। तुम तमाशा देखोगे कि कैसे शरमिन्दे होवहिंगे तां उना सिद्धां करामातां लाईआं। क्या कीता, म्रिगानी उड़ायलो। सिंगी बजायलो। फरवा दौड़ायलो, जितने सिद्ध तमक रूपी होय आए, सभनां आपने साज उड़ाये ते गुरु नानक बोले नाहीं, तां भंगरनाथ कह्या अरे नानक अब तुझ को क्या हुआ है ॥

॥ श्री गुरो वाच ॥

ताँ गुरू नानक बोलिआ :—

उडहो कौंस[2] हमारी, हम देखें शक्ति तुमारी।
जब नानक मुख ते बोला, तब कौंस ने घुंघट[3] खोला ॥
जब कौंस चढ़ी असमाने, तब सिद्ध भये हैराने।
जब कौंस म्रिगानी मारी, तब सिङी रोय पुकारी ॥
जब कौंस होई अस्वारी, तब मुंद्रा फरूआ मारी।
सभ भागी सिद्धां की मलतन[5], कौंस नानक की जलतन[6] ॥
जब सिद्ध शरमिंदे पोले[7], तब नानक हँसि हँसि बोले ॥
तब मंगलनाथ न रहि सींघे[8] ॥
लगा कहन क्यों गुरू गोरखनाथ जी देखिया नानक तपा ॥
ताँ गोरखनाथ बोलिया हाँ मंगलनाथ जी देखिया नानक तपा ॥

॥ श्री गोरखनाथो वाच ॥

कै अंगुल का गगन मंडल है कै अकाश मैं तारे।
कै हैं पत्र बनास्पती के इंद्र बर्षे कै धारे ॥
कै सेरा का[9] सुमेर पर्वत जग मैं रत्ती केती।
केते कलि मैं देवा ॥
प्रणवै गोरख सुनहो नानक तुम आए कै बेरा ॥

॥ श्री गुरो वाच ॥

चार अंगुल का गगन मंडल है दो आकाश मैं तारे[10]।
दो पत्र[11] बनास्पती के इंद्र बर्षे नऊँ[12] धारे ॥
स्वा सेर का सुमेर पर्वत है जग मैं रत्ती एका।
एको कलि महिं देवा ॥
प्रणवै नानक सुण हो गोरख हम आए एकै बेरा ॥

---

(१) नम्र हुआ है। (२) जूती (खड़ांव)। (३) अपनी गुप्त शक्ति प्रगट दर्शाई। (४) सभ पर प्रबल आई, आरूढ़ हुई। (५) मल्लतन = पहलवानी बहादुरी, शक्ति संबूह। (६) जल्द २ कार्रवाई करने वाली। (७) हलके, लज्जित। (८) न रहि सका। (९) कितने सेर तोल में। (१०) सुरत निरत। (११) दोदल कमल, भ्रुवचक्र को अलंकार के ढंग से दर्शाया है। (१२) नौं नाड़ी रस प्रवाहनी जिनकी योग में उपयोगता है। जिनका बरनन प्रथम हो चुका है।

तां फेर खिथड़ा सिद्ध बोलिआ—सिद्ध खिथड़ा नाथो वाच ॥

कवन गुरू कवन चेला। कवन मूल कवन मेला।
कवन वस्तु ले रहे अकेला ॥
काया कहि काहे की पंड। तिस ऊपर किस पुरुष की अंड[१]।
कथी जो बोलै कथि कथि खाय। कहि शब्द हो नानक अमरापुर जाय ॥

॥ श्री गुरो वाच ॥

शब्द गुरू सुरति चेला। मन मूल पवन है मेला।
तत्त वस्तु ले रहे अकेला ॥
काया पवन पानी की पंड। तिस ऊपरि सत्त पुरुष की अंड।
सचु कथिओ कथिया खाय। एह शब्द हो खिथड़ा अमरापुर जाय ॥

॥ खिथड़ नाथो वाच ॥

कवन सु नगरी कवन सुलतान। कवन सु लोक कवन परधान ॥
कवन सु राजा कवन सु महता[२]। देहु नानकजी नगर कीआँ बाताँ ॥

॥ श्री गुरो वाच ॥

कायाँ नगरी नाऊ[३] सुलतान। पञ्च लोक बसैं परधान ॥
मनूआ राजा पवन है महता। लेहु खिथड़ा नगरी कीआँ बाताँ ॥

॥ सिद्ध खिथड़नाथो वाच ॥

कहाँ बसै मनूआ कहाँ बसै पवन। कवन ओटि[४] घटि ताल बजावै ॥
पञ्चाँ का गुरू कवन कवन भोगे अहारु। देहु नानक शब्द का बीचारु ॥

॥ श्री गुरो वाच ॥

हिरदे बसै मनूआ नाभ बसै पवना। पवन की ओट घटि ताल बजावै ॥
पञ्चाँ का गुरू तत्तु, अगनि भोगे अहारु। लेहु खिथड़ शब्द का बीचारु ॥

॥ सिद्ध खिथड़नाथो वाच ॥

कित मुख आए हो, कित मुख जाओगे।
कैसे नाड़ी कैसे संधि, काया शोषी करे पवन ॥
कवन मड़ी कवन अहारु, देह नानके शब्द का बीचारु ॥

॥ श्री गुरो वाच ॥

उत्तर[५] मुख आए हो दखण[६] मुख जांहगे।

---

(१) आड़, हद (सीमा) से भाव है। (२) मामला एकत्र करने वाला सरकारी आदमी जिसे वर्तमान में पटवारी कहते हैं यहाँ वजीर से भाव है। (३) चेतन पुरुष, बोलता पुरुष। (४) किसके सहारे। (५) ऊपर की ओर से सीमंत चक्र भेदन द्वारा जीव का प्रवेश शरीर में हुआ है। (६) और सीमंत चक्र की अपेक्षा सहसदल रूप दक्षण मुख से निज देश में जाना होगा।

नऊँ सै नाड़ी सोलाँ सै संधि निज शोषी[1] करे पवना ॥
असंभू[2] मड़ी अचिंत दुआर। लेह खिथड़ा शब्द का बीचारु ॥

॥ सिद्ध खिंथड़नाथो वाच ॥

कित परचै[3] लागै बंध। कित परचै पड़ै नाड़ी कँध।
कित परचै शशीअर फूटै। कित परचै माया मोह तूटै ॥

॥ श्री गुरो वाच ॥

मन परचै तौ लागै बन्ध। पवन परचै ताँ पड़ै न कंध ॥
ज्ञान परचै तौ शशीअर फूटै। सतगुर परचै ताँ माया मोह तूटै ॥

॥ सिद्ध खिंथडो वाच ॥

अदेस तो किसकौ अदेसु, अदेस का कवन उपदेश।
मन का कवन वेष, ज्ञान का गुरू कथीअले अवधूता ॥

॥ श्री गुरो वाच ॥

आदेस ताँ पूरे सतगुर कौ आदेस। पूरे सतगुरु का सच्चा उपदेश।
मन का निरंतर वेष। ज्ञान का गुरू संतोष ॥
सतगुर की चरनी लागीए पूता, तो इस बिध पायै मोष ॥

तां उस धूर्म आया पर भारी गुस्से नाल :—

॥ धूर्मनाथो वाच ॥

अगनि जलावों जल में डोबों चिलके[4] सार कुसाई।
अैसे दुख लगावों हो तुम धर्ती बीच गडाई ॥
एक तमाचा मारों अैसा अंग्रर साथ रुलाई।
अैसा देखो जोर हमारा सगले पायँ लगाई ॥
जो तूँ कहा हमारा मानै नाहीं अबी करों तुम छाई[5]।
जेता जोर धरें हम अपना तुझ कौ मालम नाहीं ॥
धूर्मनाथ कहै सुण नानक हमरी मान रजाई।

---

(१) तेज़ी—(आओ जाई की) चालाकी करे है भाव श्वास प्रश्वास रूप से पवन चले है। (२) संभू नाम स्वयंभू = स्वतः प्रकाश का नाम है उससे उलटी असंभू पर प्रकाश्य रूप जड़ मड़ी यह शरीर रूप पिंड है इसमें अचिंत द्वार सहज घाट है। (३) किस साधन से; किसके बिगास भये। (४) अगनी में जला दूँगा, जल में डोब दूँगा और चमकती फलादी लोहे की (तलवार) से कोह (मार) डालूँगा। (५) भस्म।

॥ श्री गुरो वाच ॥

पहिरा[1] अगनि हिवै घरि बाँधा भोजन सार कराई।
सगले दूख पानी करि पीवाँ धर्ती हाँकि चलाई ॥
धर ताराजी अंबरि तोली पिछै टंक चढ़ाई।
एवड[2] वद्धा मावाँ नाहीं सभ से नथ चलाई ॥
एता ताण होवै मनि अंदरि करीभि आखि कराई।
जेवड साहिब तेवड दाती दे दे करे रजाई ॥
नानक नदरि करे जिस ऊपर सचनाम बड्याई ॥

॥ ऊरमो वाच ॥

ऊर्म बोले तत्त विरोलै सुण हो नानक मोदी[3]।
क्योंकरि वस्तु प्राप्त होई किन पाई तुम गोदी ॥

---

(१) छूछे घट वाले धूर्मनाथ ने (टिप्पण नं० २-३ में) कैसे अयोग्य शब्दों में गुरू साहब को सब्त सुस्त कहा है अब गुरू साहब गंभोर शांति से अपना निरभय (अनभउ) ज्ञान निरूपण करते हैं—हे धूर्म ! जिस अगनि का डर देता है वह तो मेरे हृदय मंदिर (गगन मंडल) में मेरा पहरा हर दम देती रहती है भाव अगनी तत्व का भी बीज रूप परम तत्व आदि निरंजन रूप ज्योति मेरी सदा रखवाली है वहीं पर मेरी स्थिता है वहाँ अग्नि की गम ही नहीं। जिस फुलाद से मुझे काटने कहते हो मैंने तो उसका भक्षण ही कर रखा है भाव सुखमना नाड़ी जो सार की न्याई प्रदीप्तिमान है उसमें स्थित होकर मैंने नाम रस का पान कर लिया है—सार तो मेरी त्रिप्ती का कारन है उससे मुझको भय नहीं। प्राणों का तत्व रूप जो सूत्रात्मा अव्यक्त पद है उसमें दृढ़ स्थिति करके मैं सर्व अध्यात्म आदि दुखों को पानीवत पी जाता हूँ भाव दुख का सामना होते मैं अव्यक्त पद में समाय जाता हूँ मुझको किसी दुख का सपर्श ही नहीं होने पाता। धरती में गाड़ने का जो भय देते हो सो धरती की पिंड रूप देह तो मैं जैसे हाक (भीतर से आवाज) मारता अर्थात् प्रेरता हूँ वैसे ही चलती है मेरी आज्ञा अनुसारिणी धरती भला मुझे कैसे अपने में लोप कर सकती है, और अंबर आकाश को भी मैंने सुरत की तकड़ी पर शब्द का बट्टा डाल कर तोल रखा है भाव आकाश को भी मैंने सुरत कमल में स्थित होकर उलंघन कर रखा है आकाश में मेरा तुम क्या रुला सकते हो। (२) मैं इतना बढ़ा हुआ हूँ भाव ऐसे पारावार रहित पद को प्राप्त हूँ कि किसी बड़ी से बड़ी महा आकाश आदि उपाधि में भी मैं नहीं समा सक्ता। बहुत क्या कहूँ कि सभ के नाथने वाले जगन्नाथ से मेरी अभेदता होने से मुझ में ऐसी सामर्थ्य है कि अपनी नाथ में सभ को नथ कर चला सकता हूँ। इतनी ताकत मेरे अंदर है। कही भी (इसकी वर्तन = प्रगभउ मैंने किया भी है) और कहि कर कराया भी है, भाव मैं (हे धूर्म व्यर्थ डींग तेरे समान नहीं मारता किंतु अनुभवित बात (यथार्थ) ही मैंने कही है। इतना बल भी मेरे में है तथापि मैं जानता हूँ कि जितना बड़ा वह साहेब है उतने वित की ही उसकी दात है। जिस पर नज़र करता है वह अपनी रज़ा (भाणे) का मालिक उसे दान देता है, पर है यह सभ बड़ाई सच्चे नाम की ही। भाव सत्य नाम के प्रभाव से वह कृपालू पिता ऐसी दात करता है, यह तो सभ उसकी वस्तु है अभिमान क्या करूँ। (३) भंडारी।

आख बखानै भेद न जानै गुर विन बूझ न होई।
सिद्ध मिले विन बुद्धि न उपजै जन्म अकार्थ खोई॥
ऊर्म कहे सुण नानक मूढ़े सतगुरु सिर पर थापो।
गुर गोरख की चरणी लागो तउ तीन लोक महिं जापो॥

॥ श्री गुरोवाच ॥

मोदी कहीए एकंकारा तीन लोक को पाले।
लख चौरासी जोनि उपाई जीअ जंत के नाले॥
तिसकी कृपाते वस्तु प्राप्ति गुर पूरे मिल पाई।
गुरु प्रसादी परम पछानिआ मैल न रहिआ काई॥
निर्मल बुद्धि सिद्धि सभ हाजर जन्म सकार्थ आया।
रज जननी की बूँद पिता मिल कर्ते थाट[1] बणाया॥
कहि नानक सुणि ऊर्म मूढ़े तैं विर्था जन्मु गवाया।
एकंकार गुरू नहीं जानिआ सुण गोरख भरमाया॥

॥ थंगरनाथो वाच ॥

कवन महतारी कवन पिता। कवन गुरू कवन तू होता।
कवन देश कवन भेष, जंगम कै जोगी, भोगी कै रोगी, हर्षी कै सोगी॥
प्रणवत गुर सुन रे बाले। कवन प्रगास किह मिटै जंजाले[2]॥ ७॥

॥ श्री गुरोवाच ॥

छमा महितारी संतोष पिता। सच गुरू कर्तार का होता॥
बेगमपुर देश सगले भेष, जंगम न जोगी, भोगी न रोगी।
प्रणवत नानक सुणहो थङ्गर बाले। ओअंकार प्रगास्या तब मिटे जंजाले॥

॥ श्री गोरखनाथो वाच ॥

॥ रागु आसा ॥

मुद्रा पहिरो झोली लेहो, मस्तकि धूरि लगावउ।
सदा अजीती काया रहती, खिंथा अंग हढावउ॥
हाथि फहोड़ी डंडा राखउ, तउ सिद्धा परतीता॥
मेल मिलावउ संगि जमाती, इऊँ सगला जग जीता॥
आदेस कहो आदेसु, सब सिद्धों कौ करहु आदेसु॥ १॥

॥ रहाउ ॥

भुगत लेहु भंडारा भुंचो मुख ते नाद बजावो।
नाऊँ नाथ होय बैठो जुगि जुगि रिद्धि सिद्धि बहुत लगावो॥

(१) बनावट, ठाठ। (२) झगड़े, बखेड़े, धंधे।

सगल सिद्ध तुम आज्ञाकारी जोग संजोगी पावो ॥
एक माउँ के पूता होवहु जुगति जोग के चेले।
संसार के भंडारी कहीओ तुम दीवान सगले ॥
तुम सिर ऊपर अवरु न कोई होय रहो परधाना।
हुकुम तुमारा सभ ते ऊँचा इऊँ चलै फुरमाना ॥
खण्ड खण्ड महिं आसण वैसहु लोइ लोइ भंडारा।
लख चौरासी बचन मैं बाँधे रसना एक उजारा ॥
कर कर वेखो अपना कीआ आपहि रिदै बीचारी।
प्रणवत गोरख सुणं हो नानक अैसी कार तुमारी ॥

॥ श्रीगुरोवाच—रागु आसा महला १ ॥

मुन्द्रा संतोष शर्म पति झोली, ध्यान की करहि बिभूत।
खिंथा काल कुआरी काया, जुगति डंडा परतीति।
आई पंथी सगल जमाती, मन जीते जगजीत। आदेस तिसै आदेस।
आदि अनील अनाद अनाहति जुगु जुगु एको वेस ॥ १ ॥

॥ रहाउ ॥

भुगति ज्ञान दया भंडारणि घटि घटि वाजहि नादि।
आप नाथ नाथी सभ जाकी रिद्धि सिद्धि अवरा सादि।
संजोगु विजोगु दुइ कार चलावहि लेखे आवहि भागु ॥
एका माई जुगति व्याई तिन चेले परवाण।
इकु संसारी इकु भंडारी इकु लाए दीवाण।
ज्यों तिस भावै तिवैं चलावै ज्यों होवै फुरमाणु।
ओहु वेखै ओनाँ नदरि न आवै बहुता एह विडाणु[1] ॥
आसण लोइ लोइ भण्डार। जो किछु पाया सु एका वारु ॥
करि करि वेखै सिरजनहार। नानक सचे की साची कार ॥

॥ श्री गोरखनाथो वाच ॥

अरे नानक वाला तूँ ईहाँ क्यों आया। तेरा कवन मनोर्थ था।
तूँ आपना मनोर्थ कहु। तेरा मनोर्थ पूरा करे हाँ ?

॥ श्रीगुरो वाच ॥

एक मनोर्थ कीआ पूरा। जब हम को सतगुर मिलिआ सूरा ॥
अवरु मनोर्थ रह्यो न कोई। सिद्ध बुद्ध भरमे सभ लोई ॥
सुण गोरख तुझ दीखा देवऊँ। प्रणवत नानक साच समेवऊँ ॥

(१) आश्चर्य।

ताँ गोरखनाथ भी चुप कर रह्या, ताँ मंगलनाथ कह्या—गुरू गोरखनाथजी नानक तपे को उपदेश दीआ ? ताँ गोरखनाथ कह्या—हाँ मंगलनाथजी हम कौंस को देखते थे। देखा पूर्ण पिंड है के काचा है। ताँ मंगलनाथ कह्या—गुरू गोरखनाथजी जैसा देखीऐ तैसा बखानीऐ। फ़कीर का बिरद ऐसा है। ताँ गोरखनाथ कह्या—हाँ मंगलनाथजी तुम सत बचन कहते हो। जाँ इतनीआँ गल्लाँ होंदीआँ ही सन कि प्राननाथ आसन तों उठकरि आया।

॥ प्राननाथो वाच ॥

कतंच[1] जुगता कतंच भुगता, कतंच रहिबो अरोगं।
कतंच लच्छन कतंच पाइबो जोगं।
प्रणहीं तपा पूछत है प्रान पता, देह ज्ञान शुद्धं ॥

॥ श्रीगुरो वाच ॥

नाम भगता सत्त जुगता, द्रिढ़ता रहितो अरोगं।
प्रीति लच्छण उपदेश अच्छण[2], प्रेम पायबो जोगं।
सुणो प्रान पता प्रणवै नानक तपा, लेहु ज्ञान शुद्धं ॥

॥ प्राननाथो वाच ॥

धन्न हो तपा प्राणवे पता। धन्न हो सतगुरू सुधरता ॥

ताँ फेर प्राननाथ गुरू नानक जी दे चरणाँनू दौड़िआ। दुहाँ आप विच मत्थे टेके बहुत प्रसन्न होए। प्राननाथ बचन बोलिआ ॥

नानक तपाजी अब हम को निरंजन पुरुष का सवाधान दर्शन हूआ है तपाजी इस बचन मैं भिन्न भेद किछु नाहीं। ताँ गुरू नानकजी बचन बोले—प्राननाथ जी तुम अरु निरंजन मैं भेद किछु नाहीं। हम तो इऊँही जाँणते हैं जो तुम निरंजन की मूरति हो। सत्त प्रतीत करि जाणते हैं। ताँ प्राननाथ कह्या हाँ तपाजी तुम ऊपरि निरंजन की ऐसेही कृपा है।

ताँ मङ्गलनाथ कह्या—क्यों प्राननाथ जी नानक तपा देखिआ। प्राननाथ कह्या—हाँ मङ्गलनाथ जी! जैसा तुम कहिते थे तैसाही देखिआ। हम तो इऊँही जानते हैं जो निरंजन का दर्शन पाया। आगे तुमरी तुम जानो। ताँ मङ्गलनाथ कह्या—नाथजी जो निरंजन (ने) साथ कीए हैं, तिनों और निरंजनों[3] मैं भेद किछु नाहीं। हाँ गुरू मङ्गल नाथजी तुम पूर्न बचन कहते हो। प्राननाथ आपने आसन जाय बैठा। ताँ सिद्ध बोले—बालिआ असाँ कहा तैं समझिआ है। पर तेरा कह्या असाडी समझ विच नहीं आवदाँ। ताँ बाबा बोलिआ—सिद्धो तुसानूं छै २ ग्रह इक इकस[4] नों लगे होए हैं। ते भरथरी नूं नव ग्रह हैनि। जाँ इतनी गल्ल आखी भरथरी की बिंद झर पई। ते बहु रोवन लागा। ताँ मछिंद्रनाथ त्रिानां मारो ते आखिआ सु क्यों रोवता है। सानूं भी ताँ छै २ ग्रह आवदा है। सानूं ताँ पुछण देह। सिद्ध बोले—तपाजी! कौन २ ग्रह, बोलीए ? ताँ बाबा बोलिआ :—

---

(१) किस प्रकार की, कौन, कथंच। (२) अच्छा, भला, दृढ़। (३) अदब के वास्ते बहुवचन दिया है। (४) प्रत्येक, हर एक को।

बिषया अंम्रित सम कर जाणु । ताँका बोलिआ दरगह परवाणु ॥

ए सिद्धो ! तुसीं स्वादी हो, सुकृती नाहीं । प्रिथ्मे अहार को धावते हो अहार पाय कै कृतकृत्य मानते हो ॥ १ ॥ दुतिये त्रिषा संतावती है तौ पाणी को धावते हो ॥ २ ॥ त्रितिया धूप व्यापती है ताँ छाया को धावते हो ॥ ३ ॥ चौथे निद्रा व्यापती है ताँ सोवणे को धावते हो ॥ ४ ॥ पंचवें शीत व्यापती है ताँ गरमी को चाहते हो ॥ ५ ॥ छठे काम ग्रह है—बिंद गिरती है ताँ रोवते हो ॥ ६ ॥ ताँ सिद्ध बोले—भरथरी के नौं ग्रह कौन हैं ? ताँ बावे कह्या छे ग्रह तुसाडे वाले, ते रात को सारी[1] खेलीती है । दिन को किंगुरी ग्रह लगा होया है । चितवनी बिर्था धावती है । जोग जुड़ता नहीं । नाथ निरंजन निरारा रहता है । ताँ इहवाक सुण करि तर्क खाय कै म्रिगानी के रथां पर बैठ करि समुद्र के पार कौ उड़ गये । ताँ बाबा ते बाला कंढे उते खड़े रहे । तां सिद्धां कहा नानक तपा पार रहा । ताँ इक म्रिगानी श्री गोरखनाथजी ने भेजी जो इस पर चढ़ि कै आवहु । तद बावे कह्या असीं म्रिगानी के भरोसे नहीं—असी कर्तार के भरोसे हाँ। ताँ म्रिगानी उड गई ॥ बावे कह्या बालिआ चलु असीं भी चलीए। ताँ बाले कह्यागुरूजी इह समुंद्र खारा है । तद बाबा बाले नूं नाल लैकर सेऊ घेऊ सीहाँ सभे चढ़ीं खड़ावीं समुन्द्र उत्ते चले । जाय सिद्धां बिच पहुते । बावे को देख कर सिद्ध हैरान होए । सगल सिद्धाँ अगों बाबे जोग अदेस २ आ कीती । आखिओ ने आईए जी जगत गुरू । ताँ बाबा बैठ गए । तित समें सभे सिद्ध अहार लगे करन । ते भरथरी जोग आखिआ बालिआ जल लै आओ । ताँ भरथरी बंक-डोल लैकर चलिआ । चौसठ मण पक्के का डोल चौसठ डोल पवनि । सुपारी सिर पर धरै उस पर बंक डोल रख कै लै आवते थे तिस दिन श्री बाबे जी कहा चल भरथरी अज असीं तेरे नाल चलदे हां ।ताँ बाबा ते भरथरी पाणी को गए । बाबा झरे विचों डोल कढि २ बंक डोल विच पावदा जावे । भरथरी बंक डोल थंभ रखै । जाँ भर गया ताँ भी बाबा[2] पावता ही जावै ते पानी गिरता जावै। ताँ भरथरी कह्या गुरुजीपाणी बिर्था जाँदा है ।तां बावे कह्या तुम क्यों दिलगीर होता है। बंक डोल तौ भरिआ है। ताँ भरथरी समझिआ। तां बाबा बंक डोल इक हथ पर लै चले ।आगे मार्ग मैं कुरंगों की डार जाती थी। इक मिर-गणी पर चढ़ा हूआ काम कलोल करता जाता है ।तां भरथरी कहा रे मिरग ! क्यों कलोल बिषे रचिआ है नरक का अधिकारी होवैगा। तां मिरग कहा मेरी ताँ स्त्री है, मुझको दोष कोई नहीं, पर तू नरक विषै अवश्य परै तउ संसै नाहीं । क्यों जु कमलापति राजे की बेटी साथ दो बारी तेरा विवाह होया है । ते इक बार अज होणा है । जे अज नां होवेगा तां तू नरक गामी होवेगा इह नेत है । तां भरथरी कह्या हे म्रिग ओह अस्थान केते कोह है । तां म्रिग कह्या छिआनवें क्रोड़ कोह है । तां भरथरी अति चिंतावान होया । जां सिद्धां विच जल दित्ता ते भरथरी आखिआ हे भाई सिद्धो नाथो जतीओ जो कोई मेरा गुरू गोसाईं होवै अब मेरो रछिआ करै तां यह बात सुणकर सभ सिद्ध दिलगीर होए । जो भाई अज तां कोई पहुँच नाहीं सक्ता तां भरथरी जो दिलगीर डिठा बहुत, श्री बाबाजी दयाल पुरुष करुणा कर बोलते भए। हे भरथरी दिन बहुत है तूं मत दिलगीर होहु । हम तुमारे साथ चलते हैं तां बाबे रथ कआ आसा[3] का—कलंदरी बाना । भरथरी रथ

(१) नरदों की बाजी, चौपड़ । (२) भरथरी को वीर्य गिरने पर रोते जानकर गुरू साहब उसे शिक्षा कर रहे हैं कि अंदाजे (प्रमाण) से यदि भर कर वीर्य उछल गया तो हो क्या गया जिससे रोते हो । (३) बगल में या ठोड़ी के तले टेक देकर बैठने वा खड़े होने की बैरागन लकड़ी का नाम आसा है ।

कीआ डंडे का। सिद्धां कौ आदेश करकै रथां पर बैठ के उडे। एक जोजन सूरज ते उड गए ऊहाँ सुरषा चंपाहना राजे कै नगर जाय उतरे। तां बाबा ते बाला इस्नान कौ सिधारे। भरथरी कौ आज्ञा करी कि तुम बाग मैं जाओ। त उह गया (भरथरी)। बाग विच कूआ है ऊहाँ कवलापति इस्नान करन आवती है तुम भी जाओ। भ थरी के पग महिं पदम देख कै कमलापति अंचला गहि ठाँढी भई। कहन लागी नाथ जी तुम हमारे भरता हो। तुम कहाँ जाते हो। आज की निशा (रात्रि) हमारा तुमारा संजोग है। कवलापति की चेरीआं जाय षबर पहुँचाई, कवला की माता ही को, कि एक अतीत आया है उसके संग तुमारी बेटी जाती है। रूप सैन कवलापति का भाई था, मन महिं क्रोध करकै खंडा लेकर भरथरी कौ मारने को चलिआ। जाय करि भरथरी का मुंड काट डारिआ पर बहुड़ि मुंड आय जुड़िआ आधा काठ तलै दीआ आधा ऊपर दीआ देकर अगनि जलाय दीनी। भरथरी उडकै कवलापति कै धवल[1] ऊपर जाय बैठा। इक दूती ने कहा जी इहु जोगी चेटकी[2] है। इस कौ संगल डाल कै सूली देहु। तां बाबे, बाले कौ कहा भरथरी की षबर लेहु। तां बाले कह्या बाबा मिहरबान जी! अब भरथरी मारीता है। तां बाबे कह्या चल बाले असीं भी चलहिं, भरथरी पास। जां बाबा बाग विच वड़िआ, सूली पर द्रिष्ट पड़ी, सूली हरी होई। तां जूना राजे पूछना करी बाले जोग-जु एह पुरुष कवन है? तां बाबे कह्या कलंदरी रूप श्री बाबा नानक है। एह भरथरी है। तां बाला बोलिआ तुमारी बेटी दुइ बारी आगै भरथरी संग व्याही है, तीसरी बारी अब आए हैं। तब राजे चरन बंदना करी। जी कुछ जंञ[3] का समान करीऐ। तब बाबा बोलिआ भला राजा जी। ते बाबे निरंकार के आगे चरन बंदना करी—जी मिहरवान जी! इह छिआनवैं कोड़ी मेघ माला है तुमारी एहु हमारे को चाहीती है, कृपा करके भेजहु जी। निरंकार दे भेजी—बाबे कौ। अब तौ इन के के अहार का किछु तां समान करीए। तब राजे बाबे कौ चरन बंदना करी जी मुझ महिं चूक परी है। तब बाबे भरथरी को कह्या एहु बटूआ खोलहु। बटूए बीच सिऊँ एक जऊँ निकलिआ। तां बाबा निरंकार कौ अराध कै आकाश को उलटिया। कई सहस्र मण पुंज हो आए। सब जीआं अहार कीआ। तां कवलापति का विवाहु होया। तां बाले कह्या कवलापति को :—सिधारहिंगे; एह जावते हैं। अंक भेटी लेहि (नहीं तौ पछुताहिंगी। तद बाबा नानक अते भरथरी सिधारने लगे तां कवलापति रोवने लागी। ते बाबे आगे अरदास करी मिहरबान जी हमको कौण आज्ञा है हमको तुम छोड़ि चले हो मैं भी तुम संग सिधारती हौं। तां बाबे कह्या सोलह हजार बर्षां तपस्या करहिं तां हमारे संग समावहिं। तां बाबे नानक अतै भरथरी ने कह्या। अभी तुमारा पिंड कच्चा है। तब कवला बाले[4] को भोछण[5] दीआ। जी हमारी निशानो ले जाहु। तब बाले भोछण लीआ तब रथ चले नाहीं। तब बाबे बाले को पूछणा करी। तां बाले कह्या जी एक भोछण लै आयो हौं; तां बाबे कह्या बहुड़ि दे आ! ओइ। तां बाले कह्या मैं इत मुंह आंदा है। फिर क्यों कर ले जाओं, उह। तां बाबे बाले के मुंह हाथ लगाया तब दाढ़ी चिट्टी हो गई। तां बाला दे आया; रथ चलिआ। सिद्धाँ पास जाय पहुँचे। ते सिद्धां अदेश करिआ। बाबे उपदेश कीआ।

(१) महल। (२) मदारी, इंद्रजाली। (३) जनवासा। (४ एक पुरातन जन्म साखी में इस जगह मरदाने का नाम है, और आगे से जवाब देने का स्वभाव भी उसी का ही था। (५) स्त्रियों के ऊपर लेने का दोपट्टा, अंचला, चूनरी।

तेत महल श्री मछिंद्र नाथ बैठे आए हैसनि। तां श्री मछिंद्र नाथ कह्या तपा जी! संसार केहा डिठो। कित बिधि भवसागर तरिआ हई। तां बावे शब्द बोलिआ :—

॥ रागु रामकली महला १ ॥

जित दरि बसहि कौन दर कहीए दराँ भीतर दर कौन लहै।
जिस दर कारण फिरहि उदासी सो दर कोई आन कहै॥ १॥
किन बिधि सागर तरीए। जीशंदि आँही मरीए॥ १ रहाउ॥
दुख दरवाजा रोह[1] रखवाली आस अंदेसा दुइ पाट चढ़े।
माया जल खाई पाणी घरि बाधिया सत कै आसण पुरुष रहै॥ २॥
केते नाम तेरे अंत न पाया तुम सर नाहीं अवर हरे।
ऊचा नहीं कहणा मन महिं रहणा आपे जाणै आप करे॥ ३॥
जब लग आस अँदेसा तबही किंव करि एक कहै।
आसा भीतर रहै निरासा तउ नानक एक मिलै॥ ४॥
इत बिधि सागर तरीए। जीवतिआं इऊँ मरीए॥ १ रहाउ॥

तां मछिंद्र नाथ कह्या तपा जी जोगीशर बहुत कहते हैंनि जु तपा जी भेष नाहीं रखदे ते जोगीशरांदे महां जोगी हैं। सो तुम सिङी रक्खा करो। ते गोरख जागै इह बोली बोलिआ करो। झोली पत्र जोगीशरांदी रहरास है। तां बावे तित महल शब्द बोलिया—

॥ रामकली महला १ ॥

सुरति शब्द साखी मेरी सिङी बाजे लोक सुणे।
पत झोली मंगण कै ताँई भिक्षा नामु पड़ै॥ बाबा गोरख जागै।
गोरख सो जिन गोय उठाली करते बार न लागै॥ १॥
॥ रहाउ॥
पाणी पउण प्राण बंधि राखे चंद सूरज मुख दीवे।
मरण जीवण कौ धरती दीनी एते गुन विसरे॥ २॥
सिद्ध साधिक अरु जोगी जंगम पीर पुरुष बहुतेरे।
जे नाम मिले ताकी गति आखाँ ताँ मन सेव करे॥ ३॥
कागद लूण रहै घ्रित संगे जैसे पाणी कवल रहै।
ऐसे भगत मिलहि जन नानक तिन जम कंकर कहा करै॥ ४॥

तब मछंद्र बोलिआ। आखिओस नानक! जोग लै, जो डोलने ते रहे। तदहुं गुरू शब्द बोलिआ—

(१) रोस, क्रोध।

॥ रागु रामकली महला १ ॥

सुण माछंद्रा नानक बोलै, वसगति पंच करै नाहीं डोलै ॥
ऐसी जुगति जोग कउ पाले, आप तरे सगले कुल तारे ॥
सो अवधू ऐसी मति पाए । अहि निश सुद्ध समाधि लगाए ॥ १ ॥

॥ रहाउ ॥

भिचा भाउ भगति भाइ चलै । होवै त्रिस संतोष अमुलै ॥
ध्यान रूप होय आसण पाए । साच नाम ताड़ी चित लाए ॥
नानक बोलै अम्रित बाणी । सुण माछंद्र अवधू नीशाणी ॥
आसा माहि निरास वलाए । ताँ निहचउ करते कौ पाए ॥
प्रणवत नानक अगम सुणाए । दीचा भोजन दारू खाए ॥
छिअ दर्शन की सोझी पाए ॥ ४ ॥

दहुं गोरखनाथ बेनती कीती आखिओस;[1] जीउ ! गुर पीरी तुसीं भी रहरा
आदि जुगादी चली आई है । तब बाबे आखिआ कवन गुरू करहि, गोरखनाथ
गोरखनाथ आखिआ जी ओह ऐसा कवण है जो तुमारे मथै हथ धरै पर उह भ
तुमारे अंग[2] ते पैदा होवेगा । तब आखिआ भला होवै । तदहुं बाबा रमता र
बाणी सैदो घेहो जट लिखी । बोलहु "वाहगुरू ।"

इति श्री प्राणसंगली श्री गुरू ग्रंथे मार्ग वृत्तांत प्रकाश
सिद्ध गोष्टि वर्णन सप्तमोध्याउ समाप्तं ॥ ७ ॥

---

(१) और कहा । (२) इसी ते ही लहणा जी को अंगद रूप में अपने अंगों ते प्र
करके गुरता की पदवी बखशी । और उस निज सिक्ख को अपनी गुरू गादी पर बिठ
कर स्वयं नमस्कार किया ।
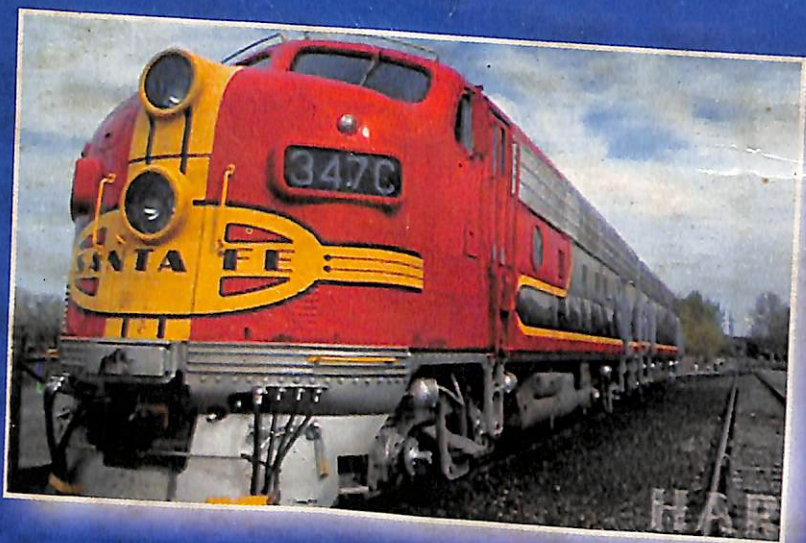
Marks				
Pages	120	192	240	280
M.R.P. Rs. (Incl. of all taxes)	12.50	18.50	22.50	28.50